॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ ऋग्वेद संहिता॥

॥ ऋग्वेद ॥

॥अथ दशम मण्डलं॥

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय सूची

सूक्त १ 13

सूक्त २ 16

सूक्त ३ 19

सूक्त ४ 22

सूक्त ५ 26

सूक्त ६ 30

सूक्त ७ 34

सूक्त ८ 37

सूक्त ९ 41

सूक्त १० 44

सूक्त ११ 50

सूक्त १२ 55

सूक्त १३ 59

सूक्त १३ 62

सूक्त १५ 69

सूक्त १६ 75

सूक्त १७ 81

सूक्त १७ 87

सूक्त १९ 93

सूक्त २० 96

सूक्त २१ 100

सूक्त २२ 104

सूक्त २३ 110

सूक्त २४ 113

सूक्त २५ 116

सूक्त २६ 121

सूक्त २७ 125

सूक्त २८ 135

सूक्त २९ 141

सूक्त ३० 145

सूक्त ३१ 151

सूक्त ३२ 156

सूक्त ३३ 160

सूक्त ३४ 164

सूक्त ३५ 170

सूक्त ३६ 176

सूक्त ३७ 182

सूक्त ३८ 187

सूक्त ३९ 190

सूक्त ४० 196
सूक्त ४१ 202
सूक्त ४२ 204
सूक्त ४३ 209
सूक्त ४४ 214
सूक्त ४५ 219
सूक्त ४६ 224
सूक्त ४७ 228
सूक्त ४८ 232
सूक्त ४९ 237
सूक्त ५० 242
सूक्त ५१ 246
सूक्त ५२ 250
सूक्त ५३ 253
सूक्त ५४ 258
सूक्त ५५ 261
सूक्त ५६ 265
सूक्त ५७ 268
सूक्त ५८ 270
सूक्त ५९ 274

सूक्त ६० 278

सूक्त ६१.. 283

सूक्त ६२ 295

सूक्त ६३ 300

सूक्त ६४ 308

सूक्त ६५.. 315

सूक्त ६६.. 322

सूक्त ६७.. 328

सूक्त ६८ 333

सूक्त ६९ 339

सूक्त ७० 344

सूक्त ७१ 349

सूक्त ७२ 354

सूक्त ७३ 358

सूक्त ७४ 363

सूक्त ७५.. 366

सूक्त ७६.. 370

सूक्त ७७.. 374

सूक्त ७८ 378

सूक्त ७९ 382

सूक्त ८० 386
सूक्त ८१ 389
सूक्त ८२ 393
सूक्त ८३ 396
सूक्त ८४ 399
सूक्त ८५ 402
सूक्त ८६ 419
सूक्त ८७ 428
सूक्त ८८ 438
सूक्त ८९ 446
सूक्त ९० 453
सूक्त ९१ 459
सूक्त ९२ 465
सूक्त ९३ 471
सूक्त ९४ 477
सूक्त ९५ 483
सूक्त ९६ 491
सूक्त ९७ 497
सूक्त ९८ 506
सूक्त ९९ 511

सूक्त १०० 516
सूक्त १०१ 521
सूक्त १०२ 526
सूक्त १०३ 531
सूक्त १०४ 536
सूक्त १०५ 541
सूक्त १०६ 546
सूक्त १०७ 551
सूक्त १०८ 556
सूक्त १०९ 561
सूक्त ११० 564
सूक्त १११ 569
सूक्त ११२ 573
सूक्त ११३ 577
सूक्त ११४ 581
सूक्त ११५ 585
सूक्त ११६ 589
सूक्त ११७ 593
सूक्त ११८ 597
सूक्त ११९ 600

सूक्त १२० 604
सूक्त १२१ 608
सूक्त १२२ 612
सूक्त १२३ 616
सूक्त १२४ 620
सूक्त १२५ 624
सूक्त १२६ 628
सूक्त १२7 631
सूक्त १२८ 634
सूक्त १२९ 638
सूक्त १३० 641
सूक्त १३१ 644
सूक्त १३२ 647
सूक्त १३३ 650
सूक्त १३४ 653
सूक्त १३५ 656
सूक्त १३६ 659
सूक्त १३७ 662
सूक्त १३८ 665
सूक्त १३९ 668

सूक्त १४०... 671

सूक्त १४१... 674

सूक्त १४२... 677

सूक्त १४३... 681

सूक्त १४४ 684

सूक्त १४५ 687

सूक्त १४६ 690

सूक्त १४७ 693

सूक्त १४८ 696

सूक्त १४९ 699

सूक्त १५०... 702

सूक्त १५१... 704

सूक्त १५२ 706

सूक्त १५३... 708

सूक्त १५४ 710

सूक्त १५५ 712

सूक्त १५६ 714

सूक्त १५७ 716

सूक्त १५८ 718

सूक्त १५९ 720

सूक्त १६०.. 723

सूक्त १६१.. 726

सूक्त १६२ 728

सूक्त १६३.. 731

सूक्त १६४ 733

सूक्त १६५.. 736

सूक्त १६६ 739

सूक्त १६७.. 741

सूक्त १६८ 743

सूक्त १६९ 745

सूक्त १७० 747

सूक्त १७१.. 749

सूक्त १७२ 751

सूक्त १७३ 753

सूक्त १७४ 756

सूक्त १७५.. 758

सूक्त १७६.. 760

सूक्त १७७.. 762

सूक्त १७८ 764

सूक्त १७९ 766

सूक्त १८० 768
सूक्त १८१ 770
सूक्त १८२ 772
सूक्त १८३ 774
सूक्त १८४ 776
सूक्त १८५ 778
सूक्त १८६ 780
सूक्त १८७ 782
सूक्त १८८ 784
सूक्त १८९ 786
सूक्त १९० 788
सूक्त १९१ 790

सूक्त १

ऋषि: त्रित आप्त्य:
देवता – अग्नि: । छंद – त्रिष्टुप्

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१॥

प्रभात वेला में सर्वप्रथम अग्निदेव ऊर्ध्वमुखी (प्रज्वलित) होकर (यज्ञ में) स्थित होते हैं। वे अन्धकार को दूर करके, तेजोमय होकर आगे आते हैं तथा अपने श्रेष्ठ तेज से सभी स्थानों को प्रकाशित करते हैं॥१॥

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥२॥

ये अग्निदेव द्यावा -पृथिवी के गर्भ में (गुप्त रूप से) रहते हैं । ओषधियों (अथवा काष्ठादि) से जन्म लेकर सुन्दर स्थानों पर प्रतिष्ठित होते हैं । अन्धकार को परास्त करते हैं तथा शिशु की तरह शब्द करते हुए माताओं (समिधाओं अथवा द्यावा-पृथिवी) के पास जाते हैं॥२॥

विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥३॥

इस प्रकार (ऊपर के मंत्र के अनुसार) ये विद्वान् विष्णु (पोषणकर्ता) देव जन्म लेकर, वृद्धि पाकर इस तृतीय (त्रित ऋषि अथवा तीसरे लोक-द्युलोक) क्रा पालन करते हैं । उनके मुख से उत्पन्न पय (पोषक रस) की अभिलाषा करते हुए यहाँ (यज्ञ में) याजक उनकी अर्चना करते हैं॥३॥

अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥४॥

हे अग्निदेव ! आप विश्व के पालक, ओषधियों और अन्नों के उत्पादनकर्ता तथा सूखे काष्ठों की ओर गमनशील हैं आप ही मानव सभ्यता (प्रजाओं) के लिए यज्ञ- निष्पादक हैं। अन्न वृद्धि के लिए हम हविष्यान्न समर्पित करते हुए आपकी अर्चना करते हैं॥४॥

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम् ।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्वग्निमतिथिं जनानाम् ॥५॥

यज्ञीय कार्यों में पताका रूप, दीप्तिमान् देवताओं का आवाहन करने वाले, सबके स्वामी, यजमानों के लिए वन्दनीय, इन्द्रदेव के समीप

पहुँचाने वाले अग्निदेव की, हम उत्तम ऐश्वर्य प्राप्ति के निमित्त स्तुति करते हैं॥५॥

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः ।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥६॥

हे देदीप्यमान अग्निदेव ! आप पृथ्वी के नाभिस्थल पर स्वर्ण के सदृश दीप्तिमान् होकर तेजस्विता को धारण करते हुए प्रादुर्भूत होते हैं। आप यज्ञ स्थल पर उत्तर वेदी में स्थापित होकर अपनी तेजस्विता से शोभायमान होते हुए हमारे द्वारा देवशक्तियों के लिए समर्पित हविष्यान्न ग्रहण करें॥६॥

आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥७॥

हे अग्निदेव ! आप दिव्यलोक और पृथ्वीलोक को उसी प्रकार व्यापक विस्तार प्रदान करते हैं, जिस प्रकार पुत्र, माता-पिता को धनादि से सुखी करते हैं। हे तरुण पुत्र ! आप यथोचित सहयोगार्थ माता- पिता के समीप जाएँ और उनकी सहायता करें । हे शक्तिमान् अग्ने ! हमारे इस यज्ञ में आप इन्द्रादि देवताओं को भी ले आएँ॥७॥

सूक्त २

ऋषि: त्रित आप्त्य:
देवता – अग्नि: । छंद – त्रिष्टुप्

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतृणामस्यायजिष्ठः ॥१॥

सबके लिए कल्याणकारी, नित्य नवीन रूपवान् हे अग्निदेव ! आप कामनापूर्ति करने वाले देवताओं को प्रशंसित करें । हे ऋतुओं के ज्ञाता अग्निदेव ! आप ऋतुओं के अनुसार ही दिव्यज्ञान – सम्पन्न त्वजों के सहयोग से यज्ञ सम्पन्न करें, क्योंकि आप ही होताओं के बीच में सर्वश्रेष्ठ हैं॥१॥

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।
स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥२॥

हे अग्निदेव ! मनुष्यों के यज्ञ को चाहने वाले आप होता (आवाहन कर्ता), पोता (पवित्र कर्ता), बुद्धिमान् , ऋत (सत्य या यज्ञ) के संरक्षक

एवं दाता हैं। हम हव्य पदार्थों से स्वाहाकार करते हैं, आप पूजित होकर देवों का सत्कार करें॥२॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ॥३॥

हम अपनी सामर्थ्यानुसार देवत्व के उच्च लक्ष्य की ओर गतिमान् हों । हमारा वह (देवमार्ग की ओर बढ़ाने का) कार्य अनुकूलतापूर्वक पूर्ण हो । मनुष्यों के लिए यज्ञों के सम्पादक अग्निदेव ऋतुओं के अनुसार यज्ञों को सम्पन्न करें। वे देवताओं के निमित्त आहुतियों का सेवन करते हैं॥३॥

यद्वो वयं प्रमिनाम व्रतानि विदुषां देवा अविदुष्टरासः ।
अग्निष्टद्विश्वमा पृणाति विद्वान्येभिर्देवाँ ऋतुभिः कल्पयाति ॥४॥

हे देवो ! हम ज्ञानरहित मनुष्यों ने अज्ञानतावश व्रतों (प्राकृतिक मर्यादाओं) को भंग किया हैं। इससे परिचित अग्निदेव उन ऋतुओं या यज्ञीय भावनाओं को हमारे अन्दर परिपूर्ण करें, जिनसे वे देवताओं को प्रसन्न करते हैं॥४॥

यत्पाकत्रा मनसा दीनदक्षा न यज्ञस्य मन्वते मर्त्यासः ।
अग्निष्टद्धोता क्रतुविद्विजानन्यजिष्ठो देवाँ ऋतुशो यजाति ॥५॥

अज्ञानग्रस्त मनुष्य मानसिक परिपक्वता लाने वाली विधि (यज्ञीय कर्मों) से अनभिज्ञ रहते हैं, परन्तु उस विधि के विशेषज्ञ अग्निदेव इस विधा से भली प्रकार परिचित हैं । वे ऋतुओं के अनुसार (विधि-विधानपूर्वक) देवताओं के निमित्त यज्ञ करके हमें सुख और आरोग्य प्रदान करते हैं ॥५॥

विश्वेषां ह्यध्वराणामनीकं चित्रं केतुं जनिता त्वा जजान ।
स आ यजस्व नृवतीरनु क्षाः स्पार्हा इषः क्षुमतीर्विश्वजन्याः ॥६॥

हे अग्निदेव ! आप सभी यज्ञों के अग्रणी तथा इच्छित विशिष्ट ज्ञान के उत्पादनकर्ता हैं । आप प्रजापति द्वारा उत्पन्न किए गये हैं। ऐसे आप स्तवनों से युक्त, सबके लिए कल्याणकारी हविष्यान्न देवताओं को प्रदान करें॥६॥

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ॥७॥

हे अग्निदेव ! आपको श्रेष्ठ सृजेता प्रजापति ने द्युलोक में सूर्यरूप, पृथ्वी में वैश्वानररूप, जल में बड़वानल रूप तथा मेघों में स्थित विद्युत्रूप में सर्वत्र संव्याप्त किया है । आप पितरों के गमन मार्ग से भली प्रकार परिचित होते हुए, समिधाओं से तेजस्विता युक्त होकर विशेष रूप से प्रकाशित हों॥७॥

सूक्त ३

ऋषि: त्रित आप्त्य:
देवता – अग्नि: । छंद – त्रिष्टुप्

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप सबके स्वामी, दिव्य गुणों से युक्त, देदीप्यमान , शत्रुओं के लिए भयंकर, उपासकों को इच्छित पदार्थ प्रदान करने वाले, सब प्रकार से शक्ति को विकसित करने वाले हैं, ऐसा अनुभव किया गया है । सर्वज्ञाता आप प्रदीप्त होकर अपने प्रकाश को सर्वत्र फैलाते हुए निशाकाल में प्रकट होते हैं॥१॥

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२॥

ये अग्निदेव पिता रूप सूर्य से उत्पन्न होकर, उषाकाल में प्रकट होकर, अँधेरी रात को अपनी ज्वालाओं से परास्त करते हैं। उस समय

गतिशील अग्निदेव द्युलोक में सूर्य की दीप्ति को ऊपर ही स्थापित करके स्वयं भी प्रकाशित होते हैं॥२॥

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३॥

हितकारक अग्निदेव कल्याणकारिणी उषा द्वारा सेवित होकर प्रदीप्त होते हैं। रिपुनाशक अग्निदेव अपनी बहिन उषा के पास जाते हैं। अपनी तेजस्विता के प्रभाव से सर्वत्र विचरणशील वे जाज्वल्यमान लपटों से रात्रि के अंधेरे को नष्ट करके प्रतिष्ठित होते हैं॥३॥

अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ॥४॥

अग्निदेव की , प्रज्वलित होकर गमन करने वाली ज्वालारूपी किरणें स्तोताओं के लिए हानिरहित होती हैं। ये स्तोत्रों को प्राप्त, सौख्यप्रद, कल्याणकारिणी किरणें श्रेष्ठ, दर्शनीय तथा अन्धकार को दूर करने वाली हैं । वे शक्तिवर्द्धक और देदीप्यमान किरणें यज्ञस्थल में अग्नि के प्रकाश को फैलाती हैं॥४॥

स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ॥५॥

अग्निदेव की प्रज्वलित , विशाल, तेजस्वी, ज्वालारूपी किरणें शब्दों के संव्याप्त होने के समान ही सर्वत्र अपनी आभा बिखेर रहीं हैं। वे अग्निदेव अपनी उत्तम, विस्तृत, तेजस्वी, वायु के प्रभाव से क्रीड़ा करती हुई किरणों के माध्यम से दिव्यलोक को संव्याप्त करते हैं॥५॥

अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥६॥

दर्शन योग्य तेजस्वी अग्निदेव हवियों को देवताओं की ओर ले जाते हैं। इनकी सामर्थ्यशाली, विकारनाशक किरणें वायु के माध्यम से शब्दायमान होती हैं । गतिशील, ऐश्वर्य – सम्पन्न, महिमायुक्त, शाश्वत काल से तेजस् – सम्पन्न, शब्द करने वाले, उज्ज्वल वर्णयुक्त तथा देवों में प्रमुख ये अग्निदेव अपनी आभा से प्रकाशमान होते हैं॥६॥

स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ॥७॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञ में सभी महान् देवों के साथ आगमन करें । द्युलोक और पृथ्वी के बीच में सूर्य के रूप में गमनशील आप यज्ञ में विराजमान हों । यजमानों के लिए सुगमतापूर्वक प्राप्य गमनशील अग्निदेव शीघ्रगामी वायुरूप अश्वों के सहयोग से हमारे यज्ञ में उपस्थित हों॥७॥

सूक्त ४

ऋषि: त्रित आप्त्य:
देवता – अग्नि: । छंद – त्रिष्टुप्

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥१॥

हे अग्निदेव ! हम मननीय स्तोत्रों को उच्चारण करते हुए, आपके निमित्त आहुतियाँ प्रदान करते हैं। हमारे आवाहन को सुनकर, आप यज्ञ स्थल पर विशेष रूप से विराजमान हों । हे प्राचीन दीप्तिमान् अग्निदेव ! आप याज्ञिक मनुष्यों के लिए मरुस्थल में जल उपलब्ध होने के सदृश ही शान्तिप्रद हों॥१॥

यं त्वा जनासो अभि संचरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन ॥२॥

नित्य युवा बलिष्ठ हे अग्निदेव ! जिस प्रकार गौएँ ठंड से बेचैन होकर गोष्ठ (गोशाला) में आश्रय लेती हैं, वैसे ही मनुष्य भी यज्ञरूप आपको आश्रय लेते हैं । आप देवताओं – मनुष्यों के सन्देशवाहक हैं । महिमामय आप द्युलोक और पृथ्वी लोक दोनों के बीच हवि वहन करते हुए अन्तरिक्ष में प्रकाशमान होकर संचरित होते हैं॥२॥

शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥३॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार माता, पुत्र की पुष्टता के लिए उसे अपने सानिध्य में रखने की इच्छुक होती हैं, उसी प्रकार धरतीमाता विजयशील आपको संवर्धित करके सान्निध्य की कामना से धारण करती है । आप अन्तरिक्ष के विशाल मार्ग से नीचे के लोकों में उसी प्रकार जाते हैं, जिस प्रकार बन्धन – युक्त पशु गोष्ठ में जाने को प्रेरित होते हैं तथा उसमें पहुँचते हैं॥३॥

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।
शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ॥४॥

ज्ञानवान् हे अग्निदेव ! हम अज्ञानग्रस्त मनुष्य आपकी महिमा से अनभिज्ञ हैं। हे चैतन्य अग्निदेव ! आप स्वयं ही अपनी महिमा के ज्ञाता हैं, आप साकार होकर निश्चिन्त शयन करते हैं तथा ज्वाला रूपी

जिह्वा से हविष्यान्न को ग्रहण करके विचरण करते हैं। आप प्रजाजनों के अधिपति रूप.राजा के समान ही अपनी पत्नीरूपा आहुति को ग्रहण करते हैं॥४॥

कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥५॥

नूतन अग्निदेव सूखी वनस्पतियों (समिधाओं) में प्रतिदिन कहीं भी प्रकट हो जाते हैं । ये धूम्रयुक्त पताका वाले, पिंगल वर्ण, तेजस्विता से जंगल में स्थित हैं। बिना सान के ही शुद्ध हुए वे अग्निदेव जंगल में जल की ओर उसी प्रकार जाते हैं, जैसे तृषित वृषभ जलाशय की ओर गमन करता है – ऐसे अग्निदेव को श्रेष्ठ, जागरूक याजक यज्ञवेदी पर प्रतिष्ठित करते हैं ॥५॥

तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥६॥

जिस प्रकार वन में विचरण करने (शरीर का मोह न करने वाले दो तस्कर दसों रस्सियों से (अपनी पकड़ में आने वालों को) बाँधते हैं। हे अग्निदेव ! (उसी प्रकार) आपकी (आपके निमित्त) ये नवीन स्तुतियाँ रथ की तरह आपके तेज को धारण करें॥६॥

ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो अप्रयुच्छन् ॥७॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! हमारे द्वारा आपका स्तुतिगान किया गया । ये स्तोत्र आपके लिए ही वन्दना के साथ समर्पित किए गए हैं। ये स्तोत्र आपकी महिमा को सदैव बढ़ाने वाले (विस्तृत करने वाले) सिद्ध हों । हे तेजस्वी अग्निदेव ! आप हमें संरक्षण प्रदान करें, साथ ही हमारे परिजनों को भी पूर्ण संरक्षण प्रदान करें॥७॥

सूक्त ५

ऋषि: त्रित आप्त्य:
देवता – अग्नि: । छंद – त्रिष्टुप्

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे ।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥१॥

वे अद्वितीय अग्निदेव समुद्र के समान विशाल आधार एवं सभी ऐश्वर्यों के धारणकर्ता हैं । वे विविध रूपों में उत्पन्न होने वाली हमारी हार्दिक अभिलाषाओं के ज्ञाता हैं। वे अग्निदेव आकाश और पृथ्वी के बीच अन्तरिक्ष में स्थित हैं और विद्युत् के रूप में मेघमण्डल में संचरित होते हैं॥१॥

समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥२॥

समान नीड़ (आवास) में वास करने वाले बलवान् (पुरुष) महान् चंचल (लपटों या अश्वों) से युक्त (सम्पन्न) होते हैं। कवि (दूरदर्शी लोग)

गुहा (हृदय स्थलों में (अग्नि के) अन्य (अप्रचलित) नामों को धारण करते हैं, (इस प्रकार) वे (अग्निदेव) यज्ञ के चरणों (अनुशासनों) की रक्षा करते हैं॥२॥

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ॥३॥

अन्न, तेज, सत्य और ऐश्वर्य से सम्पन्न द्यावा – पृथिवी अग्नि को धारण करते हैं । शिशु रूप अग्नि को वे माता-पिता के समान ही काल-परिमाण (समय-सीमा में प्रादुर्भूत करते हैं । समस्त जड़ और चेतन संसार के नाभिरूप ज्ञानवान् व्यापक अग्निदेव का गुणगान करते हुए हव्य समर्पित करते हैं॥३॥

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ॥४॥

यज्ञादि कर्म करते हुए ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाले यजमान बल की प्राप्ति के लिए भली प्रकार प्रदीप्त अग्निदेव की अर्चना करते हैं । पृथ्वी और द्युलोक ने अग्नि, विद्युत् और सूर्य रूप से तीनों लोकों में स्थित अग्निदेव को मधु, घृत, जल तथा अन्न द्वारा संवर्धित किया॥४॥

सप्त स्वसृररुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।

अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥५॥

विद्वान् (अग्निदेव) ने उज्ज्वल, रमण योग्य सात भगिनी (सप्तवर्णी किरणों अथवा ज्वालाओं) को सहजता से सुखकारक समस्त पदार्थों को देखने के लिए प्रकट किया। इन (सप्तवर्णी किरणों) को पुरातन समय में उत्पन्न अग्निदेव ने द्युलोक और पृथ्वी के मध्य स्थापित किया था। प्रखर यजमानों की कामना से अग्निदेव ने (पर्जन्य वर्षा के रूप में) पृथ्वी को पोषक रस प्रदान किया॥५॥

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६॥

नीति-निर्धारकों (विधिवेत्ताओं ने मनुष्यों के लिए सात मर्यादाओं को निर्धारित किया। उनमें से एक का भी जो उल्लङ्घन करते हैं, वे पापकर्मी कहलाते हैं। पाप रूपी दुष्कर्मों से मनुष्यों को बचाने वाले अग्निदेव हैं । वे अग्निदेव मनुष्यों के समीप यज्ञवेदी पर सूर्य रश्मियों के विचरण मार्ग तथा जल के मध्ये तीनों (पृथ्वी, द्यु एवं अन्तरिक्ष) लोकों में विराजमान होते हैं॥६॥

असच्च सच्च परमे व्योमन्दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥७॥

(ये अग्नि) असत् (अव्यक्त) तथा सत् (व्यक्त) दोनों रूपों में परम व्योम में संव्याप्त हैं। इन दक्ष (कर्म कुशल) का जन्म अदिति (अखण्ड-एकात्म तत्त्व अथवा सूर्य) के अंक (अंतरिक्ष में हुआ । वे निश्चित रूप से हमसे एवं हमारे यज्ञ से पहले उत्पन्न हुए। प्रथम सृष्टि में वे ही वृषभ (गर्भ स्थापक) तथा वे ही धेनु (गर्भ धारक) रहे हैं॥७॥

सूक्त ६

ऋषि: त्रित आप्त्य:
देवता – अग्नि: । छंद – त्रिष्टुप्

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥१॥

ये वही अग्निदेव हैं, जिनकी संरक्षण शक्तियों से स्तुतिकर्ता अभीष्ट फलों को प्राप्त कर अपने सुख – सौभाग्य को बढ़ाते हैं । अग्निदेव श्रेष्ठ सूर्य किरणों के रूप में दीप्तिमान् तेज से चारों ओर प्रकाशित होकर सर्वत्र विचरण करते हैं॥१॥

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥२॥

जो सत्य और नित्य-शाश्वत अग्निदेव, देवों की तेजस्विता से प्रकाशित होते हैं, वे ही गतिशील अश्व के समान सखारूप यजमानों के

कल्याणकारी कार्यों को सम्पन्न करने के लिए निरन्तर उनके समीप पहुँचते हैं॥२॥

ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ॥३॥

सर्वत्र गतिशील अग्निदेव सम्पूर्ण विश्व में यज्ञीय कर्मों के अधिपति (स्वामी) हैं। सबके प्राणरूप वे उषा काल में सक्रिय (पोषक प्रवाहों या यज्ञादि कर्मों के स्वामी हैं। अग्निदेव को साधकगण मानसिक भावनाओं के अनुरूप हविष्यान्न समर्पित करते हैं। उनका कल्याणकारी यज्ञरूप रथ ही अनिष्टकारी शक्तियों के कुप्रभाव को रोकते हुए विश्व – व्यवस्था को संचालित करने का माध्यम है॥३॥

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रो होता स जुह्वा यजिष्ठः सम्मिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ॥४॥

अनेक शक्तियों से संवर्द्धित, स्तोत्रों से स्तुत्य अग्निदेव अपने शीघ्रगामी रथों से देवों के समीप पहुँचते हैं। वे स्तुत्य, देवावाहक, वाणी द्वारा यजन योग्य अग्निदेव देवताओं द्वारा नियुक्त हैं। वे ही सबके सहयोगी रूप में देवताओं के निमित्त हविष्यान्न को समर्पित करते हैं॥४॥

तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ॥५॥

हे ऋत्विजो ! महान् ऐश्वर्य एवं विभिन्न साधनों के प्रदाता देदीप्यमान अग्निदेव को इन्द्रदेव के सदृश ही प्रार्थनाओं और आहुतियों द्वारा अपने समक्ष प्रकट करो। मेधावीजन, शत्रुपराभवकारी देवों का आवाहन करने वाले जातवेदा अग्निदेव की आदरपूर्वक स्तुति करते हैं (जिससे उनकी कृपा प्राप्त हो सके)॥५॥

सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ॥६॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार तीव्र गतिशील अश्व समर क्षेत्र (युद्ध भूमि) में इकट्टे होते हैं, उसी प्रकार संसार की समस्त सम्पदाएँ आपके अधीनस्थ होकर आपकी ओर जाती हैं (आपमें संगृहीत होती हैं)। हे अग्निदेव ! आप हमारे निमित्त पराक्रमी इन्द्रदेव से उपलब्ध नवीन संरक्षण – साधन प्रदान करें॥६॥

अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ॥७॥

हे अग्निदेव ! आप उत्पन्न होने के साथ ही महिमायुक्त होकर शीघ्रता से प्रज्वलित होते हैं तथा यज्ञस्थल में आहुतियों का सेवन करते हैं। अतएव सभी देवगण आपको देखते ही अनुगमन करते हैं तथा श्रेष्ठ लोग आपसे संरक्षित होकर उत्कर्ष प्राप्त करते हैं॥७॥

सूक्त ७

ऋषि: त्रित आप्त्य:
देवता – अग्नि: । छंद – त्रिष्टुप्

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥१॥

हे दिव्यगुण सम्पन्न अग्निदेव ! दिव्यलोक और पृथ्वी से आप हमारे यज्ञ के लिए सम्पूर्ण कल्याणकारी अन्नों को प्रदान करें । हम आपके निमित्त यज्ञीय भाव से साधन अर्पित करें । हे अद्वितीय अग्निदेव ! आप अपनी विशिष्ट ज्ञान – सम्पदा तथा श्रेष्ठ संरक्षण – समर्थों से हमारा संरक्षण करते हैं॥१॥

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥२॥

हे अग्निदेव ! ये स्तोत्र आपके निमित्त ही उच्चारित किये गये हैं। हमारे लिये जो गौओं और अश्वों से युक्त धन आपके द्वारा भेंट किया गया है, उसमें भी आपकी ही महिमा है । आप मनुष्यों को उपभोग्य धन-

सम्पदा प्रदान करते हैं । हे श्रेष्ठ गुण – सम्पन्न ऐश्वर्यदाता ! आपके प्रति हम प्रार्थनाएँ समर्पित करते हैं॥२॥

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥३॥

हम अग्निदेव को ही संरक्षक रूप पिता, सहायक रूप बन्धु तथा हमेशा से ही अपना हितैषी-मित्र स्वीकार करते रहे हैं। हम महिमायुक्त अग्निदेव की यज्ञस्थल पर उसी प्रकार अर्चना करते हैं, जिस प्रकार दिव्यलोक स्थित, पूजनीय, प्रकाशमान सूर्य मण्डल की लोग उपासना करते हैं॥३॥

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥४॥

हे अग्निदेव ! हमारी बुद्धियाँ (प्रार्थनाएँ) अभीष्ट फलों की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हों । होतारूप आप जिन्हें अपने नियन्त्रण एवं संरक्षण में रखते हैं, ऐसे हम आपके सान्निध्य में रहकर यज्ञमय जीवन जिये । हम अश्वादि से युक्त धन तथा प्रचुर सम्पदा के स्वामी बनें । हमें ऐश्वर्यशाली दिनों में हविष्यान्न समर्पित करने का लाभ मिले॥४॥

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥५॥

तेजोमय, मित्रतुल्य, पुतिन, ऋत्विग्रूप, हिंसारहित, यज्ञसम्पन्न कर्ता अग्निदेव को याज्ञिकों ने अपने हाथों से प्रादुर्भूत किया । मनुष्यों ने देवों के आवाहक और यज्ञ के निमित्त अग्नि को प्रजाजनों के मध्य प्रतिष्ठित किया॥५॥

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥६॥

हे तेजस्- सम्पन्न अग्निदेव ! आप दिव्यलोक में स्थित देवताओं के लिए स्वयं यजन करें । मन्द बुद्धि और अबोध मनुष्य आपके बिना कुछ भी करने में सक्षम नहीं । हे श्रेष्ठ जन्मा अग्निदेव ! जिस प्रकार आप समय-समय पर देवताओं के निमित्त यजन करते हैं, उसी प्रकार इस समय भी करें॥६॥

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो अप्रयुच्छन् ॥७॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! आप प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में सभी दुःखों से हमारी रक्षा करें । आप हमारे लिये अन्न के उत्पादनकर्ता और दातारूप भी बनें । हे पूजनीय अग्निदेव ! आप हमारे लिए यज्ञ करने की सामग्री प्रदान करें तथा हमारे शरीर को आलस्य , प्रमादादि से बचाएँ॥७॥

सूक्त ८

ऋषि: त्रिशिरास्त्वाष्ट्र
देवता – अग्नि: ७-९ इन्द्र। छंद – त्रिष्टुप्

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥१॥

वे अग्निदेव धूम्ररूप विशाल पताका से युक्त होकर द्युलोक और पृथ्वी में संव्याप्त होते हैं। वे देवों के आवाहन काल में वृषभ के समान शब्द करते हैं। वे द्युलोक के समीपस्थ प्रदेश में व्याप्त होते हैं तथा जल के आश्रय स्थान अन्तरिक्ष में विद्युत्रूप में संवर्द्धित होते हैं॥१॥

मुमोद गर्भो वृषभः ककुद्मानस्रेमा वत्सः शिमीवाँ अरावीत् ।
स देवतात्युद्यतानि कृण्वन्त्स्वेषु क्षयेषु प्रथमो जिगाति ॥२॥

महान् तेजस्वी और कामनाओं के वर्षक अग्निदेव आकाश और पृथ्वी के बीच प्रसन्नतापूर्वक रहते हैं। ये शब्दायमान अग्निदेव रात्रि और उषा के गर्भ से उत्पन्न होकर यज्ञीय सत्कर्मों का निर्वाह करते हैं ।

आप आवाहन योग्य स्थानों को उपलब्ध करते हुए यज्ञ में सर्वश्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित होते हैं॥२॥

आ यो मूर्धानं पित्रोररब्ध न्यध्वरे दधिरे सूरो अर्णः ।
अस्य पत्मन्नरुषीरश्वबुध्ना ऋतस्य योनौ तन्वो जुषन्त ॥३॥

जो माता-पिता पृथ्वी-द्युलोक के शीर्ष (मस्तक) पर अपनी तेजस्विता को फैलाते हैं, उन बलवान् तेजस्वी अग्निदेव के तेज को यज्ञकर्ता अपने यज्ञ में प्रतिष्ठित करते हैं। अग्निदेव के यज्ञस्थल में व्याप्त होने,तेजस्-सम्पन्न होने तथा हविष्यान्नों से युक्त होने पर मेधावीजन उनकी अर्चना करते हैं॥३॥

उषउषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋताय सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे स्वायै ॥४॥

हे प्रशंसनीय अग्निदेव ! आप उषःकाल से पहले ही यज्ञस्थल पर विराजमान होते हैं। आप दिवस-रात्रि दोनों को सुशोभित करते हैं। आप अपने तेज से सूर्यदेव को उत्पन्न करके यज्ञ के लिए सप्तकिरणों रूपी दिव्यता को धारण करते हैं॥४॥

भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ॥५॥

हे अग्निदेव ! आप महिमायुक्त यज्ञ अथवा सत्य के नेत्रों के प्रकाशक हैं । जब आप वरुण के रूप में यज्ञस्थल पर जाते हैं, उस समय आप ही उसका संरक्षण करते हैं । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप ही जल के पौत्र रूप (जल से मेघ और मेघ से विद्युत् अथवा जल से काष्ठ एवं काष्ठ से अग्नि की उत्पत्ति के कारण) हैं। आप जिस याज्ञिक की हविष्य को स्वीकार करते हैं, उसके संदेशवाहक होकर देवों तक उसे पहुँचाते हैं॥५॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥६॥

हे अग्निदेव ! जब आप हविष्यान्न ग्रहण करने वाली अपनी जिह्वा रूपी ज्वालाओं को प्रदीप्त करते हैं, तब आप यज्ञ और फलश्रुति रूप पर्जन्य के प्रवर्तक (नायक) कहलाते हैं। जब आप कल्याण स्वरूप अश्वों के साथ प्राप्त होते हैं, तब दिव्यलोक में विराजमान आदित्य की शोभा को धारण करते हैं॥६॥

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य ।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥७॥

त्रित् (त्रषि अथवा जीवात्मा) परम पिता (परमात्मा) से ही अंत:करण में क्रतु (यज्ञकर्म) की इच्छा करता है। पिता की गोद (अनुशासन) में स्थित होकर वह स्तुतियाँ करता हुआ, आयुधों (जीवन समर के लिए प्रभावपूर्ण माध्यमों को प्राप्त करता है॥७॥

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ॥८॥

पिता से आयुध प्राप्त करके उस विद्वान् आप्त्य (आप्त का पुत्र त्रित ऋषि अथवा सनातन चेतना से उत्पन्न जीव या अग्नि) ने प्रबल संग्राम किया। तीनशीर्ष (तीन आयामों) सप्त बन्धन (सप्त धातु) युक्त त्वष्टा पुत्र (देहाभिमान) का वध करके उस मित्र ने उसकी गौओं (किरणों, वाणियों) को संचरित किया॥८॥

भूरीदिन्द्र उदिनक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनामाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ॥९॥

सत् के अधिपति इन्द्रदेव ने त्वष्टा के पुत्र भारी बलयुक्त , अभिमानी विश्वरूप (कोई भी रूप धारण करने में समर्थ मेघ या अहंकार) को विदीर्ण कर दिया। उसकी गौओं किरणों-शक्तियों) को अपने पास बुलाते हुए उसके तीनों शीर्षों का उच्छेदन कर दिया॥९॥

सूक्त ९

ऋषि: त्रिशिरास्त्वाष्ट्र, सिंधुद्वीप आम्बरीषो
देवता – आप:। छंद – गायत्री, ५ वर्धमाना गायत्री, ७ प्रतिष्ठा गायत्री, ८-९ अनुष्टुप

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।
महे रणाय चक्षसे ॥१॥

हे जलदेव ! आप सुखों के मूल स्रोत हैं । आप हमें पराक्रम से युक्त उत्तम कार्य करने के लिए पोषकरस (अन्न) प्रदान करें॥१॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।
उशतीरिव मातरः ॥२॥

हे जलदेव ! अपने अत्यन्त सुखकर पोषकरस को हमें सेवन करने दें । जैसे बच्चे को माताएँ अपने दुग्ध से पोषण देती हैं, वैसे ही आप हमें पोषित करें॥२॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥३॥

हे जलदेव ! आपका वह कल्याणकारी रस हमें शीघ्रता से उपलब्ध हो, जिसके द्वारा आप सम्पूर्ण विश्व को तृप्त करते हैं। आप हमारे वंश को पोषण प्रदान कर उसे आगे बढ़ाएँ॥३॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्रवन्तु नः ॥४॥

हमें, सुख-शान्ति प्रदान करने वाला जल प्रवाह प्रकट हो । वह जल पीने योग्य, कल्याणकारी एवं सुखकर हो, मस्तक के ऊपर क्षरित होकर रोगों को हमसे दूर करे॥४॥

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम् ।
अपो याचामि भेषजम् ॥५॥

जल प्रवाह ही मनुष्यों के इच्छित पदार्थों का स्वामी और प्राणिमात्र का आश्रयदाता (आश्रय स्थल) है । हम उस जल से ओषधियों में जीवन रस की कामना करते हैं॥५॥

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्वशम्भुवम् ॥६॥

जलतत्त्व में सम्पूर्ण ओषधिरस और संसार के लिए सुखदायक अग्नितत्त्व भी विद्यमान है, ऐसा सोमदेव ने संकेत किया है॥६॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे मम ।
ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥७॥

हे जलदेव ! हमारे शरीर के लिए आप संरक्षक ओषधियाँ प्रदान करें। जिनसे आरोग्य लाभ प्राप्त करके हम चिरकाल तक सूर्य दर्शन से कृतार्थ हों अर्थात् दीर्घायु को प्राप्त करें॥७॥

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥८॥

हमारे अन्दर किसी के प्रति द्वेषभाव, आक्रोशवश मारण प्रयोग अथवा असत्य वाणी का प्रयोग आदि कोई विकार हो, तो हे जलदेव ! आप उन्हें पूर्णरूपेण समाप्त करके, हमें शुद्ध- पवित्र बनाएँ॥८॥

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥९॥

आज हमने जल का आश्रय प्राप्त किया है तथा इस के रस से लाभान्वित हुए हैं । हे अग्निदेव ! आप जल में विद्यमान हैं। हमारे समीप आकर हमें अपनी तेजस्विता से परिपुष्ट करें॥९॥

सूक्त १०

ऋषि: नवमीवर्ज्र्यानामयुजां षष्ठयाश्च वैवस्वती यमी ऋषिका, षष्ठी वर्जायनां युजां नवम्याश्च वैवस्तो, यम: ऋषि
देवता – यम, यमी। छंद – त्रिष्टुप् , १३ विराट स्थाना

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥

(यमी ने कहा) हे यमदेव ! विशाल समुद्र (व्योम) के एकान्त प्रदेश में सख्य भाव या मित्र रूप से आपसे मैं मिलना चाहती हूँ । विधाता की इच्छा है कि नौका के समान संसार सागर में तैरने के लिए, पिता के नाती सदृश श्रेष्ठ सन्तति – प्रजननार्थ हम परस्पर संगत हों॥१॥

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

(यम का कथन) हे यमी ! आपका सहयोगी यम आपके साथ इस प्रकार के सम्पर्क (सहयोग) की कामना से रहित है; क्योंकि आप सहोदरा बहिन हैं । हमें यह अभीष्ट नहीं । असुरों (शक्ति- सम्पन्न व्यक्तियों या तत्त्वों) के वीर पुत्र हैं, जो दिव्य लोकादि के धारणकर्ता हैं, वे सर्वत्र विचरण करते हैं। उनकी संगति हीं अभीष्ट है)॥२॥

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य ।
नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमा विविश्याः ॥३॥

(यमी का कथन) हे यम ! यद्यपि मनुष्यों में ऐसा संयोग त्याज्य हैं, तो भी देवशक्तियाँ इस प्रकार के संसर्ग की इच्छुक होती हैं। मेरी इच्छा का अनुकरण आप भी करें । पतिरूप में आप ही हमारे लिए उपयुक्त हैं॥३॥

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम ।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

(यम का कथन) हे यमों ! हमने पहले भी इस प्रकार का कृत्य नहीं किया; हम सत्यवादी हैं, असत्य वचन नहीं बोलते । अप् (सृष्टि का मूल तत्त्व) से ही गन्धर्व (धारण करने वाला-पिता) और अप् से ही योषा (नारी-माता) की उत्पत्ति हुई है, वे ही हम दोनों के उत्पादक हैं, यही हमारा विशिष्ट सम्बन्ध है, (जिसे हमें निभाना चाहिए)॥४॥

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥५॥

(यमी का कथन) हे यम ! सर्वप्रेरक और सर्वव्यापी उत्पादन कर्ता त्वष्टा (गढ़ने वाले देव ने हमें गर्भ में ही (एक साथ रहकर) दम्पति के रूप में सम्बद्ध किया है। उस प्रजापालक परमेश्वर की इच्छा (विधि-व्यवस्था) को रोकने में कोई सक्षम नहीं, हमारे इस सम्बन्ध का पृथ्वी और द्युलोक को भी परिचय है॥५॥

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥६॥

हे यम ! इस प्रथम दिवस की बात से कौन परिचित है? इसे कौन देखता है ? इस पारस्परिक सम्बन्ध को कौन बतलाने में समर्थ है ? मित्र और वरुण देवों के इस महान् धाम में अध: पतन की बात आप किस प्रकार कहते हैं ?॥६॥

यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥७॥

पति के प्रति पत्नी के समर्पण के समान ही, तुम्हें अपने आपको सौंपती हूँ । एक ही स्थान पर साथ-साथ रहकर, कर्म करने की कामना मुझे प्राप्त हुई है । हम रथ के दो पहियों की तरह समान कार्यों में प्रेरित हों॥७॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥८॥

(यम का कथन) हे यमी ! इस लोक में जो देवताओं के पार्षद हैं, वे रात- दिन विचरण करते हैं, वे कभी रुकते नहीं, उनकी दृष्टि से कुछ भी छुपाने की सामर्थ्य नहीं । हे आक्षेपकारिणि ! आप कृपया इस भावना से मेरे समीप से चली जाएँ और किसी दूसरे को पति रूप में वरण करें॥८॥

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥९॥

(यमी का कथन) हे यम ! रात्रि और दिवस दोनों ही हमारी कामनाओं को पूर्ण करें, सूर्य का तेज यम के लिए तेजस्विता प्रदान करे । द्युलोक और पृथ्वी के समान ही हमारा सम्बन्ध अभिन्न साथी का है, अतएव यमी यम का साहचर्य प्राप्त करे, इसमें दोष नहीं है॥९॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥१०॥

(यम का कथन) हे यमी ! ऐसा समय भविष्य में आ सकता है, जिसमें बहनें बन्धुत्व भाव रहित भाइयों को ही पतिरूप में स्वीकार करें; किन्तु हे सौभाग्यवती ! आप मुझ से पतित्व सम्बन्ध की अपेक्षा न रखें । आप किसी दूसरे से सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करें॥१०॥

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वेतद्रपामि तन्वा मे तन्वं सं पिपृग्धि ॥११॥

(यमी का कथन) हे यम ! वह कैसा भाई, जिसके रहते बहिन अनाथ फिरे ? वह कैसी बहिन, जो लाचार की तरह पलायन कर जाये? काम भावना से प्रेरित होकर मेरे द्वारा बहुत बात कही जा रही है, इसीलिए परस्पर काया को संयुक्त करो॥११॥

न वा उ ते तन्वा तन्वं सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥

(यम का कथन) हे यमी ! यह यथार्थ है कि मैं शारीरिक सम्बन्धों की इच्छा नहीं करता, क्योंकि भ्राता और बहिन का सम्बन्ध पवित्र है, आप मेरी आकांक्षा त्याग कर अन्य पुरुष के साथ ही प्रसन्नचित्त हों ।

हे सुभगे ! भाई होने के नाते आपका निवेदन मुझे कदापि स्वीकार्य नहीं॥१२॥

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥१३॥

(यमी का कथन) अरे यम ! तुम बहुत दुर्बल हो। तुम्हारे मन और हृदय के भावों को समझने में मुझसे भूल हुई । क्यों रस्सी द्वारा घोड़े को बाँधने के समान तथा लता द्वारा वृक्ष को आच्छादित करने के समान तुम्हें कोई अन्य स्त्री (नारी) स्पर्श कर सकती है (फिर मैं क्यों नहीं ?)॥१३॥

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥१४॥

(यम का कथन) हे यमी ! जब आप इस जानकारी से परिचित हैं, तो आप भी अन्य पुरुष का वृक्ष की लता के समान आश्रय ग्रहण करें, अन्य पुरुष को पति रूप में आप स्वीकार करें, परस्पर एक दूसरे की हार्दिक इच्छाओं के अनुरूप आचरण करें तथा उसी से अपने मंगलकारी सुखों को प्राप्त करें॥१४॥

सूक्त ११

ऋषि: अग्निर्हविर्धान
देवता – अग्नि। छंद – जगती, ७-९ त्रिष्टुप

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् ॥१॥

वर्षणशील, महिमायुक्त और अदम्य अग्निदेव ने अन्तरिक्षीय मेघों का दोहन करके यज्ञ- सम्पादक यजमानों के लिए जल बरसाया। जिस प्रकार वरुणदेव अन्तर्ज्ञान से सम्पूर्ण संसार को जानते हैं, उसी प्रकार वे अग्निदेव भी सम्पूर्ण संसार के ज्ञाता हैं। यज्ञ में प्रयुक्त अग्निदेव की ऋचाओं के अनुरूप अर्चना करें॥१॥

रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥२॥

अग्निदेव की महिमा का गान करने वाली गन्धर्व-पत्नी (वाणी) और जल द्वारा शुद्ध हुई हवियों ने अग्निदेव को सन्तुष्ट किया । एकाग्रतापूर्वक स्तोत्र गान करने वाले साधकों को अखण्ड़ अग्निदेव यज्ञीय सत्कर्मों की और प्रेरित करें । यजमानों में प्रमुख हमारे ज्येष्ठ भ्राता के समान, यज्ञ संचालक इन अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं॥२॥

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥३॥

जिस समय यज्ञ कार्य के इच्छुक और उसकी व्यवस्था जुटाने वाले याजक अग्निदेव की प्रार्थना करते हुए उन्हें यज्ञ के लिए प्रज्वलित करते हैं, उसी अवसर पर कामनाओं को पूर्ण करने वाली, श्रेष्ठ शब्दों वाली (सुन्दर सम्भाषण युक्त) कीर्तिमती, सुविख्यात उषादेवी मनुष्यों के कल्याण के लिए सूर्योदय से पूर्व ही उदित हो जाती हैं॥३॥

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे ।
यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥४॥

इस (दिव्य उषा के आवरण) के बाद यज्ञ प्रेरित श्येन (सुपर्ण – सूर्य) द्वारा बलशाली, महिमामय, दर्शनीय सोम को समुचित मात्रा में लाया गया। जिस समय श्रेष्ठजन, सम्मुख जाने योग्य, दर्शनीय तथा

देवों के आवाहन कर्ता अग्निदेव की स्तुति करते हैं, उसी (यज्ञ के) समय धी (बुद्धि अथवा धारण करने की क्षमता) उत्पन्न होती है॥४॥

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥५॥

हे अग्निदेव ! पशुओं के लिए जिस प्रकार घास आदि आहार विशेष रुचिकर होते हैं, उसी प्रकार आप सदैव रमणीय होकर श्रेष्ठ यज्ञों से मनुष्यों के लिए कल्याणप्रद हों । स्तोताओं के स्तोत्रगान से प्रशंसित होकर आप हविष्यान्न ग्रहण करते हुए विभिन्न देवशक्तियों के साथ हमारे यज्ञ को सफल बनाएँ ॥५॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥६॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार रात्रि रूपी अन्धकार को विनष्ट करने वाले सूर्यदेव अपने प्रकाश रूपी तेज से सर्वत्र फैलते हैं, उसी प्रकार आप भी अपने ज्वाला रूपी तेज को माता-पिता रूपी पृथ्वी-आकाश में विस्तृत करें । सन्मार्ग के अभिलाषी यजमान दैवी गुणों के संवर्द्धन के लिए अन्तःकरण से यज्ञरूपी सत्कर्मों को करने के इच्छुक हैं। अग्निदेव स्तोत्रों को संवर्धित करते हैं । ब्रह्मा यज्ञ कर्म को भली प्रकार

संचालित करने की उत्सुकता से स्तोत्रों को बढ़ाते हैं तथा यज्ञकर्म में कोई त्रुटि न रह जाये, इसके लिए सदैव जागरूक रहते हैं॥६॥

यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत्सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान्भूषति द्यून् ॥७॥

बल से उत्पन्न हे अग्निदेव ! जो मनुष्य आपकी कृपादृष्टि को प्राप्त कर लेते हैं। वे विशेष ख्याति को प्राप्त होते हैं । अन्नादि से सम्पन्न, अश्वादि से युक्त तेजस्-सम्पन्न और शक्तिशाली होकर वे मनुष्य दीर्घजीवन तथा सुख सौभाग्य को प्राप्त करते हैं॥७॥

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।
रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥८॥

हे स्वधायुक्त यज्ञीय अग्निदेव ! जिस अवसर पर हम यजनीय देवताओं के लिए प्रार्थनाओं को सम्पन्न करें तथा आपके द्वारा विभिन्न प्रकार के रत्नादि द्रव्यों को यजमानों में वितरित करते हों, उस समय आप हमारे भी धन का हिस्सा हमें प्रदान करें॥८॥

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥९॥

हे अग्निदेव ! इन सम्पूर्ण देवताओं से सम्पन्न यज्ञ स्थल में रहते हुए आप हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाओं के अभिप्राय को जानें । आप अपने अमृतवर्षक रथ को योजित करें। देवशक्तियों के माता-पिता रूप द्यावा- पृथिवी को हमारे यज्ञ में लेकर आएँ । कोई भी देव हमारे यज्ञकर्म से असन्तुष्ट न हों, अतएव आप यहीं रहें । देवों के आतिथ्य से पृथक् न हों॥९॥

सूक्त १२

ऋषि: अग्निर्हविर्धान
देवता – अग्नि। छंद – त्रिष्टुप

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान्यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ्स्वमसुं यन् ॥१॥

सत्य वचनों के द्वारा द्युलोक और पृथ्वी, यज्ञीय अवसर पर नियमानुसार सर्वप्रथम अग्निदेव का आवाहन करें । तत्पश्चात् तेजस्-सम्पन्न अग्निदेव भी यज्ञीय कर्मों की ओर मनुष्यों को प्रेरित करें । वे अपनी प्रज्वलित ज्योति से यज्ञ में प्रतिष्ठित होकर देवों के आवाहन के लिए उद्यत हों॥१॥

देवो देवान्परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥२॥

दिव्यगुण- सम्पन्न, देवताओं में सत्य के प्रमुख ज्ञाता, सर्वोत्तम अग्निदेव, हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को देवताओं के समीप पहुचाएँ । धूम्र ध्वजा वाले, समिधाओं द्वारा ऊर्ध्वगामी, कान्ति द्वारा उज्ज्वल, प्रशंसनीय देवों के आवाहक, नित्य अग्निदेव को अभिमन्त्रित आहुतियाँ समर्पित की जाती हैं॥२॥

स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३॥

अग्निदेव द्वारा सुखों को प्रदान करने वाले जल का उत्पादन होता है, उससे उत्पादित ओषधियों को द्यावा-पृथिवी द्वारा पोषण किया जाता है । हे अग्निदेव ! आपकी दीप्तिमान् ज्वालाएँ स्वर्गस्थ दिव्य पोषक रस के रूप में जल का दोहन करती हैं। सभी देवताओं द्वारा आपके इस जल-वृष्टि रूपी अनुदान की महिमा का गान किया जाता है॥३॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद्द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥४॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे यज्ञीय कर्मों को उन्नत करें । हे जलवर्षक द्यावा-पृथिवि ! हम आपकी स्तुति करते हैं ।आप इसके अभिप्राय को जानें । स्तोता जिस समय यज्ञ के अवसर पर आपकी प्रार्थना करते

हैं, उसी समय माता-पिता रूपी पृथ्वी और द्युलोक यहाँ जल- वृष्टि करके हमारे लिए विशेष सहायक हों॥४॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥५॥

क्या प्रज्वलित अग्निदेव हमारी प्रार्थनाओं और हविष्यान्न को ग्रहण करेंगे ? क्या हमारे द्वारा उनके नियमों-व्रतों का उचित रीति से निर्वाह किया गया है? इसे जानने में कौन समर्थ है? श्रेष्ठ मित्र को बुलाने के समान ही अग्निदेव भी हमारे आवाहन पर प्रकट होते हैं। हमारी ये प्रार्थनाएँ और हविष्यान्न देवताओं की ओर गमन करें॥५॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥६॥

जल इस भूमि पर अमृत स्वरूप गुणों से सम्पन्न और नानाविध रूपों में संव्याप्त है, जो यमदेव के अपराधों को क्षमा करता है । हे महिमावान् तेजस्वी अग्निदेव ! आप उस जल का संरक्षण करें॥६॥

यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून्परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥७॥

यजमान की यज्ञ वेदी (पूजा वेदी पर प्रतिष्ठित होने वाले देवगण, अग्निदेव के सान्निध्य को प्राप्त करके हर्षित होते हैं। इनके द्वारा ही सूर्य में तेजस्विता (दिवस) तथा चन्द्रमा में रात्रि को स्थापित किया गया है। ये दोनों सूर्य और चन्द्र अनवरत तेजस्विता को धारण किये हुए हैं॥७॥

यस्मिन्देवा मन्मनि संचरन्त्यपीच्ये न वयमस्य विद्म ।
मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥८॥

जिन ज्ञान-सम्पन्न अग्निदेव की उपस्थिति में देवशक्तियाँ अपने कार्यों का निर्वाह करती हैं। हम उनके रहस्यमय स्वरूप को जानने में असमर्थ हैं॥८॥

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥९॥

हे अग्निदेव ! आप समस्त देवताओं से सुशोभित यज्ञस्थल में रहते हुए हमारे द्वारा की गई प्रार्थनाओं के अभिप्राय को समझें । आप अपने अमृतवर्षक रथ को योजित करें । देवशक्तियों के माता-पिता रूप द्युलोक और पृथिवी को हमारे यज्ञ में लेकर आएँ । हमारे यज्ञीय कर्मों से कोई भी देव असन्तुष्ट न हों । आप यहीं रहे, देवों के सान्निध्य को छोड़कर कहीं न जाएँ॥९॥

सूक्त १३

ऋषि: अग्निर्हविर्धान
देवता – विवस्वानादित्यो, हविर्धाने । छंद – त्रिष्टुप, ५ जगती

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥१॥

हे शकटद्वय ! आप दोनों को हम सोम आदि हविष्यान्न से अभिपूरित करके पत्नीशाला (यज्ञशाला में यजमान पत्नी के लिए नियत स्थान) से हविर्धान की ओर लाते हैं, तब यज्ञ को सम्पन्न करते हैं। आहुतियों की तरह हमारे स्तोत्र वचन भी देवों के समीप पहुँचें । दिव्य लोक के उच्च स्थान में प्रतिष्ठित अमरता को प्राप्त देवगण हमारे स्तोत्रों को सुनें॥१॥

यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥२॥

हे शकटदेव ! जब आप परस्पर जुड़कर (युग्म रूप में) उत्साहपूर्वक यज्ञस्थल में उपस्थित होते हैं । उस समय याजकगण आपके ऊपर सोम आदि हविष्यान्न समर्पित करते हैं । आप अपने यथेष्ट स्थल को प्राप्त करें जिससे सोम भी उत्तम स्थल पर सुशोभित हो॥२॥

पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥३॥

हम यज्ञ के पाँचों उपकरणों को यथाक्रम रखते हुए चतुष्पदी त्रिष्टुप् आदि छन्दों का नियमपूर्वक प्रयोग करते हैं। यज्ञस्थल की वेदी पर स्थित सोम को पवित्र करते हुए हम परमात्मा के ॐ नाम का उच्चारण करके अपने यज्ञीय कार्यों को पूर्ण करते हैं॥३॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।
बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥४॥

देवों में किसे मृत्युभय है? (अर्थात् किसी को नहीं) मनुष्यों में किसे अमरता नहीं चाहिए? (अर्थात् सभी को चाहिए)। याज्ञिक जन मन्त्रों से पावन यज्ञ को सम्पादित करते हैं, जिससे हमारे शरीर, आरोग्य लाभ प्राप्त करके मृत्यु के भय से मुक्त रहते हैं॥४॥

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥५॥

पुत्रवत् ऋत्विग्गण प्रशंसनीय श्रेष्ठ पिता स्वरूप सोम के लिए सप्त छन्दों का उच्चारण करते हुए स्तोत्रों का गान करते हैं। ये दोनों शकट दोनों लोकों को प्रकाशित करते हैं। ये दोनों अपने तेज से देवों और मनुष्यों को परिपुष्ट करते हैं॥५॥

सूक्त १३

ऋषि: वैवस्वतो यम:
देवता – अंगिर:, पित्र, अथर्वा , भृगु सोमा:, ७-९ लिंगोक्त देवता:, पितरो, १०-१२ श्वानौ । छंद – त्रिष्टुप, १३, १४, १६ अनुष्टुप, १५ वृहती

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥१॥

हे यजमान ! आप पितरों के अधिपति यमदेव की पुरोडाश आदि समर्पित करते हुए सेवा करें । यमदेव पुण्य कर्मियों को सुखद धाम में ले जाते हैं । वे अनेकों के लिए कल्याणकारी मार्गदर्शन प्रदान करते हैं । विवस्वान् के पुत्र यम के समीप ही सभी मनुष्यों को अन्ततः जाना होता है॥१॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ॥२॥

यम देव की नियम व्यवस्था को कोई परिवर्तित करने में सक्षम नहीं है। जिस मार्ग से हमारे पूर्वकालीन पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से सभी मनुष्य भी स्व-स्व कर्मों के अनुसार लक्ष्य की ओर जायेंगे। हे सर्वोत्तम यमदेव ! आप सभी मनुष्यों के पाप रूपी दुष्कर्म और पुण्य रूपी सत्कर्मों को जानने में समर्थ हैं॥२॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

(सारथी) मातलि, अधीश्वर इन्द्रदेव, काव्ययुक्त पितर जनों की सहायता से यम, अंगिरादि पितरजनों और बृहस्पतिदेव, ऋक्व नामक पितरजनों के सहयोग से उन्नतिशील होते हैं । जो देवताओं को संवर्धित करने वाले हैं अथवा जिन्हें देवता बढ़ाते हैं, वे भली प्रकार प्रगति करते हैं। उनमें से कुछ (देवगण) स्वाहा तथा कुछ (पितर गण) स्वधा द्वारा सन्तुष्ट होते हैं॥३॥

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥४॥

हे यमदेव ! अंगिरादि पितरजनों सहित आप हमारे इस उत्तम यज्ञ में आकर विराजमान हों । ज्ञानी ऋत्विजों के स्तोत्र आपको आमन्त्रित

करें । हे मृत्युपति यम ! इन आहुतियों से तृप्त होकर आप हमें आनन्दित करें॥४॥

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥५॥

हे मृत्युदेव ! नाना स्वरूपों के धारणकर्त्त पूजनीय गिरा देवों के साथ आप यज्ञस्थल पर पधारें और इस यजमान को प्रसन्न करें । जो आपके पिता विवस्वान् हैं, उनको हम यज्ञ में आवाहित करते हैं । वे इस यज्ञस्थल की पूजावेदी पर कुश के आसन पर विराजमान होकर हमें आनन्दित करें॥५॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥६॥

अंगिरा, अथर्वा और भृगु आदि हमारे पितरगण अभी-अभी पधारे हैं। वे सभी सोम के इच्छुक हैं । उन पितरगणों की कृपादृष्टि हमें उपलब्ध हो, हम उनके अनुग्रह से कल्याणकारी मार्ग की ओर बढ़े॥६॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७॥

हे पिता ! जिन पुरातन मार्गों से हमारे पूर्वज पितरगण गये हैं, उन्हीं से आप भी गमन करें । वहाँ स्वधा रूप अमृतान्न से तृप्त होकर राजा यम और वरुणदेवों के दर्शन करें॥७॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।
हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥८॥

हे पिता ! आप उत्तम लोक स्वर्ग में यज्ञ आदि दान-पुण्य कर्मों के फलस्वरूप अपने पितरगणों के साथ संयुक्त हों । पाप कर्मों के प्रभाव से मुक्त होकर पुन: घर में प्रविष्ट हों तथा तेजस्वी देवरूप को प्राप्त करें॥८॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥९॥

हे दुष्ट पिशाचो ! पितरगणों ने इस मृतात्मा के लिए यह स्थान निर्धारित किया है अर्थात् दाह स्थल निश्चित किया है । अत: आप इस स्थान को त्याग कर यहाँ से दूर चले जाएँ । यमदेव ने दिन-रात जल से सिंचित इस स्थल को मृत देहों के लिए प्रदान किया है॥९॥

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥१०॥

हे मृतात्मा ! चार नेत्रों वाले, अद्भुत स्वरूप वाले, जो ये दो सारमेय (सरमा के पुत्र अथवा साथ रमण करने वाले) श्वान हैं, इनके सान्निध्य में आप शीघ्र गमन करें । तदनन्तर जो पितरगण यम के साथ सदैव हर्षित रहते हैं, उन विशिष्ट ज्ञानी पितरों की श्रेणी को आप भी प्राप्त करें॥१०॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥११॥

हे मृत्युदेव यम ! आपके गृहरक्षक, मार्गरक्षक तथा ऋषियों द्वारा ख्याति प्राप्त चार नेत्रों वाले जो दो श्वान (गमनशील दूत) हैं, उनसे मृतात्मा को संरक्षित करें तथा इस मृतात्मा को कल्याण का भागी बनाकर पापकर्मों से मुक्त करें॥११॥

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१२॥

यमदेव के ये दो दूत (कुक्कुर) लम्बी नाक वाले, प्राण हन्ता और अति सामर्थ्यवान् हैं । ये मनुष्यों के प्राणहरण को लक्ष्य करके घूमते हैं। दोनों (यमदूतो हमें सूर्य के दर्शन लाभ के लिए इस स्थान पर कल्याणकारी प्राणदान देने की कृपा करें॥१२॥

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥१३॥

हे त्वग्गण ! यमदेव के लिए हविष्यान्न समर्पित करने के साथ ही उन्हें अभिषवित सोम प्रदान करो। अग्निदेव जिस यज्ञ के वाहक (दूत हैं, वह (यज्ञ) नानाविध मांगलिक ओषधियों से युक्त होकर यमदेव की ओर गमन करता है॥१३॥

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४॥

हे ऋत्विजो ! यमदेव के लिए घृत से परिपूर्ण हविष्य का यजन करते हुए उनकी स्तुति करो। वे यमदेव हमारे दीर्घ जीवन के निमित्त, हमें चिरायु प्रदान करें॥१४॥

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥१५॥

हे ऋत्विजो ! आप मृत्युराज यम के लिए मिष्ठान्न युक्त आहुतियाँ समर्पित करें। प्राचीनकाल में जिन पूर्वज ऋषिगणों ने हमें सन्मार्ग की प्रेरणा दी है, उनके लिए हम नमन करते हैं॥१५॥

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद्बृहत् ।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥१६॥

मृत्युदेव यम त्रिकद्रुक (ज्योति, गौ और आयु) नामक यज्ञ में संरक्षणार्थ उपस्थित हों । वे यमदेव छः स्थानों (द्युलोक, भूलोक, जल, ओषधियाँ, ऋक् और सूनृत) में निवास करने वाले हैं । त्रिष्टुप् , गायत्री एवं दूसरे सभी छन्दों के माध्यम से हम उनका स्तुति गान करते हैं॥१६॥

सूक्त १५

ऋषि: शंखों यामायन:
देवता – पितर । छंद – त्रिष्टुप, ११ जगती

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥

हमारे तीनों प्रकार (उत्तम, मध्यम और निम्न के पितर अनुग्रहपूर्वक इस यज्ञानुष्ठान में उपस्थित हैं। वे पुत्रों की प्राण-रक्षा के उद्देश्य से यज्ञ में समर्पित हविष्यान्न ग्रहण करें तथा हमारी रक्षा करें॥१॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥२॥

जो पितामहादि पूर्वज या उसके पश्चात् मृत्यु को प्राप्त पितरगण हैं या जो पृथिवी के राजसी भोगों का उपभोग करने के लिए उत्पन्न हुए हैं

या जो सौभाग्यवान् वैभव- सम्पन्न बांधवों के रूप में हैं, उन सभी को नमन है॥२॥

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥३॥

हमने यज्ञानुष्ठान सम्पन्न करने का विधि-विधान अपने पितरों से ही सीखा है । वे इससे भली-भाँति परिचित हैं। सभी पितर यज्ञशाला में कुश-आसन पर प्रतिष्ठित होकर हविष्यान्न एवं सोमरस ग्रहण करें॥३॥

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥४॥

हे पितृगण ! हमारे आवाहन पर आप उपस्थित होकर कुश-आसन पर प्रतिष्ठित हों । विभिन्न यज्ञीय पदार्थ आपके लिए प्रस्तुत हैं, इनको स्वीकार कर आप हमारा हर प्रकार से कल्याण करें । पाप से बचाकर रक्षा करें॥४॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५॥

हम अपने पितृगणों का आवाहन करते हैं। कुश-आसन पर विराजमान होकर प्रस्तुत सोमरस आदि हविष्यान्न का उपभोग करें । हमारी प्रार्थना को स्वीकार करके प्रसन्न होते हुए हमारी रक्षा करें॥५॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६॥

हे पितृगण ! हम अबोध बालकों की त्रुटियों को क्षमा करते हुए आप यज्ञशाला में दक्षिण की ओर घुटनों के बल पृथ्वी पर विराजमान होकर यज्ञ की शोभा बढ़ाएँ॥६॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥७॥

अरुणिम ज्वालाओं के सन्निकट बैठने वाले (यज्ञादि कर्म सम्पन्न करने वाले) यजमान को धन-धान्य प्रदान करें । हे पितरो ! आप यजमान के पुत्र-पौत्रों को भी धन-ऐश्वर्य प्रदान करें, जिससे वे यज्ञादि कर्मों के निमित्त धन नियोजित करते रहें॥७॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥८॥

सोमरस तैयार करने वाले वसिष्ठ आदि (याजक) वैभव-सम्पन्न होकर सोमपायों पितरों को हविरूप सोम प्रदान करते हैं। पितरों के साथ पितृपति यम भी हविष्य की कामना करते हैं। जो भी हवियों की कामना करते हैं, वे सभी उन्हें प्राप्त करते हैं॥८॥

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ्सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥९॥

हे अग्निदेव ! यज्ञविधान के ज्ञाता और ऋचाओं के द्रष्टा जो पितरगण देवत्व पद की प्राप्ति कर चुके हैं। यदि वे हमारी श्रद्धा-भावना की अपेक्षा करते हैं, तो हमारे इस यज्ञ में आएँ। उन सम्माननीय, ज्ञानसम्पन्न, सत्यवती, मेधावी, तेजस्विता युक्त पितरगणों के साथ आप भी हमारे यहाँ उपस्थित हों॥९॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥१०॥

सत्यवती, हविष्य के इच्छुक, सोमरस पानकर्ता जो पितरगण हैं, वे इन्द्रदेव और अन्य देवगणों के साथ संयुक्त रूप से रथ पर विराजमान हैं। हे अग्निदेव ! आप उन सभी देव उपासक, प्राचीन

यज्ञीय अनुष्ठानों के निर्वाहक पितरगणों के साथ स्तुतियों द्वारा आवाहन किये जाने पर सादर पधारें॥१०॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥११॥

हे अग्नि के समान तेजस्वी पितरो ! आप यहाँ आएँ और निर्धारित आसन में विराजमान हों । हे पूजनीय पितरो ! पात्रों में स्थित हविष्यान्न का सेवन करें तथा सन्तानादि से युक्त ऐश्वर्य एवं साधन हमें प्रदान करें॥११॥

त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥१२॥

हे जातवेदा अग्निदेव ! हम आपके प्रति स्तुति- प्रार्थना करते हैं । आप हमारी श्रेष्ठ-सुगन्धित आहुतियों को स्वीकार करके पितरगणों को प्रदान करें। पितरगण स्वधी द्वारा समर्पित आहुतियों को ग्रहण करें । हे अग्निदेव ! आप भी श्रद्धा- भवनापूर्वक समर्पित आहुतियों का सेवन करें॥१२॥

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥१३॥

हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! यहाँ जो पितरगण उपस्थित हुए हैं, जो हमसे परिचित हैं, जो हमारे आवाहन पर नहीं आये हैं अथवा जो हमसे अपरिचित हैं, आप उन सभी पितरगणों के सम्पूर्ण ज्ञाता हैं । हे पितरगण ! स्वधायुक्त इस श्रेष्ठ यज्ञ को आप स्वीकार करें॥१३॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४॥

हे अग्निदेव ! जिन पितरों का अग्नि संस्कार किया गया अथवा जिनका संस्कार सम्पन्न नहीं किया गया है, जो पितरंगण स्वधायुक्त अन्न से तृप्ति को प्राप्त करके स्वर्गलोक में हर्षित हैं, आप उनके साथ सुगन्धित द्रव्यों का सेवन करें तथा पितरगणों की आत्माओं को देवत्व प्रदान करें॥१४॥

सूक्त १६

ऋषि: दमनो यामायन:
देवता – अग्नि । छंद – त्रिष्टुप, ११-१४ अनुष्टुप

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः ॥१॥

हे अग्निदेव ! इस मृतात्मा को पीड़ित किये बिना (अन्त्येष्टि) संस्कार सम्पन्न करें । इस मृतात्मा को छिन्न-भिन्न न करें । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! जिस समय आपकी ज्वालाएँ इस देह को भस्मीभूत कर दें, उसी समय इसे (मृतात्मा को) पितरगणों के समीप भेज दें॥१॥

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात्पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥२॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! जब आप मृतशरीर को पूर्णरूप से दग्ध कर दें, तब इस मृतात्मा को पितरजनों को समर्पित करें । जब यह मृतात्मा पुन: प्राणधारी हो, तो देवाश्रय में ही रहे॥२॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥३॥

हे मृत मनुष्य ! आपके प्राण और नेत्र, वायु और सूर्य से संयुक्त हों । आप अपने पुण्य कर्मों के फल की प्राप्ति के लिए स्वर्ग पृथ्वी अथवा जल में निवास करें । यदि वृक्ष वनस्पतियों में आपका कल्याण निहित है, तो सूक्ष्म शरीरों से उन्हीं में प्रवेश करें॥३॥

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥४॥

हे अग्निदेव ! इस मृत पुरुष में जो अविनाशी ईश्वरीय अंश है, उसे आप अपने तेज से तपाएँ- प्रखर बनाएँ। आपकी ज्वालाएँ उसे सुदृढ़ बनाएँ। हे सर्वज्ञाता अग्निदेव ! आप अपनी कल्याणकारी विभूतियों से उन्हें पुण्यात्माओं के लोक में ले जाएँ॥४॥

अव सृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उप वेतु शेषः सं गच्छतां तन्वा जातवेदः ॥५॥

हे अग्निदेव ! जो मृत पुरुष आपके लिए स्वधायुक्त आहुति के रूप को ग्रहण करता है, उसे आप दुबारा पितरजनों के लिए सृजित करें । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! इसका जो आयु भाग शेष है, वह प्राण- सम्पन्न हो तथा पुनः सुदृढ़ शरीरधारी बने॥५॥

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥६॥

हे मृत मनुष्य ! आपके शरीर (जिस अंग-अवयवों को कौवे, चींटी, साँप अथवा किसी दूसरे हिंसक पशु ने व्यथित किया हो, तो सर्व भक्षक अग्निदेव उस अंग को पीड़ारहित करें । शरीर के अन्दर जो पोषक रस रूप सोम विद्यमान हैं, वह भी उसे कष्टमुक्त करे॥६॥

अग्नेर्वर्म परि गोभिर्व्ययस्व सं प्रोर्णुष्व पीवसा मेदसा च ।
नेत्त्वा धृष्णुर्हरसा जर्हृषाणो दधृग्विधक्ष्यन्पर्यङ्खयाते ॥७॥

हे मृतपुरुष ! तुम अपने मेद और मांसादि से पूर्णता युक्त हो । स्वयं अग्नि ज्वाला रूप कवच को धारण कर लेने से शरीर को भस्मीभूत करने को उपस्थित (संलग्न) अग्निदेव आपके समस्त अंगों को नहीं जलायेंगे॥७॥

इममग्ने चमसं मा वि जिह्वरः प्रियो देवानामुत सोम्यानाम् ।
एष यश्चमसो देवपानस्तस्मिन्देवा अमृता मादयन्ते ॥८॥

हे अग्ने ! देवों और पितरगणों के प्रिय इस चमसपात्र को आप हिंसित न करें । यह चमसपात्र मात्र देवताओं के सोमपान के निमित्त ही सुरक्षित है । इसी से सम्पूर्ण अविनाशी देव तथा पितरगण आनन्दित होते हैं॥८॥

क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥९॥

मांस भक्षक (चिताग्नि) अग्निदेव को हम यहाँ से दूर करते हैं, वे शवदाहक अग्निदेव मृत्युराज यम के ही समीप रहें । यहाँ पर दूसरे सुप्रसिद्ध जातवेदा अग्निदेव हैं, जो हमारी आहुतियों को देवताओं के समीप पहुँचाएँगे॥९॥

यो अग्निः क्रव्यात्प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं स घर्ममिन्वात्परमे सधस्थे ॥१०॥

जो ये शेव-दाहक अग्निदेव चितास्थल में वास करते हैं, पितृयज्ञ के लिए उन्हें दूर करते हुए दूसरे पवित्र यज्ञाग्नि की स्थापना करते हैं ।

वे सर्वश्रेष्ठ यज्ञ स्थल में प्रतिष्ठित अग्निदेव हमारे तेजस्वी यज्ञ को पूर्ण करें॥१०॥

योअग्निः क्रव्यवाहनः पितॄन्यक्षदृतावृधः ।
प्रेदु हव्यानि वोचति देवेभ्यश्च पितृभ्य आ ॥११॥

श्राद्ध कर्म के समय समर्पित हव्य को वहन करने वाले अग्निदेव यज्ञ को समृद्धि-सम्पन्न बनाते हैं । वे देवों एवं पितरों तक हव्य पहुँचाकर उनकी परिचर्या करते हैं॥११॥

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥१२॥

हे पवित्र यज्ञाग्ने ! हम श्रद्धापूर्वक यत्न करते हुए आपको प्रतिष्ठित करते हैं तथा अधिक प्रज्वलित करने का प्रयत्न करते हैं । जो देव एवं पितृगण यज्ञ की कामना करते हैं, आप उन तक समर्पित हव्य को पहुँचाते हैं॥१२॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥१३॥

हे अग्निदेव ! आपने जिस भूस्थल को दग्ध किया है, उसे पुनः तापरहित (उर्वरक) बनाएँ । यहाँ जलाई युक्त पवित्र और अनेक शाखा युक्त दूर्वा घास उत्पन्न हो॥१३॥

शीतिके शीतिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्या सु सं गम इमं स्वग्निं हर्षय ॥१४॥

शीतल तथा आह्लादप्रद हे पृथिवि ! आप, सबके लिए आनन्दप्रद, मंगलकारी तथा शीतलता प्रदान करने वाली ओषधियों से परिपूर्ण हैं। आप अग्निदेव को संतुष्ट करके मेढ़क की इच्छानुरूप जल वृष्टि से युक्त हों॥१४॥

सूक्त १७

ऋषि: देवश्रवा यामायन:
देवता – १-२ सरण्यू, ३-६ पूषा, ७-९ सरस्वती, १०-१४ आप:, ११-१३ सोमो। छंद – त्रिष्टुप, १३-१४ अनुष्टुप १३ पुरस्ताद्वृहती

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥१॥

त्वष्टा (स्रष्टा) अपनी पुत्री (प्रकृति) को वहन करने योग्य अथवा विवाहित करते हैं । (इस प्रक्रिया में) समस्त विश्व के प्राणी सम्मिलित होते हैं । यम की माता (सरयू) का जब सम्बन्ध हुआ, उस समय विवस्वान् (सूर्य) की महिमामयी पत्नी लुप्त हुई॥१॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥२॥

अमर (सरण्यू) को (देवताओं ने) मनुष्यों से रहस्यमय ढंग से छिपा लिया। सरयू के समान ही दूसरी स्त्री को विनिर्मित करके विवस्वान् (सूर्य) को प्रदान किया । उस समय सरण्यू वहाँ पर थीं, उनने आरोग्यप्रद अश्विनी कुमारों को गर्भ में धारण किया, जिससे ये दोनों जुड़वाँ सन्तान के रूप में पैदा हुए॥२॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः ।
स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥३॥

ज्ञानवान्, सम्पूर्ण विश्व के संरक्षक और पशुधन से सम्पन्न पूषादेव आपको सुन्दर लोक की ओर ले जाएँ। अग्निदेव आपको धनैश्वर्य से सम्पन्न बनाएँ तथा सुखों के दाता देवताओं और पितरगणों के समीप पहुँचाएँ॥३॥

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥४॥

सर्वत्र संचरणशील प्राणवायु आपका सभी प्रकार से संरक्षण करे । श्रेष्ठ मार्गदर्शक, सबसे आगे रहने वाले पूषादेव (सूर्य) आपका संरक्षण करें । जिस श्रेष्ठ लोक में पुण्यात्माएँ प्रतिष्ठित हैं , सवितादेव आपको भी वहीं प्रतिष्ठित करें॥४॥

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥५॥

सम्पूर्ण विश्व के पोषक पूषादेव (सूर्य) इन सभी दिशाओं से परिचित हैं, वे हमें भयमुक्त मार्ग से ले जाएँ। कल्याणकारी, सर्वोत्तम, दिव्यता युक्त तथा मेधावी पूषादेव सदैव हमारे अग्रगामी रहें॥५॥

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥६॥

पूषादेव स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य स्थित सभी मार्गों में श्रेष्ठ, सर्वोत्तम मार्ग में उत्पन्न हुए । द्यावा-पृथिवी, जो परस्पर स्नेहयुक्त तथा श्रेष्ठ स्थानों से सम्पन्न हैं, उनके बीच मेधावी पूषादेव विशेष रूप से सुशोभित होते हैं॥६॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥७॥

दैवी गुणों के इच्छुक मनुष्य देवी सरस्वती का आवाहन करते हैं । यज्ञ के विस्तारित होने पर वे देवी सरस्वती की ही स्तुति करते हैं। श्रेष्ठ पुण्यात्माओं द्वारा देवी सरस्वती के आवाहन किये जाने पर, वे दानियों की आकांक्षाओं को परिपूर्ण करती हैं॥७॥

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥८॥

हे सरस्वती देवि ! आप पितरगणों के साथ स्वधायुक्त हविष्यान्न से सन्तुष्ट होकर प्रसन्नतापूर्वक एक ही रथ पर गमन करें। इस यज्ञ में श्रेष्ठ आसन पर विराजमान होकर हमें आरोग्यता और अन्न प्रदान करें॥८॥

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥९॥

यज्ञस्थल के दक्षिण भाग में प्रतिष्ठित पितरगण देवी सरस्वती का आवाहन करते हैं । इस यज्ञ- सम्पादक यजमान के लिए आप प्रचुर मात्रा में दिव्यधन तथा पोषक अन्न प्रदान करें॥९॥

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥१०॥

मातृवत् पोषक जल हमें पावन बनाए । घृतरूपी जल हमारी अशुद्धता का निवारण करें । जल की दिव्यता अपने दिव्य स्रोत से

सभी पापों का शोधन करे । जल से शुद्ध और पवित्र बनकर हम ऊर्ध्वगामी हों॥१०॥

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु संचरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥११॥

सोमरस प्राचीन ऋषियों तथा देवताओं के लिए अन्तरिक्ष लोक से उत्पन्न हुआ हैं । जो हमारे प्रखर- तेजस्वी पूर्वज थे, उन्हें ही यह सोमरस उपलब्ध हुआ। हम सात याज्ञिक, समान लोक में रहने वाले, उस दिव्य सोमरस को आहुतिरूप में समर्पित करते हैं॥११॥

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् ॥१२॥

हे सोमदेव ! तेजस्वी रूप में प्रवाहित होने वाले, पवित्रता से क्षरित होने वाले अथवा अभिषवण फलक के निकट ऋत्विजों के हाथों से गिरने वाले आपके अवयव- रसों को हम नमन करते हुए यज्ञ में समर्पित करते हैं॥१२॥

यस्ते द्रप्सः स्कन्नो यस्ते अंशुरवश्च यः परः स्रुचा ।
अयं देवो बृहस्पतिः सं तं सिञ्चतु राधसे ॥१३॥

हे सोमदेव ! सुक् पात्र से नीचे टपकने वाले आपके रस अंश को तथा प्रवाहित होने वाले आपके रस भाग को बृहस्पतिदेव ग्रहण करें, जिससे हमारे ऐश्वर्य में वृद्धि हो॥१३॥

पयस्वतीरोषधयः पयस्वन्मामकं वचः ।
अपां पयस्वदित्पयस्तेन मा सह शुन्धत ॥१४॥

हे जल देव ! ओषधियाँ आपके पोषणयुक्त रस से ओतप्रोत हैं। हमारे सारगर्भित स्तोत्र के समान जल का सूक्ष्म अंश भी अति सूक्ष्म है । इसके साथ आप हमें पवित्रता प्रदान करें॥१४॥

सूक्त १७

ऋषि: संकुसुको यामायन:
देवता – १-४ मृत्यु, ५ धाता, ६ त्वष्टा, ७-१३ पितृमेध, १४ प्रजापतिर्वा। छंद – त्रिष्टुप, प्रस्तारपंक्ति १३ जगती १४ अनुष्टुप।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥१॥

हे मृत्युदेव ! आप सबसे भिन्न दूसरे ही मार्ग से गमन करें । जो देवयान मार्ग से भिन्न है, उसी से आप प्रस्थान करें । दिव्यदृष्टि सम्पन्न हे सर्वश्रुत देव ! आपसे विनम्र आग्रह है कि हमारे पुत्र-पौत्रादि सन्तानों तथा वीरों को हिंसित न करें॥१॥

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥२॥

हे मृत पुरुष के संबन्धियो ! जो मनुष्य मृत्यु मार्ग को त्यागकर चलते हैं, वे दीर्घ और श्रेष्ठ आयु को धारण करते हैं। आप सब ऐसा ही करें । हे याज्ञिक यजमानो ! आप सभी पुत्र-पौत्र, गौ आदि ऐश्वर्यों से सम्पन्न होकर पापों से मुक्त हों तथा शुद्ध और पवित्र जीवन व्यतीत करें॥२॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥३॥

ये जीवित मनुष्य मृत बान्धवों के समीप ही स्थित न रहें, हमारा आज का यह पितृमेध यज्ञ कल्याणकारी ढंग से पूर्ण हो। हम दीर्घ आयुष्य का लाभ प्राप्त करके हँसी-खुशी का आनन्दमय जीवन जियें । हम पूर्व दिशा की ओर मुख करके आगे की यात्रा पर बढ़े॥३॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥४॥

प्राणधारी मनुष्यों के संरक्षण के लिये हम यह (पत्थर की) परिधि तैयार करते हैं, जिससे कोई भी अल्प मृत्यु को प्राप्त न हो । ये पुत्र-पौत्रादि शतायु को लाभ प्राप्त करें। हम प्रस्तर का व्यवधान उपस्थित करके मृत्यु को अनुबन्धित करते हैं॥४॥

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।

यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥५॥

जिस प्रकार दिन एक के बाद एक क्रमानुसार बीतते हैं, जैसे ऋतुएँ एक के बाद एक व्यतीत होती हैं, जिस प्रकार पहले से उत्पन्न वृद्ध पुरुषों के रहते पुत्रादि शरीर नहीं त्यागते, ऐसे ही हे विधाता ! आप हमारे स्वजनों को दीर्घ जीवन के लाभ से वंचित न करें॥५॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ॥६॥

हे मृतक के पुत्रादिको ! आप अपनी पूर्ण आयु को भोगते हुए वार्धक्य को प्राप्त करें । क्रम से आप प्रगति मार्ग पर बढ़े । इस लोक में श्रेष्ठ जन्म वाले त्वष्टादेव आपको इन मनुष्यों के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए दीर्घायुष्य प्रदान करें॥६॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥७॥

ये सधवा (सौभाग्यवती) और सुन्दर नारियाँ घृताञ्जन से शोभायमान होकर अपने घरों में प्रविष्ट हों । ये नारियाँ आँसुओं को रोककर, मानसिक विकारों का त्याग करती हुईं, आभूषणों से सुसज्जित होकर आदरपूर्वक आगे-आगे चलती हुईं घरों में प्रविष्ट हों॥७॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥८॥

हे मृतक पत्नी ! आपके पति मृत्यु को प्राप्त कर चुके हैं। इन्हें छोड़कर आप अपने पुत्रादि और घर-परिवार पर विचार करती हुई उठे । आप अपने पति के साथ सन्तानोत्पादन आदि स्त्री- कर्तव्य का निर्वाह कर चुकी हैं, अत: घर लौट चलें॥८॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥९॥

अपनी प्रजा के संरक्षण के लिए आवश्यक बल और तेज़ हमें उपलब्ध हो, इस हेतु मैं मृतक के हाथ से धनुष को धारण करता हूँ। इस राष्ट्र में हम श्रेष्ठ वीर सन्तानों को प्राप्त करके सभी अहंकारी रिपुओं पर विजयी हों । हे मृतक ! आप यहीं पर निवास करें॥९॥

उप सर्प मातरं भूमिमेतामुरुव्यचसं पृथिवीं सुशेवाम् ।
ऊर्णम्रदा युवतिर्दक्षिणावत एषा त्वा पातु निर्ऋतेरुपस्थात् ॥१०॥

हे मृतक ! आप इस मातृस्वरूपा, महिमामयी, सर्वव्यापिनी तथा सुखदायिनी धरती माता की गोद में विराजमान हों। ये धरती माता

ऊन के समान कोमल स्पर्शवाली तथा दानी पुरुष की स्त्री के समान ही सभी ऐश्वयों की स्वामिनी हैं । ये आपको पापकर्मों के दुष्प्रभाव से मुक्त करें॥१०॥

उच्छ्वञ्चस्व पृथिवि मा नि बाधथाः सूपायनास्मै भव सूपवञ्चना ।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णुहि ॥११॥

हे धरती माता ! मृतक को पीड़ादायक संताप से रक्षित करने के लिए आप इसे ऊपर उठायें । इसका भली प्रकार स्वागत- सत्कार करने वाली तथा सुख में साथ रहने वाली बनें । हे भूमाता ! जिस प्रकार माता, पुत्र को अञ्चल से ढकती है, उसी प्रकार आप भी इसे सभी ओर से आच्छादित करें॥११॥

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥१२॥

इस मृतक देह को आच्छादित करने वाली धरती माता भली प्रकार स्थित हो तथा हजारों प्रकार के धूलिकण इसके ऊपर समर्पित करें। यह धरती घृत की स्निग्धता के समान इसे आश्रय प्रदान करने वाली होकर सुखदायी हो॥१२॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।

एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥१३॥

हे अस्थि-कुम्भ ! आपके ऊपर पृथ्वी (मिट्टी) को भली प्रकार स्थापित करते हैं, आप इस भार को वहन करें। यह आपको पीड़ा न पहुँचाए। आपके इस अवलम्बन को पितरगण धारण करें । यमदेव यहाँ आपके निमित्त निवास-स्थल प्रदान करें॥१३॥

प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥१४॥

जिस प्रकार बाण के मूल में पंख लगाते हैं, वैसे ही श्रेष्ठ दिन में देवताओं ने मुझ (संकुसुक) ष को स्थापित किया है । जिस प्रकार तीव्र गतिशील अश्वों को लगाम द्वारा ग्रहण करते हैं (अनुकूल बनाते हैं), वैसे ही हमारी पूजनीय प्रार्थना को आप ग्रहण करें॥१४॥

सूक्त १९

ऋषि: माथितो यामायन:, भृगुर्वारुणिर्वा, भार्गवश्चयवनो
देवता – आप:, गावो, अग्निषोमौ। छंद – अनुष्टुप ६ गायत्री।

नि वर्तध्वं मानु गातास्मान्त्सिषक्त रेवतीः ।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् ॥१॥

हे गौओ ! आप हमें छोड़कर किसी दूसरे के पास न जाएँ, वापस लौट आएँ । हे धन-सम्पन्न गौओ ! आप हमें दुग्ध प्रदान करते हुए परिपुष्ट करें । हे अग्निदेव ! आप निरन्तर धन प्रदान करने वाले हैं, आप और सोमदेव मिलकर हमें ऐश्वर्य- सम्पदा प्रदान करें॥१॥

पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नि यच्छत्वग्निरेना उपाजतु ॥२॥

हे यजमान ! इन गौओं को बारम्बार हमारे समीप लाएँ, तत्पश्चात् इन्हें अपने नियन्त्रण में रखें । इन्द्रदेव भी इन्हें आपके नियन्त्रण में रखने में सहायक हों तथा अग्निदेव इन्हें दुधारू बनाएँ॥२॥

पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥३॥

ये गौएँ बार-बार लौटकर हमारे पास आगमन करें । हमारे संरक्षण में रहकर ये परिपुष्ट हों । हे अग्निदेव ! आप इन्हें हमारे इस गोष्ठ में स्थापित करें। ये यहाँ रहती हुई धनैश्वर्य को परिपुष्ट करें॥३॥

यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥४॥

हम गोशाला , गौओं की गोष्ठ, उनकी उपस्थिति, गौओं का निर्धारित समय पर लौटना, चारागृह में गमन, पुनः वापस आगमन आदि गौओं की स्वाभाविक क्रियाओं की स्तुति करते हैं। गो संरक्षक गोपालों की भी स्तुति करते हैं॥४॥

य उदानड्व्ययनं य उदानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा नि वर्तताम् ॥५॥

गौओं को चराने वाले जो चारों ओर उन्हें खोजते रहते हैं, जो उनके साथ-साथ जाने का अनुभव लाभ लेते हैं, वे गोपाल गौओं को चराकर कुशलतापूर्वक घर वापस आएँ ॥५॥

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि ।
जीवाभिर्भुनजामहै ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे सहायक बनकर गौओं को हमारी ओर प्रेरित करें । ऐसी गौएँ हमें बार-बार प्रदान करें, जिनसे हम सुखों का उपभोग करें॥६॥

परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः ॥७॥

हे देवों ! हम आपको प्रचुर अन्न-सामग्री, घृत और दुग्धादि पदार्थों से युक्त हविष्यान्न समर्पित करते हैं। जो भी यज्ञीय सत्कर्मों को पूर्ण करने वाले देवता हैं, वे सभी हमें गौ आदि ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करें॥७॥

आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना नि वर्तय ॥८॥

हे गौओं को चराने वाले गोपालो ! आप इन गौओं को हमारे समीप लेकर आएँ । हे गौओ ! आप भी आएँ । हे गोपालो ! आप गौओं को वापस लेकर आएँ । (गोपाल प्रश्न करता है) मैं कहाँ से लाऊँ ? (उत्तर) चारों दिशाओं से गौओं को इकट्ठा करके घर वापस लाएँ॥८॥

सूक्त २०

ऋषिः ऐन्द्रो विमदः,प्राजापत्यो, वासुको, वसुकृद्धा
देवता – अग्नि। छंद –गायत्री, १ एकपदा विराट, २ अनुष्टुप, ९ विराट, १० त्रिष्टुप ।

भद्रं नो अपि वातय मनः ॥१॥

हे अग्निदेवे ! आप हमारे मन को श्रेष्ठ-मंगलकारी संकल्पों से संयुक्त करें॥१॥

अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धर्मन्त्स्वरेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः ॥२॥

हविभक्षक, देवों में तरुणतम, दुर्द्धर्ष, सबके मित्र तथा अपराजेय अग्निदेव की हम प्रार्थना करते हैं । इस यज्ञ में सभी देवता , माता के दूध के समान अपने लिए प्रदत्त आहुतियों का सेवन करते हैं॥२॥

यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति ।
भ्राजते श्रेणिदन् ॥३॥

सत्कर्मों के आश्रयरूप, तेजस्वी अग्निदेव को स्तोतागण विभिन्न स्तोत्रों से संवर्धित करते हैं। वे कल्याणकारी अग्निदेव इन स्तोत्रों से विशेष शोभायमान होते हैं॥३॥

अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानड्दिवो अन्तान् ।
कविरभ्रं दीद्यानः ॥४॥

यजमानों के आश्रयरूप अग्निदेव जब प्रज्वलित होकर ऊर्ध्वगामी होते हैं, तब दिव्यलोक तक संव्याप्त हो जाते हैं। वे मेघमण्डल को विद्युत्रूप से प्रकाशित करके श्रेष्ठ पद पर विराजमान होते हैं॥४॥

जुषद्धव्या मानुषस्योर्ध्वस्तस्थावृभ्वा यज्ञे ।
मिन्वन्त्सद्म पुर एति ॥५॥

इस श्रेष्ठ यज्ञ में आहुतियों के सेवनकर्ता अग्निदेव ज्योति स्वरूप होकर उन्नत होते हैं। ऐसे में वे उत्तर वेदी को पार करते हुए (हमारे-याजक के सामने उपस्थित होते हैं॥५॥

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति ।

अग्निं देवा वाशीमन्तम् ॥६॥

अग्निदेव ही हव्य तथा आहुतियों को ग्रहण करके कल्याणकारी यज्ञ को सम्पन्न करने वाले हैं। आप ही देवताओं के आवाहनकर्ता हैं । देवशक्तियों उन्हीं प्रशंसनीय अग्निदेव के साथ यज्ञ में आगमन करती हैं॥६॥

यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य ।
अद्रेः सूनुमायुमाहुः ॥७॥

जिन अग्निदेव को पत्थरों के घर्षण से पैदा होने के कारण पाषाण-पुत्र की संज्ञा से विभूषित किया जाता है, यज्ञ के धारणकर्ता उन अग्निदेव की, श्रेष्-सुखमय जीवन की प्राप्ति के लिए, हम श्रद्धापूर्वक अर्चना करते हैं॥७॥

नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आ स्युः ।
अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥८॥

अग्निदेव को आहुतियों द्वारा संवर्धित करते हुए हमारे पुत्र-पौत्रादि श्रेष्ठ सन्तानें सभी प्रकार की श्रेष्ठतम सम्पत्तियों को प्राप्त करें , ऐसी हमारी मंगल कामना हैं॥८॥

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥९॥

अग्निदेव का रथ कृष्णवर्ण, कान्तिमान् , तेजस्विता-सम्पन्न, लालवर्ण युक्त, सहजता से गमनशील, तीव्रगामी एवं कीर्तिमान् है । स्वर्ण के समान उज्ज्वल दीप्तिमान् उस रथ को सृजेता ने विनिर्मित किया है॥९॥

एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।
गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१०॥

हे तेजस्वी अग्ने ! आप अमृत स्वरूप ऐश्वर्य से सम्पन्न हैं। सद्बुद्धि की कामना से प्रेरित विमद ऋषि ने आपके लिए उत्तम स्तोत्रों की रचना की है । हे बलवर्द्धक अग्निदेव ! आप प्रार्थनाओं को स्वीकार करते हुए उनके लिए श्रेष्ठ निवास, उत्तम बल तथा प्राप्त करने योग्य जो भी अन्नादि उपभोग्य सामग्री है, वह सभी प्रदान करें॥१०॥

सूक्त २१

ऋषिः ऐन्द्रो विमदः,प्राजापत्यो, वासुको, वसुकृद्धा
देवता – अग्नि। छंद – आस्तारपंक्ति

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे ॥१॥

हम स्वरचित प्रार्थना मन्त्रों से देवों के आवाहनकर्ता , पावन, ज्योतिर्मय तथा सर्वत्र विद्यमान अग्निदेव का वरण करते हैं । कुश के आसनों से सुशोभित यज्ञ तथा आनन्द प्राप्ति के लिए हम उन्हें धारण करते हैं। वे अपनी शोधक प्रदीप्त ज्वालाओं को विमद ऋषि (हमारे आनन्द) के लिए प्रेरित करें॥१॥

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे ॥२॥

प्रखर तेजस्विता-सम्पन्न और ऐश्वर्य-सम्पन्न यजमान आपको शोभायमान करते हैं । हे तेजस्वी अग्निदेव ! सहज गति से क्षरणशील (चलने वाली) आहुतियाँ आपकी सन्तुष्टि के लिए आपके समीप जाती हैं। आप उन्हें धारण करके संवर्द्धित होते हैं॥२॥

त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।
कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे ॥३॥

जिस प्रकार वृष्टिरूप जल के अभिषिञ्चन से पृथ्वी की सेवा होती है, उसी प्रकार यज्ञ के धारणकर्ता जत्विज् हवन में प्रयुक्त पात्रों से आपको सींचते हैं। आप कृष्णवर्ण की ज्वालाओं से युक्त आभा वाले होकर, देवताओं की प्रसन्नता हेतु अत्यधिक सुशोभित होते हैं । हे अग्निदेव ! इसीलिए आप महिमामय हैं॥३॥

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।
तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ॥४॥

बल-सम्पन्न, अमर, तेजस्वी हे अग्निदेव ! आप जिस ऐश्वर्य को उत्तम और आश्चर्यजनक विधि से स्वीकार करते हैं, उसे देवताओं के आनन्द, हमारे बल और अन्नादि की समृद्धि के लिए यज्ञों में प्रदान करें। आप महिमायुक्त सामर्थ्य से सम्पन्न हैं॥४॥

अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥५॥

सभी प्रकार के स्तोत्रों के ज्ञाता ऋषि अथर्वा ने अग्निदेव को प्रकट किया। सबकी कामना पूर्ण करने वाले वे अग्निदेव देवावाहन के लिए सन्देशवाहक रूप हैं। वे हर्षित होकर सुखों को प्रदान करें । हे अग्निदेव ! आप महिमामय हैं॥५॥

त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे ।
त्वं वसूनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥६॥

हे अग्निदेव ! ऋत्विज् और यजमान यज्ञ की प्रारम्भिक वेला में आपकी स्तुति करते हैं तथा सभी प्रकार के अभीष्ट वैभवों को विशिष्ट रूप से ग्रहण करते हैं। आप यजमानों के आनन्द और मंगल के लिए दान प्रदान करते हैं, अतएव आप महान् हैं॥६॥

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥७॥

घृत से प्रज्वलित, तेजस्वी ऋत्विजों से सम्बद्ध, मनोहर, सामर्थ्यवान् तथा मेधावी रूप हे अग्निदेव ! आपको यजमान आनन्द प्राप्ति के लिए यज्ञ में प्रतिष्ठित करते हैं, अतएव आप पूजनीय हैं॥७॥

अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत् ।
अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ॥८॥

हे अग्निदेव ! आपकी महिमा महान् है, आप प्रज्वलित तेज से अत्यधिक ख्यातिलब्ध हैं। युद्ध भूमि में मदमत्त वृषभ के समान ध्वनि करते हुए आप अति शक्तिशाली हो जाते हैं। ओषधियों में बीजोत्पत्ति के आप ही कारण हैं । सोम आदि से आनन्द प्राप्त होने पर आप महिमायुक्त होते हैं॥८॥

सूक्त २२

ऋषिः ऐन्द्रो विमद:,प्राजापत्यो, वासुको, वसुकृद्धा
देवता – इन्द्र। छंद – पुरस्ताद वृहती, ५, ७, ९ अनुष्टुप, १५ त्रिष्टुप

कुह श्रुत इन्द्रः कस्मिन्नद्य जने मित्रो न श्रूयते ।
ऋषीणां वा यः क्षये गुहा वा चर्कृषे गिरा ॥१॥

इन्द्रदेव की ख्याति आज कहाँ है ? मित्र के समान हितैषी इन्द्र आज किन व्यक्तियों के बीच ख्याति पा रहे हैं? जो ऋषि के आश्रमों अथवा गुफाओं में स्तुतियों से उपास्य रहे हैं, वे इन्द्र आज कौन सी स्थिति में होंगे?॥१॥

इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ॥२॥

आज हमारे इस यज्ञ में इन्द्रदेव प्रमुख प्रतिनिधि हैं। इसमें वज्रधारी और प्रशंसनीय इन्द्रदेव की हम प्रार्थना करते हैं। मित्र के समान कल्याणकारी इन्द्रदेव हमें कीर्तिमान् तथा यशस्वी बनाएँ॥२॥

महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥३॥

शक्ति के स्वामी इन्द्रदेव स्तोताओं को महान् वैभव प्रदान करते हैं। वे शत्रु संहारक, वज्र के धारण कर्ता हैं। जैसे पिता अपने प्रियपुत्र का संरक्षण करता है। वैसे ही आप हमारी रक्षा करें॥३॥

युजानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥४॥

हे वज्रधारी इन्द्रदेव ! आप देवस्वरूप हैं । आप वायु से भी अधिक गतिशील, श्रेष्ठ मार्ग से जाने वाले दोनों अश्वों को रथ में योजित करके, मार्ग को बनाते हुए सदैव प्रशंसनीय होते हैं॥४॥

त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप वायु के समान गमनशील हैं । सरल मार्गों से जाने वाले दोनों अश्वों को अपनी सामर्थ्य शक्ति से गतिमान करते हुए आप हमारे अभिमुख प्रस्तुत होते हैं । इन दोनों अश्वों के सञ्चालन में देवों ओर मनुष्यों में कोई भी समर्थ नहीं है तथा इनके सामर्थ्य को कोई जानता भी नहीं है॥५॥

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ॥६॥

यज्ञ समापन के पश्चात् जिस समय इन्द्रदेव और अग्निदेव अपने धाम को लौटने लगे, उसी समय उशना भार्गव ने प्रश्न किया कि आप दोनों किस उद्देश्य से इतनी दूर से हम यजमानों के घर पर पधारे हैं ?॥६॥

आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।
तत्त्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमें सभी प्रकार से संरक्षण प्रदान करें । हमने महिमामय स्तुतियों के साथ यज्ञीय हविष्यान्न आपके निमित्त समर्पित किया है । हम उसी दिव्य, श्रेष्ठ संरक्षण शक्ति की आपसे कामना करते हैं, जिस सामर्थ्य से शुष्ण राक्षस का आपने संहार किया॥७॥

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।

त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ॥८॥

हे शत्रु संहारकर्ता इन्द्रदेव ! जो पुरुषार्थहीन, सबके अपमान कर्ता, यज्ञादि सत्कर्मों से रहित, असुरता से ओतप्रोत, दुष्ट दस्यु हमारी सेना को सभी ओर से घेरे हैं, आप उन दस्युओं को उचित दण्ड दें, उनका संहार करें॥८॥

त्वं न इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो बर्हणा ।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥९॥

हे सामर्थ्यशाली इन्द्रदेव ! आप वीर मरुद्गणों के सहयोग से हमारा संरक्षण करें। आपसे संरक्षित होकर हम युद्ध भूमि में आपकी सामर्थ्य से शत्रुओं के संहार में सक्षम होंगे। आपकी कामनाओं को पूर्ण करने के सुख-साधन प्रचुर मात्रा में (हमारे पास) हैं। आपके साधक-भक्त, अधिपति के समान ही नानाविध प्रार्थनाओं से आपको प्रशंसित करते हैं॥९॥

त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नृन्कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥१०॥

शूरवीर, वज्रधारी हे इन्द्रदेव ! आप मरुद्गणों को वृत्ररूपी शत्रुओं के संहार के लिए उस समय प्रोत्साहित करते हैं, जब आप ज्ञानी

स्तोताओं के द्वारा नक्षत्रलोकवासी देवताओं के लिए उच्चरित स्तोत्रों का श्रवण करते हैं॥१०॥

मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥११॥

वज्रधारी शूरवीर हे इन्द्रदेव ! युद्ध भूमि में आप तीव्रगति से सक्रिय रहते हैं। आपने मरुद्गणों के सहयोग से शुष्ण- राक्षस का समूल नाश किया । कृपापूर्वक अनुदान देना ही आपका प्रमुख कर्म हैं॥११॥

माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥१२॥

हे वीर इन्द्रदेव ! हमारी अभीष्ट कामनाएँ और सम्पत्तियाँ कभी भी सत्प्रयोजन विहीन न हों । हे वज्रधारी देव ! हम आपके दिव्य संरक्षण में पल्लवित-पुष्पित होकर सदा सुखी रहें॥१२॥

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥१३॥

हे इन्द्रदेव ! हमारी शुभ आकाक्षाएँ और प्रार्थनाएँ आपके समीप पहुँचकर सत्यरूप तथा हिंसारहित हों । हे वज्रधारी ! आपकी कृपा

से हम गौदुग्ध के समान हीं आपके आशीर्वाद के पुण्यफल को प्राप्त करें॥१३॥

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः ॥१४॥

देवताओं के प्रति समर्पित यज्ञादि क्रियाओं द्वारा यह पृथ्वी हाथ-पैरों से रहित होते हुए भी अतिव्यापक (समृद्ध हुई है । सम्पूर्ण मनुष्यों के हित के लिए पृथ्वी की चारों ओर से परिक्रमा करके राक्षस शुष्ण का आप (इन्द्रदेव) ने वध किया॥१४॥

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५॥

हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! आप सोमरस का शीघ्रतापूर्वक पान करें । हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! आप स्वयं धन-सम्पन्न हैं, अतएव संरक्षक होकर हमें हिंसित न करें। आप स्तुतिकर्ता यजमान को संरक्षित करें । हम प्रचुर धन के स्वामी हों । हमें ऐश्वर्य-सम्पन्न बनने का आशीर्वाद प्रदान करें॥१५॥

सूक्त २३

ऋषि: ऐन्द्रो विमद:,प्राजापत्यो, वासुको, वसुकृद्वा
देवता – इन्द्र: छंद – १, ७ त्रिष्टुप, ५ अभिसारिणी

यजामह इन्द्रं वज्रदक्षिणं हरीणां रथ्यं विव्रतानाम् ।
प्र श्मश्रु दोधुवदूर्ध्वथा भूद्वि सेनाभिर्दयमानो वि राधसा ॥१॥

वज्रपाणि, गतिमान् रथ पर आसीन, केशों या बाहुओं को हिलाकर शत्रुओं को प्रकम्पित करने वाले, सर्वश्रेष्ठ, सेना के माध्यम से शत्रुओं को भयभीत करने वाले इन्द्रदेव के निमित्त हम आहुति प्रदान करते हैं। वे इन्द्रदेव उपासकों को धन-वैभव प्रदान करते हैं॥१॥

हरी न्वस्य या वने विदे वस्विन्द्रो मघैर्मघवा वृत्रहा भुवत् ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षाः पत्यते शवोऽव क्ष्णौमि दासस्य नाम चित् ॥२॥

इन्द्रदेव के इन दोनों अश्वों ने यज्ञ के माध्यम से धन अर्जित किया, उन्हीं से प्राप्त प्रचुर धन के अधिपति होकर इन्द्रदेव ने वृत्रासुर को विनष्ट किया । तेजस्विता युक्त, शक्तिसम्पन्न और सहायक इन्द्रदेव

बल और धन के अधिपति हैं । हम दस्यु समुदाय का – शत्रुओं का समूल नाश करने के इच्छुक हैं॥२॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥३॥

इन्द्रदेव जब अपने तेजस्वी स्वर्णिम वज्र को धारण कर अपने दो अश्वों से जोते गये रथ पर आरूढ़ होते हैं, तब वे विशेष रूप से सुशोभित होते हैं। इन्द्रदेव सभी के द्वारा जाने गये उत्तम अन्नों और ऐश्वर्य-सम्पदा के अधीश्वर हैं॥३॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद्धूनोति वातो यथा वनम् ॥४॥

जिस प्रकार वर्षा के जल से पशुसमूह भीगता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव हरितवर्ण सोमरस से अपनी दाढ़ी-मूंछ को भिगोते हैं। तत्पश्चात् वे उत्तम यज्ञस्थल में जाकर प्रस्तुत मधुर सोमरस का पान करते हैं, तत्पश्चात् जैसे वायु वन-वृक्षों को कम्पायमान करती हैं, वैसे ही वे रिपुओं को संत्रस्त करते हैं॥४॥

यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥५॥

अनेक प्रकार की उत्तेजक वाणी का प्रयोग करने वाले शत्रुओं को इन्द्रदेव ने अपनी ललकार से शान्त किया और क्रोध से हजारों शत्रुओं का समूल नाश किया। पिता जिस प्रकार अन्नादि से पुत्रों का पोषण करता है, उसी प्रकार इन्द्रदेव मनुष्यों का पोषण करते हैं। हम उन इन्द्रदेव की महिमा का गुणगान करते हैं॥५॥

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! आपको श्रेष्ठ दानी जानकर ही विमद वंशियों ने अति अनुपम स्तोत्रों को विनिर्मित किया है। हम ऐश्वर्य के अधिपति इन्द्रदेव से भली प्रकार परिचित हैं। जिस प्रकार गोपाल गौ आदि पशुओं को अपनी ओर बुलाते हैं, वैसे ही हम ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए आपको आवाहित करते हैं॥६॥

माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप और विमद ऋषि के बीच जो मैत्री सम्बन्ध है, उसे कोई विच्छिन्न न करे तथा यह सदैव स्थिर रहे। हे देव ! जैसे भाई-बहिन समान मन वाले होते हैं, उसी प्रकार आपका मैत्रीभाव युक्त मन हमारी ओर प्रेरित हो तथा हमारी मित्रता सदैव सुदृढ़ बनी रहे॥७॥

सूक्त २४

ऋषि: ऐन्द्रो विमद:,प्राजापत्यो, वासुको, वसुकृद्धा
देवता – इन्द्र । छंद – आस्तारपंक्ति, ४-६ अनुष्टुप

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम् ।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! पत्थरों से कूट-पीसकर तैयार किया गया मधुर सोमरस प्रस्तुत है, आप इसका पान करें । प्रचुर धन-सम्पन्न हे इन्द्रदेव ! आप असंख्यों प्रकार के विपुल धन हमें प्रदान करें। आप सदैव महिमामय हों॥१॥

त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥२॥

हे शचीपते इन्द्रदेव ! यज्ञीय मन्त्रों, यज्ञकर्मी तथा हवन सामग्रियों द्वारा हम आपकी अर्चना करते हैं। आप सभी श्रेष्ठ कर्मों के अभीष्ट फल हमें प्रदान करें, ऐसे इन्द्रदेव वास्तव में महिमामय हैं॥२॥

यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता ।
इन्द्र स्तोतृणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभीष्ट ऐश्वर्यों के अधिपति, साधकों को साधना मार्ग में प्रोत्साहन देने वाले तथा स्तोताओं के पालनकर्ता हैं । आप शत्रु रूपी विकारों एवं दुष्कर्म रूपी पापों से हमारी रक्षा करें । ऐसे इन्द्रदेव की महिमा प्रख्यात है॥३॥

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥४॥

कर्मों के प्रति निष्ठावान्, समर्थ हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों विद्वानों ने परस्पर सहयोग से अरणियों का मंथन करके अग्निदेव को प्रकट किया । जब ऋषि विमद ने आपकी प्रार्थना की, तो सत्यरूप आप दोनों ने अग्नि को प्रज्वलित किया॥४॥

विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।
नासत्यावब्रुवन्देवाः पुनरा वहतादिति ॥५॥

हे अश्विनीकुमारो ! जब दोनों अरणि काष्ठों के परस्पर घर्षण से अग्नि की चिनगारियाँ बाहर निकलने लगीं, तब समस्त देवताओं ने आपकी स्तुति की । सभी देवशक्तियों ने अश्विनीकुमारों से प्रार्थना करते हुए कहा कि आप बार-बार मन्थन करें॥५॥

मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥६॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमारा बहिर्गमन स्नेह भावना से युक्त हो तथा आगमन भी वैसा ही मधुर प्रीति भावना से युक्त हो । हे देव ! आप दोनों अपनी दिव्यशक्तियों से हमें माधुर्ययुक्त प्रीति से सम्पन्न बनायें॥६॥

सूक्त २५

ऋषिः ऐन्द्रो विमदः,प्राजापत्यो, वासुको, वसुकृद्धा
देवता – सोम । छंद – आस्तारपंक्ति

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे ॥१॥

हे सोम ! आप हर्षित होते हुए हमारे मन को बल, कार्य कुशलता, कल्याणकारी शक्ति, श्रेष्ठता तथा मित्रता प्राप्त करने के लिए प्रेरित करें । जैसे गौओं की मित्रता हरी घास से है, उसी प्रकार हमें आपकी मित्रता प्राप्त हो॥१॥

हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।
अधा कामा इमे मम वि वो मदे वि तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे ॥२॥

है सौम ! हृदय को हर्षित करने वाली आपकी प्रार्थना करके स्तोता लोग चारों ओर विराजमान होते हैं। इस धन की प्राप्ति के लिए हमारे

मन विभिन्न कामनाओं से सम्पन्न होते हैं । वास्तव में आपकी महिमा अपार हैं॥२॥

उत वृतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।
अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ॥३॥

हे सोमदेव ! हम अपनी श्रेष्ठ(परिपक्व) बुद्धि से आपके कर्मों की गति को जानते हैं । आप प्रसन्नचित्त होकर हमारे शत्रुओं का संहार करके हमें संरक्षित करें । जैसे पिता, पुत्र का संरक्षण करता है, वैसे ही हमारा पोषण करके आप हमें सुख-सौभाग्य प्रदान करें । वास्तव में आपकी कीर्ति महान् है॥३॥

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥४॥

हे सोम ! जैसे जल को निकालने के लिए कलश कुएँ में जाते हैं, वैसे हमारी सभी प्रार्थनाएँ आपको प्राप्त होती हैं। हमारी जीवन रक्षा के निमित्त या दीर्घ जीवन की प्राप्ति के लिए) इस यज्ञ कर्म को आप सफल बनाएँ। आपकी प्रसन्नता के निमित्त हम सोमरस के पेयपात्रों को समर्पित करते हैं । यथार्थतः आप महिमायुक्त ही हैं॥४॥

तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे ।

गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥५॥

हे सोमदेव ! वे नानाविध फलों की अभिलाषाओं से युक्त, निग्रही, विद्वान् , सामर्थ्यवान्, अनेक प्रकार के कर्मों के निर्वाहक ऋत्विग्गण आपकी प्रार्थना करते हैं। आप प्रशंसित होकर गौ और अश्व से सम्पन्न पशुशाला हमें प्रदान करें । वास्तव में आप महान् और ज्ञा–सम्पन्न हैं॥५॥

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा सम्पश्यन्भुवना विवक्षसे ॥६॥

हे सोमदेव ! आप हमारे पशुओं से युक्त घरों का संरक्षण करते हैं और विविध रूपों में स्थित आप इस संसार का भी संरक्षण करते हैं। आप ही सम्पूर्ण लोकों का अनुसन्धान करके हमारी प्राण-रक्षा (जीवन-रक्षा) के लिए जीवनोपयोगी सभी पदार्थों का पोषण करते हैं । सभी के आनन्द के लिए आप महानतायुक्त हैं॥६॥

त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥७॥

हे सोमदेव ! आप अविनाशी, अमृतस्वरूप हैं, अतएव आप सब प्रकार से हमारे संरक्षक बने । हे राजास्वरूप (देदीप्यमान) सामदेव

! हमारे शत्रुओं का आप निवारण करें तथा हमारे निन्दक अपने दुष्कृत्यों में सफल न हों, आप महिमायुक्त हैं॥७॥

त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥८॥

हे सोम ! आप श्रेष्ठकर्मा हैं, अन्न प्रदान करने के लिए सदा हमें जागरूक रखें, आश्रय प्रदान करने के लिए आप सुप्रसिद्ध हैं। आप विद्रोही मनुष्यों और पापकर्मो से हमारी रक्षा करें। वास्तव में आपको कीर्ति महान् हैं॥८॥

त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ॥९॥

हे वृत्रहन्ता सोमदेव ! जिस समय अपने प्रजाजनों को युद्धभूमि में प्रेरित करने वाले रिपु योद्धा विकराल युद्ध के लिए ललकारते हैं, उस समय इन्द्रदेव के कल्याणकारी सहयोगी आप हमारे लिए भी सहायक बनते हैं। वास्तव में आपकी कीर्ति महान् है॥९॥

अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे ॥१०॥

वह सोमरस निश्चित ही शीघ्र क्रियाशील, आनन्दवर्द्धक, बलप्रदायक और इन्द्रदेव के लिए प्रीतियुक्त होकर संवर्द्धित होता है । इसने ही महाज्ञानी ऋषि कक्षीवान् की बुद्धि को प्रखर बनाया था । वास्तव में ही सोमदेव महिमायुक्त हैं॥१०॥

अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः ।
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे ॥११॥

ये सोमदेव दानी और ज्ञानसम्पन्न यजमान (साधक) को पशुओं से युक्त अन्न तथा उपभोग्य सामग्री प्रदान करते हैं। यही सात होताओं को जीवनोपयोगी धन-सम्पदा प्रदान करते हैं। इन्होंने नेत्रहीन दीर्घतमा ऋषि को नेत्र और पंगु परावृज ऋषि को पैर प्रदान करके अनुकम्पा की थी । वास्तव में सोमदेव की महिमा अनन्त है॥११॥

सूक्त २६

ऋषिः ऐन्द्रो विमदः,प्राजापत्यो, वासुको, वसुकृद्धा
देवता – पूषा । छंद – अनुष्टुप, १, ४ उष्णिक्

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः ।
प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥१॥

इन अति प्रशंसनीय, सेहभाव से प्रेरित स्तोत्रों को पूषादेव के लिए समर्पित करते हैं। वे सदैव रथ में अश्वों को संयुक्त करके पधारते हैं। वे महान् पूषादेव यजमान दम्पती का संरक्षण करें॥१॥

यस्य त्यन्महित्वं वाताप्यमयं जनः ।
विप्र आ वंसद्धीतिभिश्चिकेत सुष्टुतीनाम् ॥२॥

यह ज्ञानी मनुष्य, जिन पूषादेव की जीवनी शक्ति प्रदायक जल राशि की महिमायुक्त शक्ति को अपनी प्रार्थना से जलवृष्टि के रूप में

उपयोगी बनाता है, वहीं पूषा ध्यानमग्न होकर यजमान की प्रार्थनाओं का श्रवण करते हैं॥२॥

स वेद सुष्टुतीनामिन्दुर्न पूषा वृषा ।
अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति ॥३॥

सोमदेव के सदृश ही ये पूषादेव भी अभीष्ट कामनाओं के पूरक और श्रेष्ठ स्तोत्रों को जानते-सुनते हैं। वे सौन्दर्ययुक्त पूषादेव कृपापूर्वक जल वर्षा करते हैं तथा हमारे गोष्ठों को भी जल से अभिषिञ्चित करते हैं॥३॥

मंसीमहि त्वा वयमस्माकं देव पूषन् ।
मतीनां च साधनं विप्राणां चाधवम् ॥४॥

हे सबके पोषक पूषादेव ! हम आपको सविचारणाओं का प्रेरक और ज्ञानी मनुष्यों का आश्रय मानकर आपकी अर्चना करते हैं॥४॥

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम् ।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥५॥

यज्ञ का अर्द्धभाग पूषादेव ग्रहण करते हैं। वे घोड़ों को अपने रथ से नियोजित करके गमन करते हैं। वे सर्वद्रष्टा, मनुष्यों के हितैषी, मेधावीजनों के मित्र हैं तथा उनके शत्रुओं के निवारणकर्ता हैं॥५॥

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।
वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥६॥

पूषादेव सभी प्रकार की धारणा शक्ति से सम्पन्न, तेजस्वी, नर-मादा पशुओं के अधिपति हैं, वहीं भेड़ की ऊन से वस्त्रों का निर्माण करने वाले की भाँति (सृष्टि के तन्तुओं को) पवित्र बनाते हैं॥६॥

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा ।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः ॥७॥

पूषादेव (सूर्यदेव) सभी हविष्य पदार्थों एवं अन्नों के अधिपति, सबके पोषक तथा मित्ररूप हैं। वे उत्तम, तेजस्वी पूषादेव अपने कर्मों में अपने केशों (विकिरणों) को हिलाते हुए चलते हैं॥७॥

आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥८॥

हे पूषा ! आप सभी जिज्ञासुओं की कामनाओं की पूर्ति करने वाले मित्रस्वरूप हैं। आप ही अत्यन्त पुरातन काल में उत्पन्न हुए अविनाशी देव हैं। आपके रथ के धुरे को अज (जिनका जन्म नहीं हुआ वे) वहन करते हैं॥८॥

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥९॥

महिमामय पूषादेव अपनी सामर्थ्य से हमारे रथ को संरक्षित करें। वे अन्न को संवर्धित करें तथा हमारे । निवेदन के अभिप्राय को जानें॥९॥

सूक्त २७

ऋषि: ऐन्द्रो वसुक्र:
देवता – इन्द्र । छंद – त्रिष्टुप

असत्सु मे जरितः साभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥१॥

(इन्द्र का कथन) हे स्तोता ! मेरा यह सत्प्रयास सदैव रहता है कि मेरे द्वारा सोमयाग के अनुष्ठानकर्ता साधक को अभीष्ट फलों की प्राप्ति हो । जो यज्ञीय कर्मों से रहित, सत्य जीवन से विहीन होकर चारों ओर दुष्ट-दुष्कर्मियों सा आचरण करते हुए घूमते हैं, उनका समूल नाश कर देता हूँ॥१॥

यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥२॥

(ऋषि वसुक्र) हे इन्द्र ! जब मैं देवोपासना से रहित और शारीरिक सामर्थ्य से अभिमानी मनुष्यों के साथ संघर्ष के लिए जाता हूँ, तब आपको हव्य द्वारा संतुष्ट करता हूँ। मैं पन्द्रहों तिथियों में सोम समर्पित करता हूँ॥२॥

नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥३॥

(इन्द्र का कथन) ऐसे व्यक्ति को मैं नहीं जानता, जिसने मुझे देव-विद्वेषियों का हत्यारा कहा हो । जब हिंसक शत्रुओं के संग्राम में जाकर मैं संहार करता हूँ, उस समय सभी हमारे वीरतापूर्ण कर्मों का गुणगान करते हैं॥३॥

यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥४॥

जब मैं युद्धक्षेत्र में पहुँचता हूँ, तो सभी महान् सन्त, ऋष मुझे चारों ओर से घेर लेते हैं । समस्त संसार के मंगल तथा संरक्षण के लिए सभी ओर विस्तृत रूप में फैले हुए शत्रुओं का मैं संहार करता हूँ। उन्हें पैरों से पकड़कर शिला पर पछाड़ता हूँ॥४॥

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।

मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥५॥

मुझे युद्ध क्षेत्र में पराजित करने की सामर्थ्य किसी में नहीं। यदि मैं चाहूँ, तो विशाल पर्वत भी मेरे कार्य में बाधक नहीं हो सकते । मेरे शब्द की ललकार से बहरे व्यक्ति भी भयभीत हो जाते हैं, किरणों के स्वामी सूर्य भी प्रतिदिन काँपते हैं॥५॥

दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥६॥

जो मेरा अनुशासन नहीं मानते, देवों के पेय सोम को स्वेच्छा से, बलपूर्वक पीने वाले, हविष्य पदार्थों के स्वयं उपभोगकर्ता तथा हिंसा के लिए भुजाओं को चलाने वाले, ऐसे सभी लोग मेरी दृष्टि से बाहर नहीं, उनसे भलीप्रकार परिचित हैं, जो अपने मित्र की भी निन्दा करने में नहीं चूकते, उन पर निश्चित ही मेरे वज्र का प्रहार होता है॥६॥

अभूर्वौक्षीर्व्यु आयुरानड्दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥७॥

(ऋषि वसुक्र का कथन) हे इन्द्रदेव ! आप दीर्घजीवी (चिरंजीवी) हों । आपने प्रकट होकर दर्शन लाभ दिया तथा जलवृष्टि से अभिषिंचित किया । पुरातन काल से लेकर आज तक आप शत्रुओं के हननकर्ता

रहे हैं । जो इस संसार के अतिरिक्त दूसरे लोक में भी संव्याप्त होते हैं, ऐसे द्युलोकादि भी आपको मापने में सक्षम नहीं हैं॥७॥

गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥८॥

(इन्द्र का कथन) अनेक गौएँ एकत्रित होकर जौ आदि का भक्षण कर रही हैं , स्वामी के समान मैं गौओं की देखभाल करता हूँ। देखता हूँ कि वे गौएँ चरवाहों के साथ घास चर रही हैं । बुलाये जाने पर वे गौएँ अपने पालनकर्ता के चारों ओर इकट्ठी हो जाती हैं। स्वामी ने उनसे प्रचुर दूध का दोहन कर लिया है॥८॥

सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥९॥

(ऋषि का कथन) इस विस्तृत संसार में अन्न, जौ और कन्दमूल पर जीवन निर्वाह करने वाले हम अंष ही हैं। इस संसार में एकाग्रचित्त होकर (ध्यानस्थ-योगस्थ) मनुष्य ईश्वर की उपासना करते हुए उससे शक्तियों की कामना करे । जो योगरहित और भौतिकवादी हैं, ऐसे मनुष्यों को भी वे इन्द्र सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हैं॥९॥

अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि ।

स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः ॥१०॥

(इन्द्र का कथन) जो भी यहाँ मेरे विषय में कथन किया जा रहा है, वह यथार्थ है, हरेक मनुष्य को इस पर विश्वास करना चाहिए। जो भी द्विपाद मनुष्य-पक्षी और चतुष्पाद पशु हैं, उनका मैं जन्मदाता हैं । इस संसार में जो पुरुष अपने शूरों को स्त्रियों से संघर्ष के लिए प्रेरित करते हैं, बिना युद्ध किये ही ऐसे दुष्कर्मी के धन को छीनकर मैं सज्जनों को प्रदान कर देता हूँ॥१०॥

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम् ।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात् ॥११॥

जो कन्या अक्ष (आँख या इन्द्रिय) हीन हैं, उसे कौन विद्वान् (सूक्ष्मदर्शी) आश्रय प्रदान करता है? जो इस (कन्या) का वरण करता है, उसे धारण करता है, उसके वज्र तुल्य बल को कौन रोक सकता है?॥११॥

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥१२॥

कितनी स्त्रियाँ इस प्रकार की है, जो वधू की कामना करने वाले पुरुष के प्रशंसक वचनों और उसकी धन-सम्पदा को ही पतिवरण का

माध्यम मान लेती हैं, परन्तु जो स्त्रियाँ सुशील, स्वस्थ और श्रेष्ठ मानसिक भावनाओं से युक्त हैं, वे अपनी इच्छानुकूल मित्र पुरुष को पतिरूप में वरण करती हैं॥१२॥

पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम् ।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् ॥१३॥

आदित्यदेव (सूर्यदेव) अपनी किरणों द्वारा प्रकाश फैलाते हैं और अपने मण्डल में विद्यमान प्रकाश को स्वयं में समाहित करते हैं । वे अपनी आवृत करने वाली किरणों को सांसारिक मनुष्य के मस्तक पर डालते हैं। ऊपर विद्यमान रहते हुए भी वे नीचे से विस्तृत पृथ्वी पर अपनी किरणों से संव्याप्त होते हैं॥१३॥

बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ॥१४॥

वे महान् (सूर्य) मृत्यु या अंधकाररहित, भोगरहित, गतिशील होकर रहते हैं। माता (अदिति) से पृथक् होकर गर्भ पोषक यज्ञ या परमव्योम से नि:सृत प्रवाह का सेवन करता है । धेनु (धारण करने वाली प्रकृति) अपने से भिन्न (अव्यक्त प्रकृति) के वत्स (सूर्य) को स्नेह प्रदान करती है । इस गाय के स्तन ऊपर कहाँ स्थित हैं?॥१४॥

सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरन्ते ।
नव पश्चातात्स्थिविमन्त आयन्दश प्राक्सानु वि तिरन्त्यश्नः ॥१५॥

उस प्रजापति की नाभि से सात वीर (सप्त ऋषि अथवा सप्त धातु उत्पन्न हुए। उसके उत्तर भाग से आठ (अष्टवसु अथवा बालखिल्यादि) प्रकट होकर एक साथ संगत हुए। पीछे के भाग से नौ (भृगु आदि) उत्पन्न हुए। पूर्व (भाग) से दस (अंगिराओं अथवा दिशाओं) की उत्पत्ति हुई । ये सभी भोजन (दिव्य प्रवाहों या यज्ञांश का सेवन) करते हुए द्युलोक से उत्पन्न क्षेत्रों का संवर्द्धन करने लगे॥१५॥

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥१६॥

दस अंगिराओं में एक सबके प्रति समभाव रखने वाले कपिल ऋषि हैं। उन्हें उच्च पद पर प्रतिष्ठित करने वाले उत्कृष्ट यज्ञादि सत्कर्मों की साधना के लिए प्रेरित करते हैं। विश्व निर्माण की प्रकृति रूपी माता इच्छा शक्ति से अनुप्रेरित उस गर्भ को मानो सुखपूर्वक जल में स्थापित करती है॥१६॥

पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्वन्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ॥१७॥

वीरों (अंगिराओं) ने बलशाली मेष (स्पर्धा करने वालों) को परिपक्व किया। क्षेत्र में क्रीड़ा के लिए पाँसे फेंके गये। (उनमें से) दो बलशाली धनुष सहित बृहत् आपः (मूल तत्त्व अथवा जल) में विचरण करने लगे – पवित्रता का संचार करने लगे॥१७॥

वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः ।
अयं मे देवः सविता तदाह द्र्वन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः ॥१८॥

शब्द (स्तुति) करने वाले विविध मार्गगामी (अंगिरादि अथवा प्राणी) इस लोक में आते हैं। उनमें से एक वर्ग (देवताओं के निमित्त हव्यादि) पकाते हैं। आधे नहीं पकाते; यह तथ्य सवितादेव ने हमसे कहा । काष्ठ एवं घृत का सेवन करने वाले (अग्नि) भीं (देवों के लिए हव्य) पकाते हैं॥१८॥

अपश्यं ग्रामं वहमानमारादचक्रया स्वधया वर्तमानम् ।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥१९॥

भगवान् की स्वचालित जगत् की प्रकृति जो अनादि काल से प्रवमान रूप में इस प्राणि-समुदाय को वहन कर रही है, उसे हम देख रहे हैं । वे (प्रशंसनीय) नवीन उत्साह से युक्त स्वामी सदैव दुःखों का नाश करते हुए जीवों के जोड़ों को उत्पन्न करते और आपस में मिलाते हैं॥१९॥

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०॥

हे परमेश्वर ! प्राण-रक्षक जो हमारे ये दोनों प्राण और अपने शरीर रूपी रथ में लगे दो बैलों के समान हैं, उन्हें आप कभी इस देह से पृथक् न करें, अपितु इन्हें बार-बार जोड़े । इस जीव के सूक्ष्म प्राण ही इनको प्राप्य लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। वे परमेश्वर सूर्य के समान विश्व के शोधनकर्ता तथा मेघ के समान पदार्थों के दाता हैं॥२०॥

अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥२१॥

ये जो दुःखों के निवारणकर्ता, जीवों को धारण करने में सक्षम, विविध प्रकार से संव्याप्त हैं, वे सूर्य के सदृश ही सर्व संचालकं महिमामय स्वामी के ऐश्वर्य से हमें प्राप्त होते हैं । इस लोक में प्रत्यक्ष ऐश्वर्य से उत्कृष्ट दुसरा भी श्रवणीय परमैश्वर्य हैं, उसे बिना बाधा के बन्धनों का उच्छेदन करने वाले ईश्वर के उपासक प्राप्त करते हैं॥२१॥

वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान्पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२॥

वृक्ष के (विकासमान प्रकृति तक) साथ सम्बद्ध गौ (पोषक शक्ति) शब्द करती है, तब असुरों को नष्ट करने वाले वय (बाण या प्रवाह)

छूटते हैं। इससे विश्व भयभीत होकर (रक्षा के लिएइन्द्रदेव की स्तुति करता है । (इस प्रक्रिया के संदर्भ में) अधिगण शिक्षण प्रदान करते हैं॥२२॥

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥२३॥

देवों के सृजन-समय में सर्वप्रथम मेघों का उत्पादन हुआ, मेघों के छिन्न-भिन्न होने से जल की उत्पत्ति हुई। तीन गुणों के उत्पादनकर्ता पर्जन्य, वायु और सूर्य – ये तीनों ही अनुकूल स्थिति में पृथ्वी को तप्त करते हैं तथा इनमें से वायु और सूर्य ये दोनों ही जल को धारण करते हैं॥२३॥

सा ते जीवातुरुत तस्य विद्धि मा स्मैतादृगप गूहः समर्ये ।
आविः स्वः कृणुते गूहते बुसं स पादुरस्य निर्णिजो न मुच्यते ॥२४॥

हे ऋषे ! सूर्यदेव ही आपकी प्राणाधार शक्ति हैं और आप भली प्रकार इनके स्वरूप के ज्ञाता हैं। यज्ञ काल में ऐसे प्राणदायक स्वरूप को गोपनीय न करके आप उनके प्रभाव का वर्णन करें । वे सूर्यदेव तीनों लोकों (द्यु, अन्तरिक्ष और पृथ्वी) को प्रकाशित करते हैं। वे जल-शोषण तथा गतिशीलता की प्रक्रिया को कभी त्यागते नहीं॥२४॥

सूक्त २८

ऋषि: इन्द्रस्नुषा वसुक्रपत्नी ऋषिका, २.६.८.१०. १२ इन्द्र ऋषि,
३,४,५,७,९,११ ऐन्द्रो वसुक्र ऋषि
देवता – २, ६, ८, १०, १२ ऐन्द्रओ वसुक्रो, १,३,४,५,७,९,११ इन्द्र।
छंद – त्रिष्टुप

विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो ना जगाम ।
जक्षीयाद्धाना उत सोमं पपीयात्स्वाशितः पुनरस्तं जगायात् ॥१॥

(इन्द्र के पुत्र वसुक्र की पत्नी कहती हैं) इन्द्रदेव को छोड़कर समस्त देवता हमारे यज्ञ में आए हैं, मेरे श्वसुर इन्द्रदेव केवल नहीं पधारे हैं। यदि वे आए होते, तो भुने हुए जौ के साथ सोमपान करते तथा आहारादि से सन्तुष्ट (प्रशंसित) होकर दुबारा अपने घर लौट जाते॥१॥

स रोरुवद्वृषभस्तिग्मशृङ्गो वर्ष्मन्तस्थौ वरिमन्ना पृथिव्याः ।
विश्वेष्वेनं वृजनेषु पामि यो मे कुक्षी सुतसोमः पृणाति ॥२॥

(इन्द्र) हे पुत्र वधू ! अभीष्ट फलों को प्रदान करने वाला तेजस्वीं मैं पृथ्वी के व्यापक और ऊँचे स्थान में वास करता हूँ । जो सोम अभिषवण कर्ता मुझे सोमपान से सन्तुष्ट करते हैं, मैं उनकी सभी प्रकार से सुरक्षा करता हूँ॥२॥

अद्रिणा ते मन्दिन इन्द्र तूयान्त्सुन्वन्ति सोमान्पिबसि त्वमेषाम् ।
पचन्ति ते वृषभाँ अत्सि तेषां पृक्षेण यन्मघवन्हूयमानः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपके लिए पाषाण खण्डों पर शीघ्रतापूर्वक अभिषवित आनन्दप्रद सोम को जब यजमान लोग तैयार करते हैं, ऐसे में आप उनके द्वारा प्रदत्त सोमरस का पान करते हैं । हे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव ! जिस समय सत्कार- पूर्वक हविष्यान्नों से यज्ञ किया जाता है, उस समय साधकगण वृषभ (शक्तिसम्पन्न हव्य) को पकाते (परिपक्व करते हैं और आप उनका सेवन करते हैं॥३॥

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥४॥

हे शत्रु संहारक, शूरवीर, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! आपके अनुग्रह से हमारे अन्दर यह सामर्थ्य है कि इच्छा मात्र से नदियाँ उल्टी दिशा की ओर जल प्रवाहित करने लगती हैं, तृण खाने वाला हिरण आगे आते हुए

सिंह को पीछे खदेड़कर उसके पीछे दौड़ता है तथा श्रृगाल (सियार) शूकर को घने जंगल से भागने के लिए मजबूर कर देता है॥४॥

कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप ज्ञानवान् , सामर्थ्यवान् और प्राचीन हैं । हम अल्पज्ञ मनुष्य आपकी भक्ति करने में सामर्थ्यहीन हैं। आप सर्वज्ञाता हैं, अतएव यथासमय हमारा विशेष मार्गदर्शन करते रहें । हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! जिस आपके अंश को हम स्तोत्र करने में समर्थ हैं, उसे आप स्वीकार करें॥५॥

एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान ॥६॥

(इन्द्र कहते हैं-) स्तोतागण मेरी प्राचीन महिमा की प्रशंसा इस प्रकार करते हैं कि मेरी स्वर्ग से भी अतिश्रेष्ठ कार्यों के निर्वाह की धारण सामर्थ्य है । मेरे द्वारा असंख्य शत्रुओं का एक साथ ही संहार किया जाता है । सृष्टि सृजेता प्रजापति ने मुझे अजातशत्रु के रूप में उत्पन्न किया है॥६॥

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिन्द्र देवाः ।

वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! मैंने आनन्दित होकर वज्रास्त्र से वृत्रासुर का संहार किया और अपनी सामर्थ्य से दानियों को वैभव प्रदान किया। अतएव देवशक्तियाँ मुझे भी आपके समान ही प्राचीन महिमायुक्त, प्रत्येक कर्म में कुशल, शक्तिशाली और अभीष्ट फलों का दाता मानती हैं॥७॥

देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्र्वं दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥८॥

हाथ में परशु अस्त्र धारण कर्ता, विजय के इच्छुक देवता आते हैं तथा वे लोगों के सहयोग से बादलों को विदीर्ण करके जल वृष्टि करते हैं, वह जल उत्तम नदियों में प्रवाहित होता है । देवता जिस मेघ में जल की सम्भावना देखते हैं, उसी को विद्युत् से विदीर्ण कर जल वृष्टि करते हैं॥८॥

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहन्तं चिद्दहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥९॥

इन्द्रदेव की इच्छा मात्र से हिरण भी समक्ष आते हुए सिंह का मुकाबला करता है, हम भी उसी की सामर्थ्य से पत्थर फेंककर पर्वत

को भी दूर से तोड़ डालते हैं । इन्द्रदेव की इच्छा से बछड़ा भी साँड़ से मुकाबला करता है तथा बड़े भी छोटे के नियंत्रण में आ जाते हैं॥९॥

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०॥

पिंजड़े में बन्द शेर जिस प्रकार अपने स्थान का परित्याग किये बिना प्रहार के लिए हमेशा अपने पंजों को तैयार रखते हैं, उसी प्रकार बाज़ पक्षी भी नाखूनों को रगड़ते हैं। जैसे बँधा हुआ भैसा प्यास से बेचैन होता हैं, वैसे ही गोधा (वैदिक छन्द गायत्री आदि) तृषार्त इन्द्रदेव को तृप्त करते हैं ॥१०॥

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः ।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः श्रृणानाः ॥११॥

जो ब्रह्मनिष्ठ लोग अन्न से सन्तुष्ट होकर रिपुओं (मनोविकारों) को दूर करते हैं, ऐसे ब्रह्मवादियों के लिए गायत्री सहज ही अमृतरूपी सोम उपलब्ध कराती है। वे सभी प्रकार के रसों से युक्त अमृतस्वरूप सोम का पान करते हैं तथा स्वयमेव विकाररूपी रिपुओं के शरीरों तथा सामर्थ्य को विनष्ट करते हैं॥११॥

एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः ।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२॥

जो सोमयाग करके स्तोत्र वाणियों से अपना शारीरिक परिपोषण करते हैं, वे श्रेष्ठ कर्मों के निर्वाहक कहे जाकर सत्कर्मों से स्वयं को कृतार्थ करते हैं। श्रेष्ठ मनुष्यों के समान ही स्पष्टवादी आप हमारे लिए अन्न उपलब्ध कराते हैं तथा देवलोक में दानवीर के नाम से प्रख्यात, आप यहाँ दानपति (धनपति) नाम को अलंकृत करते हैं॥१२॥

सूक्त २९

ऋषिः ऐन्द्रो वसुक्रः
देवता – इन्द्र । छंद – त्रिष्टुप

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१॥

हे शीघ्र गमनशील अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार पक्षी फलाहार की इच्छा से अपने शिशु को वृक्ष के नीड में सावधानी- पूर्वक रखते हैं, उसी प्रकार ये अति पवित्र स्तोत्र आपके निमित्त ही समर्पित हैं। अनेक दिनों तक हम इन्हीं स्तोत्रों से इन्द्रदेव का आवाहन करते रहें, वे इन्द्रदेव नेतृत्व प्रदान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ, पराक्रमशाली, नायक तथा रात्रिकाल में भी सोमपान करने वाले हैं॥१॥

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नृन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥२॥

हे मनुष्यों को नेतृत्व प्रदान करने वाले ! इन उषाओं और अन्य उषाकालों में आपकी अर्चना से हमारी भी श्रेष्ठता जाग्रत् हो । हे इन्द्रदेव ! त्रिशोक नामक ऋषि ने आपकी स्तुति-प्रार्थना से आपसे सौ मनुष्यों का सहयोग प्राप्त किया तथा कुत्स ऋषि जिस रथ पर आरूढ़ होते हैं, वह भी आपकी सहायता का परिणाम है॥२॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव ।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! हमारी स्तोत्र वाणियों को सुनकर यज्ञस्थल के द्वार की ओर आप शीघ्रता से आएँ । किस प्रकार का हर्षदायक सोम आपको अति प्रसन्नताप्रद तथा रुचिकर है ? हमें कब श्रेष्ठ वाहुन मिलेंगे ? हमारे मनोरथ कब पूर्ण होंगे? हम आपके स्तोता अन्न-धन की प्राप्ति के लिए कौन सी साधना से आपको प्रशंसित कर सकेंगे ?॥३॥

कदु दयुम्नमिन्द्र त्वावतो नृन्कया धिया करसे कन्न आगन् ।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप किस समय हमारे ध्यान में प्रकट होंगे और किस समय हमें साधना की सिद्धि मिलेगी ? किस प्रकार के स्तोत्रों और सत्कर्मों से आप हम मनुष्यों को अपने समान ही सामर्थ्यवान् बनायेंगे? हे यशस्वी इन्द्रदेव ! आप तो सभी के सच्चे सखारूप हितैषी

हैं, यह बात इससे सिद्ध होती है कि सभी साधकों का अन्न से पालन-पोषण करने की आपकी अभिलाषा रहती है ॥४॥

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥

तेजस्वी आप: देवताओं के लिए भली प्रकार प्रवाहित हों । हे ऋत्विजों ! मित्र और वरुण के लिए श्रेष्ठ अन्नरूप सोम संस्कारित करो तथा महावेगशाली इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ रीति से स्तुतियों का उच्चारण करो॥५॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी विशेष कृपा से प्राचीन समय में विनिर्मित ये जो द्युलोक और पृथ्वी लोक हैं, वहीं विविध लोकों के निर्माता हैं। आपके लिए घृतयुक्त सोमरस प्रस्तुत किया जा रहा है, इसे पीकर आप हर्षित हों तथा मधुररसों से युक्त अन्न आपके लिए प्रसन्नतादायक हो॥६॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७॥

वे इन्द्र निश्चित ही ऐश्वर्यदाता हैं, अतएव ऐसे देव के निमित्त मधुपर्क से परिपूर्ण सोम-पात्र को सादर समर्पित करें। वे मनुष्यों के हितकारी हैं तथा पृथ्वी के व्यापक क्षेत्र में अपने पराक्रम से सभी प्रकार से उन्नतशील हैं॥७॥

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८॥

अतिशक्तिशाली इन्द्रदेव ने शत्रुसेना को घेर लिया, श्रेष्ठ शत्रु-सेनाएँ भी इन्द्रदेव से मैत्री रूप संधि करने को सदैव प्रयशील रहती हैं। हें इन्द्रदेव! जिस प्रकार संसार के हित के लिए सत्प्रेरणा से आप समर-क्षेत्र में रथारूढ़ होकर जाते हैं, उसी प्रकार इस समय भी रथ पर आरूढ़ होकर प्रस्थान करें॥८॥

सूक्त ३०

ऋषि: कवष ऐलूष:
देवता – आप । छंद – त्रिष्टुप

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति ।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥१॥

(यज्ञकाल में) स्तुतियों से प्रशंसित मन की गति के समान शीघ्रता से तेजस्वी आप: देवताओं के लिए भली प्रकार प्रवाहित हों । हे ऋत्विजो ! मित्र और वरुणदेव के लिए श्रेष्ठ अन्नरूप सोम संस्कारित करो तथा महावेगशाली इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ रीति से स्तुतियों का उच्चारण करो॥१॥

अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूताच्छाप इतोशतीरुशन्तः ।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः ॥२॥

हे पुरोहितगण ! आप हव्यपदार्थों से सम्पन्न रहें । प्रीतियुक्त सुख की कामना करते हुए आप सोम की इच्छा से आपः (जल) की ओर शीघ्रतापूर्वक गमन करें । लालरंग के पक्षी के समान यह श्रेष्ठ आपः

जो नीचे क्षरित होता है, आप उसे सत्कर्म-शील हाथों से, तरङ्गरूप में यज्ञ में समर्पित करें॥२॥

अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो दददूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥३॥

हे वग्गण ! आप 'अप्' के सागर को प्राप्त करें और अपांनपात्देव का हविष्यान्न से अर्चन करें । वे आपको अति पवित्र और स्वच्छ तरंगें प्रदान करें । अतएव आप उनके लिए मधुर सेमरस समर्पित करें॥३॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्वन्तर्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥४॥

स्तोतागण जिसकी यज्ञकाल में प्रार्थना करते हैं तथा जो बिना काष्ठ के अन्तरिक्ष में विद्युत्रूप में प्रदीप्त होते हैं, वे हमें वृष्टिरूप जल प्रदान करें, जिससे इन्द्र तेजस्वी होकर अपनी पराक्रम शक्ति को उत्पन्न करें॥४॥

याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ॥५॥

जिस प्रकार युवापुरुष मात्र समवयस्क सुन्दर स्त्रियों से ही सुशोभित और हर्षित होते हैं, वैसे ही इस अप् (जल) से मिलकर सोम सुशोभित

होता है । हे ऋत्विग्गण ! आप ऐसे ही जल को सुदूर से प्राप्त करें, जिसके साथ मिलकर सोम स्वच्छ और पवित्र होता है ॥५॥

एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥६॥

जिस प्रकार युवतियाँ युवापुरुषों के प्रति सहजढंग से आकर्षित होती हैं तथा जिस प्रकार सहज स्नेहभावना से युवा पुरुष प्रेयसी युवतियों को उपलब्ध करते हैं, उसी प्रकार ऋत्विज् और उनकी स्तुतियाँ दिव्य अप्देवता को जानती हैं तथा दोनों विचारशीलतापूर्वक अपने कार्यों को सम्पन्न करते हैं॥६॥

यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥७॥

हे अपूदेव ! जो आपके अवरुद्ध मार्ग को आपके गमन के लिए खोलते हैं और जो आपको भंयकर मार्ग से विमुक्त करते हैं, आप देवताओं के साथ उन इन्द्रदेव को आनन्दप्रद और मधुर सोमरस प्रदान करें॥७॥

प्रास्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥८॥

हे प्रवाहशील अप्देव ! आपका बीजरूप जो मधुररस युक्त सोमप्रवाह है, उसकी मधुर गुणों से युक्त श्रेष्ठ तरंगों को इन्द्रदेव के लिए प्रेरित करें । हे अनेक ओषधियों से युक्त वैभवशाली अप्देव ! यज्ञ के निमित्त घृताहुति और स्तोत्रोच्चारण किया जा रहा है। आप हमारे इन श्रेष्ठ वचनों को सुनें॥८॥

तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥९॥

हे प्रवाहशील अपुदेव ! जो दोनों लोकों के लिए कल्याणप्रद है, उस आनन्दप्रद और इन्द्रदेव के पेय-योग्य सोम-प्रवाह को अति संवर्द्धत रूप में हमें प्रदान करें । वे आनन्ददायक समृद्धि की कामनाओं को पूर्ण करने वाले आकाश में उत्पादित, तीनों लोकों के आश्रय, सहजमार्ग पर गमनशील तथा निरन्तर प्रवाहित होते हैं॥९॥

आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥१०॥

जिस प्रकार इन्द्रदेव बादलों के बीच से अनेक धाराओं का सृजन करते हैं, उसी प्रकार जल की अनेक धाराओं में सोम समाहित होता है । जल संसार की संरक्षक माता सदृश है, वह सोम के साथ समान रूप से मिलता है, वह स्वयं तत्त्वरूप है, है ऋषियो ! ऐसे जल की आप प्रार्थना करें॥१०॥

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११॥

हे अप्देव ! आप देवों के प्रति यज्ञीय अर्चन करने के लिए यज्ञकार्य में सहयोग प्र । करें तथा धनार्जन के लिए स्तोत्रोच्चारण करें । सृष्टि के नियम-व्यवस्थानुसार अवरोधों को दूर करके जल की वर्षा करें तथा हम सभी के लिए कल्याणदायक सिद्ध हों॥११॥

आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् ॥१२॥

हे समृद्धिप्रदा पदार्थों से सम्पन्न अप्देव ! आप अनेक ऐश्वर्यों के अधिपति हैं, आप कल्याणकारी कर्मों और अन्नादि को धारण करें। आप सुसन्तति और ऐश्वर्य के संरक्षक हों । देवी सरस्वती हम स्तोताओं को श्रेष्ठ धन-सम्पदा प्रदान करें॥१२॥

प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि ।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥१३॥

हे अप्देव ! जब आप घृत, दूध और मधुरूप अन्न धारण करते हुए आगमन करते हैं, यज्ञीय ऋत्विजों के साथ हार्दिक भावनाओं से युक्त होकर वार्तालाप करते हैं तथा इन्द्रदेव के लिए विशेष रीति से

अभिषवित सोमरस प्रदान करते हैं, तब हम आपको भली प्रकार दर्शन करते और आपकी प्रार्थना करते हैं॥१३॥

एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः ।
नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥१४॥

हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्यों से सम्पन्न और प्राणियों के लिए कल्याणकारी अप् (जल) उपलब्ध हुआ है । हे याज्ञिको ! जल को भली प्रकार आप प्रतिष्ठित करें। आप वृष्टि के अधिष्ठाता रूप देव से श्रेष्ठ ढंग से परिचित हैं, सोमरस के लिए उपयुक्त इस जल को श्रेष्ठ कुशा के आसन पर प्रतिष्ठित करें॥१४॥

आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः ।
अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥१५॥

देवताओं की ओर उमड़ता हुआ'अप्' तत्परतापूर्वक (शीघ्रतापूर्वक) कुशाओं के बीच यज्ञस्थल में प्रतिष्ठित हुआ है । हे ऋत्विग्गण ! इन्द्रदेव के निमित्त आप सोमरस समर्पित करें । जल आने से देवों के प्रति पूजा-उपासना का कर्म सहज-सरलतापूर्वक पूर्ण हो गया है॥१५॥

सूक्त ३१

ऋषि: कवष ऐलूष:
देवता – विश्वेदेवा । छंद – त्रिष्टुप

आ नो देवानामुप वेतु शंसो विश्वेभिस्तुरैरवसे यजत्रः ।
तेभिर्वयं सुषखायो भवेम तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम ॥१॥

हमारी स्तुतियाँ देवताओं को उपलब्ध हों। स्तुत्य यज्ञदेव सभी शत्रुओं (विकारों) से हमारा संरक्षण करें। देवताओं के साथ हम स्नेहपूर्ण मैत्री स्थापित करेंगे.तथा सभी प्रकार की विपदाओं से मुक्त होंगे॥१॥

परि चिन्मर्तो द्रविणं ममन्यादृतस्य पथा नमसा विवासेत् ।
उत स्वेन क्रतुना सं वदेत श्रेयांसं दक्षं मनसा जगृभ्यात् ॥२॥

सभी प्रकार के ऐश्वर्यों के आकांक्षी मनुष्य अन्त:प्रेरणा से सत्यमार्ग द्वारा सत्कर्मों से संलग्न हों, वे श्रेष्ठज्ञान (सज्ञान) युक्त विवेक-बुद्धि से

देवताओं की उपासना करें तथा उनके कल्याणकारी (मंगलकारी विराट् स्वरूप को हृदयक्षेत्र (अन्तः करण) में धारण करें॥२॥

अधायि धीतिरससृग्रमंशास्तीर्थे न दस्ममुप यन्त्यूमाः ।
अभ्यानश्म सुवितस्य शूषं नवेदसो अमृतानामभूम ॥३॥

हमने यज्ञकर्म सम्पन्न किया है । यज्ञ में प्रयुक्त पदार्थ तीर्थ के अंशों की तरह देवताओं की ओर पहुँचते हैं। वे देव सबके संरक्षक और शत्रुओं के संहारक हैं । हम स्वाभाविक रूप से उपलब्ध होने योग्य सुखों को सभी ओर से प्राप्त करें तथा सभी देवों के स्वरूप से परिचित हों॥३॥

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥४॥

विश्व के सृजेता सवितादेव ने जिस यजमान को पैदा किया, ऐश्वर्यों के अधिपति और दानशील प्रजापति उसे श्रेष्ठ फल प्रदान करें । भग और अर्यमादेव स्तुतियों से प्रशंसित होकर इस (यजमान) के प्रति प्रीतियुक्त हों तथा सभी देवता यजमान पर सभी प्रकार से अनुग्रह करें॥४॥

इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन् ।

अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः ॥५॥

जब स्तोत्रों के इच्छुक देवगण सामर्थ्ययुक्त होकर द्रुतगति से आते हैं, तब प्रभातवेला के समान ही यह पृथ्वी हमारे लिए प्रकाशमयी होती है। हमारी प्रार्थनाओं के अभिलाष देवगण हमें स्नेह करते रहें और हम आनन्दप्रद अन्नादि उपभोग-सामग्री प्राप्त कर सकें॥५॥

अस्येदेषा सुमतिः पप्रथानाभवत्पूर्व्या भूमना गौः ।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ॥६॥

देवताओं की ओर जाने के लिए इस समय हमारी सनातन, विस्तृत (महिमायुक्त) स्तुतियाँ प्रोत्साहित होकर वृद्धि को प्राप्त हो रही हैं, अतएव हमारे इस देवत्व-संवर्द्धक यज्ञ में सम्पूर्ण देव अपने-अपने स्थान पर स्थित होकर सत्परिणाम देने हेतु आगमन करें॥६॥

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ॥७॥

वह कौन सा वन और कौन सा वृक्ष है, जिससे उपादान (कच्चा माल) प्राप्त करके दिव्यलोक और पृथिवी लोक को रचा गया है ? ये दोनों लोक परस्पर आश्रित, देवताओं से संरक्षित तथा जीर्णतारहित हैं, दिन और रात्रि दोनों इनसे परिचित हैं॥७॥

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥८॥

द्यावा-पृथिवी के परे भी इस (रचयिता) के समान और कोई नहीं है। जो ईश्वर सृष्टि का निर्माता और द्युलोक-पृथ्वी को धारण कर्ता है, वहीं अन्नादि पोषक पदार्थों का स्वामी हैं । सूर्य के अश्वों ने जिस समय सूर्य का वहन करना शुरू नहीं किया था, उसी बीच उसने अपने आवरण की रचना कर ली थीं॥८॥

स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम ।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥९॥

रश्मिधारी सूर्य पृथ्वी का उल्लंघन नहीं करते और वायुदेव पृथ्वी को अति वृष्टि से छिन्न-भिन्न नहीं करते । वन के बीच उत्पन्न अग्नि के समान प्रकट होकर मित्र और वरुण अपने प्रकाश को सभी ओर विस्तारित करते हैं॥९॥

स्तरीर्यत्सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् ॥१०॥

जैसे वृषभ द्वारा संयुक्त हुई गाय बछड़ा उत्पन्न करने में सक्षम होती है, उससे वह स्वयं कष्ट सहती हुई भी अपने संरक्षकों को सुख प्रदान करती है, वैसे ही प्राचीनकाल में पितरों द्वारा पुत्र, अरणियों द्वारा अथवा द्यावा-पृथिवी द्वारा अग्नि की उत्पत्ति हुई । जिस समय ऋत्विग्गण उसकी तलाश करते हैं, उस समय शमी वृक्ष से गौ (अग्नि उत्पादक अरणी) उत्पन्न होती है॥१०॥

उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुरुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोधर्ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत् ॥११॥

कण्व ऋषि नृषद के पुत्र के रूप में जाने जाते हैं। उन कृष्णवर्ण कण्व ने हविष्यान्न समर्पित करके अग्निदेव से ऐश्वर्य- सम्पदा उपलब्ध की । इस यज्ञ में तेजस्वी अग्निदेव ने कृष्णवर्ण कण्व के लिए अपने कान्तिमान् स्वरूप को प्रकट किया। ऋषि कण्व के यज्ञ के समान अग्निदेव के निमित्त किसी दूसरे ने ऐसा यज्ञ नहीं किया॥११॥

सूक्त ३२

ऋषि: कवष ऐलूष:
देवता – इन्द्र । छंद – जगती, ६-९ त्रिष्टुप

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः ।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति ॥१॥

इन्द्रदेव साधक की अर्चना को स्वीकार करने के लिए यज्ञस्थल की ओर अपने अश्वों को प्रेरित करते हैं। यजमान के सत्कर्मों से प्रशंसित होकर श्रेष्ठ हविष्य और प्रार्थना को ग्रहण करने के लिए यहाँ पधारें । यहाँ आकर वे हमारी प्रार्थनाओं और प्रदत्त आहुतियों को स्वीकार करें, तत्पश्चात् वे सोमरूपी अन्न (हव्य) ग्रहण करें॥१॥

वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप दिव्य और दीप्तिमान् धामों में घूमते रहते हैं। हे बहुसंख्यकों द्वारा पूजित इन्द्रदेव ! आप पृथ्वी के श्रेष्ठ स्थानों में वास

करते हैं । आपके जो अश्व बार-बार हमारे यज्ञीय कार्यों में आपको यहाँ लेकर आते हैं, वे हम स्तोताओं को ऐश्वर्य-सम्पन्न बनायें॥२॥

तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति ।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥३॥

जिस प्रकार पुत्र, माता-पिता के धन को ग्रहण करते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव भी अद्‌भुत धन को उत्कृष्ट यज्ञ-कर्मों द्वारा हमें उपलब्ध कराएँ । जैसे कल्याणकारी मधुरवाणी से स्त्री, पति को अपना स्नेहपात्र बनाती है और श्रेष्ठ सुसंस्कृत पुरुष भी स्त्री को धर्मपत्नी के रूप में स्वीकार कर साथ-साथ रहते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव शोधित सोमरस को पीकर हमारे सेहपात्र बने अथवा हमें अपना स्नेहपात्र बनायें॥३॥

तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः ।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ॥४॥

जिस प्रकार गौएँ गोशाला की ओर जाने की इच्छुक रहती हैं, उसी प्रकार इस पवित्र यज्ञ में इन्द्रदेव के आने की प्रतीक्षा (इच्छा) में स्तोत्रों का उच्चारण किया जा रहा है । हे इन्द्रदेव ! आप अपनी उज्ज्वल दीप्ति से यज्ञस्थल को प्रकाशित करें तथा हमारे स्तोत्र मंत्रों की श्रेष्ठता यज्ञकर्ताओं में प्रथम स्थान पर रहे, साथ ही सप्त वाणियों (सप्त छन्दों-सप्तस्वरों) से स्तुति करने वालों को मिलने वाले श्रेष्ठ पद हमें भी प्रदान करें॥४॥

प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः ।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु ॥५॥

हे याज्ञिको ! देवों की प्राप्ति के अभिलाषी व्यक्ति आपके सहयोग से देवत्वपद प्राप्त करते हैं । इन्द्रदेव रुद्रगणों के साथ अकेले ही शीघ्रता से यज्ञस्थल में पहुँचते हैं। प्रार्थनाएँ ही अमृतस्वरूप देवों से ऐश्वर्यरूपी अनुदान उपलब्ध करने के लिए सक्षम हैं। आप सभी संरक्षणकर्ता देवताओं के निमित्त मधुर सोमरस को जल में मिश्रित करके प्रदान करें॥५॥

निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥६॥

अपूतत्त्व अथवा जल में अग्नि रहस्यमय स्वरूप में विद्यमान है । देवताओं के पुण्यकर्मों के संरक्षणकर्ता इन्द्रदेव ने यह रहस्य हमें बताया है । हे अग्निदेव ! मेधावी इन्द्रदेव ही आपका साक्षात्कार करने में समर्थ हैं, उनसे परामर्श लेकर हम आपके समीप आये हैं॥६॥

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥७॥

किसी गन्तव्यपथ से अपरिचित व्यक्ति निश्चित ही पथप्रदर्शक से परामर्श लेते हैं तथा अपने लक्ष्य को उपलब्ध करते हैं। श्रेष्ठ

मार्गदर्शक के मार्गदर्शन का यही कल्याणकारी प्रतिफल (सत्परिणाम) है कि अपरिचित (अज्ञानी) व्यक्ति भी ज्ञानरूपी कल्याणमार्ग को उपलब्ध करते हैं॥७॥

अद्येदु प्राणीदममन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः ।
एमेनमाप जरिमा युवानमहेळन्वसुः सुमना बभूव ॥८॥

ये गोवत्सरूप अग्निदेव प्रकट होकर (प्रज्वलित होकर) कुछ समय से लगातार बढ़ रहे हैं। उन्होंने अपनी माता का दुग्धपान किया है। वे सभी कार्यों को सुगम करने वाले, अपार वैभव-सम्पन्न तथा श्रेष्ठमन की व्यवस्था से पूर्णतायुक्त हैं , तत्पश्चात् इन्हें युवावस्था के साथ ही जीर्णता प्राप्त हुई है॥८॥

एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ॥९॥

हे सम्पूर्ण कलाज्ञानयुक्त स्तुतियाँ सुनने वाले इन्द्रदेव ! आप स्तोत्र, प्रार्थनाओं को सुनकर श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। हे स्तोतारूप वैभव-सम्पन्न (त्वजो) इन्द्रदेव आपके लिए ऐश्वर्य दाता हों, जिसे हम अपने हृदय में धारण करें, ऐसा सोमरस भी वे (आपको) प्रदान करें॥९॥

सूक्त ३३

ऋषि: कवष ऐलूष:
देवता – १ विश्वे देवा, २-३ इन्द्र, ४-५ कुरुश्रवणस्त्रासदस्यव:, ६-९ उपमश्रवा मैत्रातिथि: । छंद – त्रिष्टुप, प्रगाथ, ४-९ गायत्री

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण ।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन्दुःशासुरागादिति घोष आसीत् ॥१॥

(ऋषि कवष कहते हैं-) प्रजाओं को प्रेरित करने वाले (देवों या परमात्मा) ने मुझे (कुरुश्रवण) के साथ इस प्रयोजन में नियोजित किया है। मैंने अन्त:करण में पूषादेव को धारण किया। इसके बाद सभी देवों ने मेरी (कवष की) रक्षा की । तब यह उक्ति सुनी गई कि अदम्य (कवष ऋषि अथवा दिव्य संरक्षक) आवरण प्राप्त हुआ॥१॥

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।
नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ॥२॥

सपलियों की तरह मेरे पार्श्व (पसली या आजू-बाजू वाले) पीड़ा देते हैं। दुर्मति, अज्ञान, नग्नता, अभाव, मृत्युभय तथा अशक्तता मुझे सताते हैं। पक्षी की भाँति मेरा मन चंचल हो रहा हैं॥२॥

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ।
सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव ॥३॥

जैसे चूहा रस से गीले हुए तन्तुओं को खा जाता है, वैसे ही हे असंख्य कर्मों के निर्वाहक इन्द्रदेव ! आपके उपासक होने पर भी हमारी मानसिक व्यथाएँ ही हमें खोखला कर रही हैं । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप हमें अभीष्ट फल प्रदान करके हमारे लिए अति सुखदायक हों तथा पिता के समान ही आप हमारा संरक्षण करे॥३॥

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम् ।
मंहिष्ठं वाघतामृषिः ॥४॥

मैं ऋषि कवष, त्रसदस्यु के पुत्र, श्रेष्ठ दानी राजा कुरुश्रवण के समीप ऋत्विग्गणों के लिए दान प्राप्ति की इच्छा से आया हूँ॥४॥

यस्य मा हरितो रथे तिस्रो वहन्ति साधुया ।
स्तवै सहस्रदक्षिणे ॥५॥

जिस राजा कुरुश्रवण के आरूढ़ होने पर तीन अश्व मुझे वहन करते हैं, उस सहस्रों दक्षिणाएँ देने वाले राजा की स्तुति में (कवष) इस यज्ञ में करता हूँ॥५॥

यस्य प्रस्वादसो गिर उपमश्रवसः पितुः ।
क्षेत्रं न रण्वमूचुषे ॥६॥

(पुनः कवध ऋषि मित्रातिथि के पुत्र के पास पहुँचते हैं । उनकी उदासीनता देखकर कहते हैं-) हे राजन् उपमश्रवस् ! आपके पिता की वाणी बड़ी सरस थी । वे (दान के लिए आकर्षक खेत के समान (उदार) थे॥६॥

अधि पुत्रोपमश्रवो नपान्मित्रातिथेरिहि ।
पितुष्टे अस्मि वन्दिता ॥७॥

हे मित्रातिथि के पुत्र उपमश्रवस् ! मित्रातिथि के लिए मैं (स्तोता) स्तोत्र गान करता हैं । आप शोक न करते हुए हमारे समीप पहुँचें । आपके पिताजी के हम प्रशंसक हैं॥७॥

यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम् ।
जीवेदिन्मघवा मम ॥८॥

देवता अमृत स्वरूप अमर हैं। यदि देवों और मनुष्यों के संरक्षक यहाँ विद्यमान होते, तो ऐश्वर्यवान् मित्रातिथि के निश्चित ही जीवित होने की संभावना की जा सकती थी॥८॥

न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति ।
तथा युजा वि वावृते ॥९॥

दैवी अनुशासनों की अवहेलना करते हुए कोई शतायु जीवन का लाभ नहीं पा सकता। हमारे सहयोगी जो असमय ही साथ छोड़कर चल देते हैं, इसका कारण भी दैवीसत्ता के अनुशासन की अवज्ञा ही है॥९॥

सूक्त ३४

ऋषि: कवष ऐलूष: अक्षो मौजवान
देवता – १, ७,९,१२ अक्ष:, १३ कृषि, २-६, ८, १०, ११, १४ अक्ष-कितव-निन्दा। छंद – त्रिष्टुप, ७ जगती

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥१॥

नीचे की भूमि (निम्न स्तर की मनोभूमि) में उपजे (लोभ रूप) बड़े-बड़े प्रभाव-सम्पन्न गतिशील पाँसे मुझे उत्साहित करते हैं । मौजवान् (पर्वत पर उत्पन्न अथवा तरंगित करने वाला) सोम पीने से जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी ही विभीतक से बने पाँसे मुझे उन्मत्त कर देते हैं॥१॥

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ॥२॥

मेरी यह सुन्दर, सुशीला पत्नी मुझसे कभी भी असंतुष्ट नहीं होती, वह हमेशा मेरी और मेरे पारिवारिक परिजनों, मित्रों की अथक सेवा करती रही है। मात्र इस अक्षक्रीड़ा (जुआ के खेल) ने ही मुझसे अति स्नेहमयी पत्नी को छीन लिया॥२॥

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम् ।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ॥३॥

जुआ खेलने वाले व्यक्ति को उसकी सास कोसती है और उसकी सुन्दर पत्नी उसका परित्याग तक कर देती है। वह भिखारी बनकर किसी से कुछ माँगता भी हैं, तो उसे अविश्वस्त मानकर सभी उसका तिरस्कार करते हैं। जैसे बूढ़े घोड़े की कोई कीमत नहीं रहती, वैसे ही जुआरी भी अपनी मान-प्रतिष्ठा खो देता है॥३॥

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥४॥

जिस जुआरी के धन पर इन बलशाली पाँसों की दृष्टि पड़ जाये, उसकी पत्नी को भी दूसरे लोग हथिया लेते हैं। उसके माता, पिता और भाई भी उसके सम्बन्ध से कतराने लगते हैं, यहाँ तक कि पहचानने से भी इन्कार करते पाये जाते हैं। कहते हैं, इसे बाँधकर ले जाओ, हमारा इससे कोई सम्बन्ध नहीं है॥४॥

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः ।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥५॥

जब कभी मैं मन में विचार करता हूँ कि अब द्यूतक्रीड़ा रूपी पापकर्मों से पीछा छुड़ा लूंगा, क्योंकि मेरे साथी भी मुझे बार-बार अपमानित करते हैं, तभी ये लाल-पीले रंग के पाँसे मुझे आकर्षित कर लेते हैं तथा मैं कुलटा स्त्री की भाँति उनके पास पुनः चला जाता हूँ॥५॥

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा शूशुजानः ।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥६॥

शरीर से प्रफुल्लित जुआरी, किस धनवान् को अपनी जीत का निशाना बनाऊँ, ऐसा मन ही मन सोचता हुआ चूत-सभा में पहुँचता है । विरोधी (प्रतिपक्षी) जुआरी को हराने के लिए प्रस्तुत किये गये वे पाँसे, धन की अभिलाषा को उत्तरोत्तर बढ़ाते हैं॥६॥

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः ।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥७॥

जब जुआरी की चाल उसके अनुकूल नहीं चलती तो वहीं पाँसे जुआरी को अंकुश के समान चुभते, बाण के समान छेदते, छुरे के समान काटते तथा संताप देते हैं । सर्वस्व हार जाने पर परिवार-

परिजनों को भारी कष्टकर होते हैं। इसके विपरीत विजयी जुआरी के लिए ये पाँसे पुत्रजन्म के समान हर्षप्रदायक होते हैं, माधुर्य से युक्त तथा मधुर वचनों से अपने चंगुल में फंसाने वाले होते हैं; लेकिन पराजित जुआरी को तो मार ही डालते हैं॥७॥

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥८॥

तिरपन पाँसों का समूह सत्यधर्मपालक सूर्यदेव की किरणों की भाँति क्रीड़ा करता है। वे उग्रस्वभाव युक्त मनुष्य के क्रोध से भी अप्रभावित रहते हुए, न उसके सामने झुकते हैं, न ही उनके वश में आते हैं। बड़े-बड़े राजा भी इन्हें प्रणाम ही करते हैं॥८॥

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९॥

ये द्यूतक्रीड़ा के पाँसे कभी ऊपर उठते हैं, तो कभी नीचे जाते हैं। हाथों से रहित होते हुए भी पाँसे हाथों से युक्त जुआरियों को पराजित करते देखे जाते हैं । ये जुए के पाँसे दिव्य क्षमता-सम्पन्न होते हुए भी जले हुए अंगारों के समान ही संतप्त करते हैं। ये स्पर्श में शीतल होते हुए भी हृदय को दग्ध करते रहते हैं॥९॥

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥

जुआरी की परित्यक्ता स्त्री दुःख पाती है और कहीं तो अनावश्यक घूमने वाले (जुआरी) पुत्र की माता उसको चिन्ता में दुःखी पायी जाती है । ऋणी जुआरी भयग्रस्त होकर दूसरों के घर में रात्रि बिताता है॥१०॥

स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥११॥

जुआरी दूसरों की स्त्रियों को श्रेष्ठ घरों एवं सुख-सौभाग्य से युक्त देखकर अपनी पत्नी की दुर्दशा पर मन ही मन दुःखी होता है; परन्तु सुबह होते ही गेरु (भूरे) रंग के पॉसों से वह फिर से द्यूतक्रीड़ा में शामिल हो जाता है। सायंकाल उसके शरीर पर वस्त्र तक न रह जाने की स्थिति में जुआरी रात को ठण्डक में आग के समीप समय गुजारता है॥११॥

यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव ।
तस्मै कृणोमि न धना रुणध्मि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥

हे अक्ष-समूह ! आपके महासंघ (विशाल समूह) का जो मुख्य नायक हैं और जो सर्वोत्तम राजा है, उसे मैं अपनी दसों अँगुलियों को जोड़कर प्रणाम करता हूँ । ऐसे जुए से प्राप्त धन की भी हमारी कामना नहीं, मेरा यह कथन यथार्थ है॥१२॥

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥१३॥

हे द्यूतक्रीड़क ! जुआ कभी मत खेलो, कृषि जैसे उत्पादक कार्यों को करो। (इस प्रकार प्राप्त) धन को ही पर्याप्त मानकर संतुष्ट रहो। इसी से पत्नी और गौओं की प्राप्ति होगी। ऐसा परामर्श हमें साक्षात् सवितादेव ने दिया है॥१३॥

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥१४॥

हे अक्षो ! हमें अपना सखारूप मानकर हमारे लिए आप कल्याणकारी हों। हमारे ऊपर कष्टकारी, उग्र, क्रोधी स्वभाव से प्रहार की बात न सोचें। आपके ऐसे क्रोध हमारे विरोधियों को प्राप्त हों, शेष हमारे शत्रु ही भूरे रंग के जुए के पाँसों के बन्धन में जकड़े रहें॥१४॥

सूक्त ३५

ऋषि: लशो धानाक:
देवता – विश्वे देवा । छंद – जगती, १३-१४ त्रिष्टुप

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥१॥

इन्द्रदेव के साथ आवाहित अग्निदेव भी प्रभातवेला में अन्धकार को समाप्त करते हैं तथा तेजस्वितायुक्त होकर प्रदीप्त होते हैं। महिमायुक्त (विस्तृत) द्युलोक और पृथिवीलोक अपने कार्यों में जागरणशील हों । इन्द्रादि देवगण हमारी प्रार्थनाएँ सुनकर हमें संरक्षण प्रदान करें॥१॥

दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातृन्त्सिन्धून्पर्वताञ्छर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥२॥

हमारी प्रार्थना है कि द्युलोक और भूलोक हमारे संरक्षक हों, उसी प्रकार लोकों के निर्माण में सहायक सागर, सरोवर, पर्वत, सूर्य और

उषा से भी विनम्र निवेदन है कि वे सभी हमें पापकर्मों से मुक्त करें। इस समय जो सोम अभिषुत करके श्रेष्ठ रीति से बनाया गया है, वह भी हमारे लिए कल्याणकारी हो॥२॥

द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥३॥

अतिवंदनीय माता-पिता के समान निष्पाप द्यावा-पृथिवी श्रेष्ठ सुखों की प्राप्ति के लिये हमारा संरक्षण करें । अन्धकार की विनाशक उषा हमारे पापकर्मों को विनष्ट करे । हम तेजस्वी अग्नि से कल्याण की कामना करते हैं॥३॥

इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु ।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥४॥

धनप्रदात्री, पापों की निवारणक, सूर्यदेव से पहले उत्पन्न होने वाली उषा, हम साधकों को सौभाग्यशाली ऐश्वर्य प्रदान करें । निर्धनता से पीड़ित लोगों के क्रोध का भाजन हमें न बनना पड़े। तेजस्वी अग्निदेव से हम कल्याण कामना करते हैं॥४॥

प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥५॥

सूर्य की किरणों के साथ आने वाली उषाएँ विशेष प्रकाशमयी होकर अन्धकार को विनष्ट करती हैं। इस समय वे हमें अन्नादि प्रदान करके, हमारे लिये कल्याणकारी होकर, अन्धकार को विनष्ट करें । तेजस्वी अग्निदेव से हम मंगल की कामना करते हैं॥५॥

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥६॥

जिस समय आरोग्यदायिनी उषा हमारी ओर आगमन करती हैं, उस समय में विशेष प्रकाशमान यज्ञीय अग्नि भी प्रज्वलित होती हैं। दोनों अश्विनीकुमार भी शीघ्रगामी रथ में अपने अश्वों को नियोजित कर यहाँ पधारें । तेजस्वी अग्निदेव से हम कल्याण की प्रार्थना करते हैं॥६॥

श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥७॥

हे सवितादेव ! आप हमें धारण करने योग्य धन प्रदान करें, क्योंकि आप श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के दातारूप हैं। धन को उत्पन्न करने वाली प्रार्थनाओं से हम स्तवन करते हैं। तेजस्वी अग्निदेव से हम सुख की कामना करते हैं ॥७॥

पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या अमन्महि ।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥८॥

सत्कर्मशील मनुष्य जिस देवयज्ञ को करने के इच्छुक रहते हैं, वहीं यज्ञ हमें भी संरक्षित करे । सूर्यदेव सभी उषाओं को प्रकाशमान करते हुए प्रकट होते हैं। प्रदीप्त अग्निदेव से हम कल्याण की कामना करते हैं॥८॥

अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे ।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥९॥

इस यज्ञस्थल में आज कुश के आसन बिछाये गये हैं। अभीष्ट फल प्राप्तिरूप सोम अभिषुत करने के लिये दो पत्थर धारण किये गये हैं। हे यजमानो ! अपनी अभीष्टपूर्ति के लिए विद्वेषरहित, मेहमूर्ति आदित्यगणों का आश्रय ग्रहण करो। आपके कर्तव्यकर्म-अनुष्ठान से हर्षित हुए आदित्यदेव आपको सुख प्रदान करने वाले हों । प्रदीत अग्निदेव से हम सुख की प्रार्थना करते हैं॥९॥

आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतृन् ।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥१०॥

हे अग्निदेव ! हमारे अतिविस्तृत, दिव्यतायुक्त यज्ञीय सत्कर्मों में देवगण संगठित होकर आनन्दित होते हैं। इस प्रगति प्रदायक यज्ञ में सप्त होताओं के साथ इन्द्र, मित्र, वरुण, भगदेव तथा अतिरिक्त देवों को भी बुलाकर आप प्रतिष्ठित करें। यज्ञ में उपस्थित सम्पूर्ण देवों से ऐश्वर्य के लिये हम प्रार्थना करते हैं तथा अग्निदेव से हम कल्याण की कामना करते हैं॥१०॥

त आदित्या आ गता सर्वतातये वृधे नो यज्ञमवता सजोषसः ।
बृहस्पतिं पूषणमश्विना भगं स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥११॥

हे आदित्यदेवो ! आप जगविख्यात हैं, हम सबके कल्याण के लिये आप हमारे यज्ञस्थल में पधारें । आप सभी पारस्परिक सहयोग से ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये हमारे यज्ञों को संरक्षण प्रदान करें । बृहस्पतिदेव, पूषादेव, अश्विनीकुमारों, भगदेव तथा प्रदीप्त अग्निदेव से हम कल्याण की कामना करते हैं॥११॥

तन्नो देवा यच्छत सुप्रवाचनं छर्दिरादित्याः सुभरं नृपाय्यम् ।
पश्वे तोकाय तनयाय जीवसे स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे ॥१२॥

हे आदित्य देवो ! आप हमारे यज्ञ को सर्वसुख-सम्पन्न बनायें । हमें ऐश्वर्यशाली, सुखप्रद, मनुष्यों के पालन में सक्षम राजभवन प्रदान करें

। हम तेजस्वी अग्निदेव से पुत्र-पौत्रादि, गवादि पशु तथा दीर्घजीवनादि सभी प्रकार के कल्याण की कामना करते हैं॥१२॥

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥१३॥

आज सभी मरुदेव और रुद्रादिदेव हमारा संरक्षण करें, सम्पूर्ण अग्नियाँ प्रज्वलित हों । सभी इन्द्रादिदेवगण हमारे संरक्षण के लिये यज्ञ में पधारें । हमें सभी प्रकार की ऐश्वर्य-सम्पदा एवं अन्न सामग्री उपलब्ध हो॥१३॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः ॥१४॥

हे शीघ्र अभीष्टफलपूरक देवो ! आप युद्ध क्षेत्र में जिसका संरक्षण करते हुए शत्रुपक्ष से सुरक्षित करते हैं, पापकृत्यों का निवारण करके जिसे ऐश्वर्य-सम्पन्न बनाते हैं तथा जो आप के संरक्षण में निर्भय रहते हैं, हम देवाराधक मनुष्य इसी प्रकार के गुणों को धारण करें॥१४॥

सूक्त ३६

ऋषि: लशो धानाक:
देवता – विश्वे देवा । छंद – जगती, १३-१४ त्रिष्टुप

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥१॥

हम अपने यज्ञस्थल में महिमामय एवं श्रेष्ठ शोभायुक्त प्रभातवेला, रात्रि, द्यावा, पृथ्वी, वरुण, मित्रगण, अर्यमा, इन्द्र, मरुद्गण, पर्वत, जल, आदित्यगण, अन्तरिक्ष तथा देवलोक आदि को सादर आमन्त्रित करते हैं ॥१॥

द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥२॥

यज्ञ के अधिष्ठाता स्वरूप तथा विशाल हृदयवाले द्यावा-पृथिवी हमें सभी पापों से संरक्षित करें । पापबुद्धि युक्त (पाप वृत्ति रूप) मृत्युदेव

हमें अपने नियन्त्रण से निवृत्त करें। आज हम देवशक्तियों से श्रेष्ठ संरक्षण की कामना करते हैं॥२॥

विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः ।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥३॥

ऐश्वर्य सम्पन्न मित्रावरुण तथा देवों की माता देवी अदिति हमें संम्पूर्ण पापकर्मों से बचायें, जिससे हम अविनाशी, संरक्षणयुक्त तेजस्विता को प्राप्त करें । हम देवशक्तियों से पूर्ण – संरक्षण की प्रार्थना करते हैं॥३॥

ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुष्ष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥४॥

सोम अभिषवण में प्रयुक्त पाषाण, अभिषवण क्रिया के समय शब्दायमान होते हुए यज्ञ में विघ्नकारी असुरों, कष्टदायक स्वप्नों, मृत्युरूप पापों तथा सभी पैशाचिक दुष्कृत्यों में संलग्न शत्रुओं का संहार करें । इस प्रकार विनों से रहित यज्ञ में हम आदित्यों और मरुद्गणों से सुख प्राप्त करें। हम आज सभी देवताओं से पूर्ण संरक्षण की कामना करते हैं॥४॥

एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ।

सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥५॥

इन्द्रदेव हमारे यज्ञ में आकर आसन ग्रहण करें । वाणी और पृथ्वी हमें श्रेष्ठ फल प्रदायिनी हों । सामगान से प्रशंसायुक्त बृहस्पतिदेव उनकी स्तुति करें । हम जीवनोपयोगी , श्रेष्ठ अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले धन उपलब्ध करें । हम देव शक्तियों से भलीप्रकार संरक्षण की प्रार्थना करते हैं॥५॥

दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये ।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥६॥

हे अश्विनीकुमारो ! हमारा सत्कर्मरूपी यज्ञ अति तेजस्वी अग्नि से युक्त, हिंसारहित तथा अनिष्टरहित होकर हमारे अभीप्सित लाभ के लिये कल्याणप्रद हो, ऐसी आपकी कृपा रहे । जिस अग्नि में घृतयुक्त हवियाँ प्रदान की जाएँ, उनकी ज्योतियों को देवों के प्रति प्रेरित करें । आज हम देवशक्तियों से पूर्ण संरक्षण की कामना करते हैं॥६॥

उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शम्भुवम् ।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥७॥

यज्ञ सम्पादनशील, पवित्रतायुक्त, दर्शनीय और सुखदायक मरुद्गणों की हम प्रार्थना करते हैं। धन के दानकर्ता उन्हें हम, मैत्री भावना से

आवाहित करते हैं। सुखदाता, कीर्तिवान् , अन्नों के दानकर्ता मरुद्गणों को हम हृदय में धारण करते हैं। हम तेजस्वी अग्निदेव से रक्षा की प्रार्थना करते हैं॥७॥

अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम् ।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥८॥

जल के संरक्षक, प्राणियों के लिए सन्तोषप्रद (आनन्दप्रद) , देवों के तुष्टिदायक, प्रशंसनीय, श्रेष्ठ संज्ञक, यज्ञ की शोभा तथा श्रेष्ठ रश्मिधाराओं से युक्त सोम को हम धारण करते हैं । उनसे हम शक्ति की प्राप्ति के लिए कामना करते हैं तथा सभी देव शक्तियों से आज हम संरक्षण की प्रार्थना करते हैं॥८॥

सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः ।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥९॥

अपनी और अपनी सन्तानों के दीर्घायुष्य से युक्त एवं दुष्कर्मों से रहित होकर हम उपभोग्य सामग्रियों और श्रेष्ठ सत्कर्मों द्वारा परमात्मा की सच्ची आराधना करें। परमात्मज्ञान से रहित लोग सभी प्रकार के पापकर्मों में संलग्न होकर शीघ्र विनाश को प्राप्त हों । हम देवशक्तियों से आज श्रेष्ठ संरक्षण की कामना करते हैं॥९॥

ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्ददातन ।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१०॥

हे आराध्य देवगण ! आप सम्पादित यज्ञ भाग को उपलब्ध करने के अधिकारी हैं। आप हमारी प्रार्थना-स्तुतियों का श्रवण करें । हम आपसे जिन मनोरथों की कामना करते हैं, उन सभी ज्ञान, बल, ऐश्वर्य तथा सन्तानादि से युक्त यश आप हमें उपलब्ध करायें । आज हम देवों से संरक्षण की कामना करते हैं॥१०॥

महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम् ।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥११॥

आज हम महिमायुक्त, व्यापक तथा अविचल-इन्द्रादि देवताओं से संरक्षण की प्रार्थना करते हैं, जिससे हम ऐश्वर्य और वीर सन्तानों को प्राप्त करें। आज हम देवशक्तियों से श्रेष्ठ संरक्षण की प्रार्थना करते हैं॥११॥

महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१२॥

सवितादेव की आज्ञा के अनुगत होकर हम देवों के उत्तम संरक्षण का वरण करते हैं। हम प्रदीप्त अग्निदेव के आश्रय को प्राप्त होते हुए

मित्र और वरुणदेव के मध्य में अपराधरहित होकर सदा कल्याण को प्राप्त करें॥१२॥

ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः ।
ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥१३॥

जो देवगण सत्यकर्मों के प्रेरक सवितादेव, मित्र और वरुण के व्रत – नियमों में संलग्न हैं, वे वीर सन्तानों से सम्पन्न, पशुओं से युक्त सम्पदा, ज्ञान-धन, पूजा योग्य सम्पत्तियाँ तथा सत्कर्म की प्रेरणा हमें प्रदान करें॥१३॥

सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् ।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥१४॥

जो सर्व उत्पादक सवितादेव पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी दिशाओं में विस्तृत हैं, वे सवितादेव हमें सभी प्रकार की ऐश्वर्य – सम्पदा उपलब्ध करायें । वे सवितादेव हमें दीर्घायुष्य प्रदान करें॥१४॥

सूक्त ३७

ऋषि: सौर्योऽभितपा:
देवता – सूर्य । छंद – जगती, १० त्रिष्टुप

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥१॥

हे ऋत्विग्गण ! आप मित्र और वरुणदेवों को देखने वाले, महान् दिव्यतायुक्त, अति दूर से सभी वस्तुओं के दर्शक, देवों के कुल में उत्पन्न, जगत् के प्रकाशक तथा द्युलोक के पुत्रस्वरूप सूर्यदेव को नमन करें । उनके सत्यपथ का अनुगमन करें तथा उनकी अर्चना करें॥१॥

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च ।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥२॥

जिसके आश्रय से द्युलोक – पृथ्वी और दिन-रात उत्पन्न होते हैं, जो गतिमान हैं, जड़ से पृथक् चेतन भी जिसके आश्रय में निवास करते

हैं, जिसके प्रभाव से जल निरन्तर प्रवाहित रहता है और सूर्योदय होता है, सत्य से युक्त ऐसे वचन हमें सभी प्रकार से संरक्षित करें॥२॥

न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥३॥

हे सूर्यदेव जब आप वेगशील अश्वों को रथ से योजित करके आकाशमार्ग में गमन करते हैं, तब कोई अदेव आपके निकट नहीं पहुँच सकता । आप जिस तेजस्विता के साथ उदित होते हैं, वहीं आपका अनुगमन करती हैं॥३॥

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुष्ष्वप्न्यं सुव ॥४॥

हे सूर्यदेव ! आप जिस तेजस्विता से अन्धकार को विनष्ट करते हैं तथा जिन प्रकाशकिरणों से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित करते हैं, उसी तेजस्विता के प्राण से पापकर्मों का निवारण करें; अन्न-जल की अभावग्रस्तता, रोगों-व्याधियों तथा कुविचारों आदि मानसिक कष्टों का निवारण करें॥४॥

विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥५॥

हे सूर्यदेव ! आप सर्वप्रेरक होकर सहज-स्वभाव से विश्व के व्रतों – कर्मों का संरक्षण करते हैं और प्रात: कालीन यज्ञों की आहुतियों को ग्रहण करते हैं । हे सूर्यदेव ! आज जिस समय हम आपके पावन नाम से आपकी प्रार्थना करते हैं, उस यज्ञीय क्रम का इन्द्रादि देवगण समर्थन प्रदान करें॥५॥

तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ॥६॥

इन्द्रदेव, मरुद्गण, जल तथा द्यावा-पृथिवी हमारे आवाहन पर हमारी वाणी को सुनें । हमारे ऊपर सूर्यदेव की कृपा बनी रहे, उनके दर्शन से लाभान्वित होकर हम कष्टों से बचे रहें । हम दीर्घायुष्य को प्राप्त करके कल्याणकारी-सुखी जीवन को भोगते हुए वृद्धावस्था की ओर बढ़े॥६॥

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥७॥

हे आदित्यदेव ! आपकी कृपा से हम सदैव सुविचारों से सम्पन्न, शोभनदृष्टि से युक्त, सुसन्ततियों से सम्पन्न, आरोग्य-सम्पन्न तथा पाप

कर्मों से रहित हों । हे मित्रगणों से पूजनीय ! हम जीवन्त रहकर प्रतिदिन उदय होते हुए आपके ज्योतित स्वरूप के दर्शन करें॥७॥

महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः ।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥८॥

हे सूर्यदेव ! महिमामय ज्योति के धारणकर्ता, देदीप्यमान, सबके नेत्रों के लिए सुखद, अतिशक्तिमान् , समुद्र के जल से ऊपर आकाशमण्डल में उदित होते हुए हम सभी आपके दर्शन लाभ से प्रतिदिन लाभान्वित हों॥८॥

यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः ।
अनागास्त्वेन हरिकेश सूर्याह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ॥९॥

हे हरिकेश सूर्यदेव ! आपकी जिस ज्ञानरूप (प्रकाशरूप) ध्वजा से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशमान होता है और जिससे आप प्रत्येक रात्रि को अन्धकार दूर करते हैं, आप उसी ध्वजा के सहित प्रतिदिन उदित हों । हमें पापकर्मों से निवृत्त करके श्रेयमार्ग पर चलायें, आप हमारे लिए श्रेयस्कर हों॥९॥

शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन ।
यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१०॥

हे सूर्यदेव ! आप अपनी तेजस्विता से हमारे लिए कल्याणकारी हों; अपने दिवस, रश्मियाँ, शीतलता तथा उष्णता से हमें सुखी करें । आप हमारे जीवन-पथ तथा घरों में भी शान्तिवर्षा करें; हमें आप ऐश्वर्य प्रदान करें॥१०॥

अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे ।
अदत्पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ॥११॥

हे देवगण ! आप द्विपाद मनुष्यों-पक्षियों तथा चतुष्पाद पशुओं, सभी प्राणियों को सुख प्रदान करें । सभी के खान-पान ऊर्जावर्द्धक (बलवर्द्धक) हों, हितकारी हों । सभी को हितकारी, निष्पाप एवं स्वावलम्बी जीवन प्रदान करें॥११॥

यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम् ।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्तदेनो वसवो नि धेतन ॥१२॥

हे ऐश्वर्यवान् देवगण ! वाणी या मन से हमारे द्वारा देवताओं को कुपित करने वाले जो पाप हो जाते हैं, उनका दोष आप उन पर डालें, जो यज्ञरहित-अदानशील तथा हमारी अनिष्ट करने वाले हैं॥१२॥

सूक्त ३८

ऋषिः मुष्कवानिन्द्र
देवता – इन्द्र । छंद – जगती

अस्मिन्न इन्द्र पृत्सुतौ यशस्वति शिमीवति क्रन्दसि प्राव सातये ।
यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक्पतन्ति दिद्यवो नृषाह्ये ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! ऐसे संग्राम में, जो यशस्वितायुक्त हैं, जिसमें हमले पर हमले का क्रम चलता है, उसमें आप वीरोचित शौर्य से उद्घोष करते हैं तथा रिपुओं द्वारा जीती गयी गौओं को सुरक्षित करते हैं। इस युद्ध में एक तरफ तीक्ष्णधार युक्त बाण, योद्धा शत्रुओं पर गिरते हैं, इसे देखकर लोग विस्मित हो जाते हैं॥१॥

स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णुहि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ।
स्याम ते जयतः शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप प्रचुर धन-धान्य और गोधन से हमारे घरों को परिपूर्ण करें । हे सबके आश्रयभूत इन्द्रदेव ! आपके विजयी होने पर

हम आपके कृपापात्र बनें, जिस ऐश्वर्य की हम कामना करते हैं, वह हमें उपलब्ध हो॥१॥

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति ।
अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम संगमे ॥३॥

हे असंख्यों के स्तुतियोग्य इन्द्रदेव ! जो दासजाति, आर्यजाति या जो कोई भी देवविरोधी असुर हमारे साथ संग्राम के आकांक्षी हैं, वे शत्रु आपकी अनुकम्पा से पराभूत हों । हम आपके सहयोग से उन्हें पराजित करें॥३॥

यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये ।
तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ॥४॥

जिनकी अर्चना अल्पसंख्यक तथा बहुसंख्यक सभी मनुष्य करते हैं, जो भयंकर संग्राम में विजयी बनकर श्रेष्ठधनों को प्राप्त करते हैं। उन पवित्रतायुक्त और सुप्रसिद्ध नायक इन्द्रदेव को हम अपने संरक्षण के लिए आवाहित करते हैं॥४॥

स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपने साधकों को प्रोत्साहित करते हैं। हमें किसके द्वारा प्रोत्साहन प्राप्त होगा ? यह हमें ज्ञात है कि आप अपनी सामर्थ्य से ही अपने बन्धनों को काटने में सक्षम हैं, अतएव स्वयं को तथा दूसरों को शीघ्र विमुक्त करें । कुत्स के बन्धन से आप हमें मुक्त करें तथा यहाँ उपस्थित हों । क्या आपके समान समर्थ व्यक्ति मुष्कद्वय के बन्धन में जकड़े रह सकते हैं?॥५॥

सूक्त ३९

ऋषि: काक्षीवती घोषा
देवता – आश्विनौ इन्द्र । छंद – जगती, १४ त्रिष्टुप

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥१॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपका सर्वत्र विचरणशील जो श्रेष्ठ सुखद् रथ है, उस रथ को आवश्यक कार्य हेतु रात-दिन यजमान लोग आदरपूर्वक आवाहित करते हैं, हम ऐसे रथ का नामोच्चारण करते हैं । जैसे पिता का नाम लेने से हृदय आनन्दित होता है, वैसे ही इस रथ के साथ आपको आवाहित करते हुए प्रसन्नता होती है॥१॥

चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरंधीरीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप हमें श्रेष्ठ सम्भाषण की ओर प्रेरित करें, हमारे श्रेष्ठ कर्मों को सफल बनाएँ। आप दोनों नानाविध प्रेरणाओं को प्रकट करें, हम यही आकांक्षा करते हैं। हमें कीर्तियुक्त उपयोगी ऐश्वर्य

प्रदान करें। जिस प्रकार सोमरस कल्याणकारी हैं, वैसे ही ऐश्वर्य-सम्पन्नों में हमें सर्वश्रेष्ठ बनाएँ॥२॥

अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ॥३॥

हे सत्यनिष्ठ अश्विनीकुमारो ! पिता के घर में जब एक असहाय नारी वार्द्धक्य को प्राप्त कर रही थी, तब आप दोनों के सहयोग से उसे अपने सौभाग्यस्वरूप वर की प्राप्ति हुई । जो चलने में असमर्थ हैं, उसके लिए आप आश्रयरूप हैं । आपको लोग नेत्रहीन, दुर्बलकाय तथा रोग से दुःखी मनुष्यों का चिकित्सक मानते हैं॥३॥

युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥४॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने शरीर से जर्जर च्यवनषि को उसी प्रकार यौवन प्रदान किया, जिस प्रकार कोई पुराने रथ को नये ढंग से विनिर्मित करके दुबारा गतिशील होने के लिए तैयार कर देता हैं। आपने ही तुम – पुत्र भुज्यु को जल के ऊपर से सुरक्षित किया। आप दोनों के ये कार्य यज्ञादि कर्मों में विशेष वर्णनीय हैं॥४॥

पुराणा वां वीर्या प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वां नु नव्याववसे करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥५॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के प्राचीनकाल के वीरतापूर्ण किये गये कार्यों का हम लोगों में प्रसार करते हैं । हे सत्यनिष्ठ ! आप दोनों ही अतिकुशल चिकित्सक हैं । आपके आश्रय को प्राप्त करने के लिए हम आपकी प्रार्थना करते हैं। जिससे यजमान श्रद्धा – भावना से युक्त हों, आप ऐसी कृपा करें॥५॥

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ॥६॥

हे अश्विनीदेवो ! आप दोनों का, यह घोषा आवाहन करती है, उसके निवेदन पर ध्यान दें । जैसे पिता, पुत्र को मार्गदर्शन देते हैं, वैसे ही आप मुझे परामर्श दें। मेरा कोई सहायक बन्धु नहीं। मैं ज्ञान से रहित, परिवार परिजनों से रहित तथा अल्पज्ञा हूँ । मेरे दुर्गतिग्रस्त होने से पूर्व ही आप दोनों मुझे इस दुर्दशा से उबारें॥६॥

युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये ॥७॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने पुरुमित्र नामक राजा की शुन्ध्युव नाम की पुत्री को रथारूढ़ करके उसके पति विमद को सौंप दिया था। आप दोनों ही वधिमती के आवाहन पर उसके समीप आये थे, उसके निवेदन को सुनकर तथा प्रसव-वेदना को दूर करके प्रसव में सहायक हुए थे॥७॥

युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ॥८॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने जर्जरकाया वाले ऋषि को पुनः यौवन प्रदान किया। आपने पत्नी शोक से दु:खी वन्दन नामक ऋषि को कुएँ से बाहर निकाला था। उसी प्रकार आपने लँगड़ी (अपंग) विश्पला को लोहे की जङ्घा प्रत्यारोपित करके उसे चलने-फिरने के लिए उपयोगी बनाया॥८॥

युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना ।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ॥९॥

हे अभीष्ट फलदायक अश्विनीकुमारो !जब रेभ नामक ऋषि को दुष्ट शत्रुओं ने मरणासन्न स्थिति में गुफा के बीच छिपा लिया था, तब आपने ही उन्हें कष्टमुक्त किया था। जिस समय अत्रि ऋषि सात बन्धनों से बाँधे जाकर प्रज्वलित अग्निकुण्ड में झोंक दिये गये थे, उस समय भी आप दोनों ने ही उन्हें अग्निकुण्ड से मुक्त किया था॥९॥

युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥१०॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने ही राजा पेदु को निन्यानवे अश्वों के साथ एक श्वेतवर्ण का उत्तम अश्व भी प्रदान किया था। ये सभी शत्रुपक्ष को पराभूत करने के लिए ही प्रदान किये थे। यह विचित्र अश्व शत्रुसेनाओं को खदेड़ देने वाला, बुलाये जाने पर शीघ्र आने वाला, योद्धाओं के लिए बहुमूल्य ऐश्वर्यप्रद था। उसके नामोच्चारण से प्रसन्नता होती थी तथा देखने से मन पुलकित हो जाता था॥१०॥

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥११॥

हे अविनाशी राजास्वरूप अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के नाम लेने से भी आनन्द की अनुभूति होती हैं । जिस समय आप मार्ग में गमन करते हैं, उस समय सभी ओर से आपकी प्रार्थना होती है। यदि आप दम्पती को रथ के अगले हिस्से में चढ़ाकर आश्रय दें, तो उन्हें कोई भी पाप, दुर्गति और संसार के भय स्पर्श नहीं कर सकेंगे॥११॥

आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः ॥१२॥

हे अश्विनीकुमारों ! आपके निमित्त जो रथ ऋभुदेवों ने प्रदान किया, जिसके प्रकट होने पर तेजस्वी अन्तरिक्ष की पुत्री देवी उषा का उदय

होता है और सूर्यदेव से अति मनोहर दिन तथा रात्रि जन्म लेते हैं, ऐसे मन से भी अति गतिशील रथ से आप आगमन करें॥१२॥

ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसितामुमुञ्चतम् ॥१३॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप उस विजयी रथ से पर्वत की ओर प्रस्थान करें, शंयु की वृद्धा गाय को पुनः दुधारू बनाएँ । आपने अपनी सामर्थ्य से भेड़िये के मुँह से पति वर्तिका (चटका) को मुक्त करके उसका संरक्षण किया था॥१३॥

एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ॥१४॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार भृगु वंशजों द्वारा रथों का निर्माण किया जाता है, वैसे ही हम यह रथ (स्तोत्र) आपके लिए समर्पित करते हैं। जैसे दामाद को कन्या देने के समय लोग उसे वस्त्राभूषण से सुशोभित करते हैं, वैसे ही हम इन स्तोत्रों को भावना से समर्पित करते हैं। हमारे पुत्र-पौत्रादि सन्ताने सदैव सुख-सौभाग्य युक्त हों॥१४॥

सूक्त ४०

ऋषि: काक्षीवती घोषा
देवता – आश्विनौ। छंद – जगती

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति ।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि ॥१॥

हे कर्मों के द्रष्टा अश्विनीकुमारो ! आपका तेजस्वी रथ जिस समय प्रात:काल गमन करता है और प्रत्येक साधक के पास सुखोपभोग के साधन ले जाता है, उस समय अपने यज्ञ की सफलता के लिये कौन याजक उस तेजस्वी रथ का स्तुतिगान नहीं करता? आपका वह रथ किस स्थान पर स्थित है ?॥१॥

कुह स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों रात्रि में किन स्थानों तथा दिन में भी किस स्थान की ओर गमन करते हैं? कहाँ पर अपना समय व्यतीत

करते हैं? जैसे विधवा स्त्री द्वितीय वर तथा सुन्दर स्त्री अपने पति को सम्मानित करती है, उसी प्रकार यज्ञकाल में आदर सहित आपका कौन आवाहन करते हैं?॥२॥

प्रातजरिथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥३॥

हे नेतृत्व क्षमता-सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार प्रात:काल वैभवशाली राजाओं को, चारण (प्रशंसक) स्तोत्रों द्वारा जगाते हैं, वैसे ही आप दोनों के लिए प्रात: काल ही स्तोतागण स्तोत्रगान करते हैं । यज्ञ भाग को प्राप्त करने के लिए आप प्रतिदिन किस यजमान के गृह में प्रवेश करते हैं? आप यजमान के किन दोषों का निवारण करते हैं? आप दोनों राजपुत्रों के समान ही किस यजमान के यज्ञ में जाते हैं ?॥३॥

युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥४॥

हे अश्विनीकुमारो ! जैसे व्याध, हाथी और शेर की आकांक्षा करते हैं, वैसे ही हम आपको रात-दिन हविर्द्रव्यों के साथ आवाहित करते हैं । हे उत्तम नायको ! आपके निमित्त यथाकाल यजमान-साधक

आहुतियाँ समर्पित करते हैं, आप दोनों मनुष्यों के लिए अन्नादि प्रदान करते हैं। आप कल्याणकारी उद्देश्यों के स्वामी हैं॥४॥

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥

हे उपदेशक अश्विनीकुमारो ! मैं कक्षीवान् की पुत्री राजकुमारी घोषा हूँ । जो चारों ओर भमणशील होकर आपका ही यशोगान करती हूँ । आप दोनों के प्रति ही जिज्ञासु भावनाएँ रखती हैं । दिन और रात आप मेरे कल्याण के निमित्त नित्य कर्मों में सहायक बनें॥५॥

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा ॥६॥

हे क्रान्तदर्शी अश्विनीकुमारो ! आप दोनों रथारूढ़ हों । कुत्स के समान ही आप स्तुतिकर्ता के गृह में रथ पर विराजमान होकर जाते हैं । हे अश्विनीकुमारो ! आपके पास प्रचुर मात्र में मधु है । नारियों की तरह मक्खियाँ भी उसे मुँह में ग्रहण करती हैं॥६॥

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥७॥

हे अश्विनीकुमारो ! दुःखद स्थिति में समुद्र में पड़े हुए भुज्यु नामक व्यक्ति को आपने ही सुरक्षित किया था। आपने राजा वश और ऋषि अत्रि के श्रेष्ठ स्तोत्र से प्रशंसित होकर उनका उद्धार किया था। आपकी मित्रता श्रेष्ठ दानी ही प्राप्त कर सकते हैं । आपके संरक्षण में जो सुख-शान्ति मिलती है, उसकी अभिलाषा घोषा करती है॥७॥

युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥८॥

हे अश्विनीकुमारो ! आपने अपने सहायक कृश, ष शंयु तथा विधवा नारी को संरक्षित किया था। यज्ञ सम्पादनशील के लिये आप ही बादलों को खुला करते हैं, जिससे बादल ध्वनि करते हुए जल बरसाते हैं॥८॥

जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु ।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनम् ॥९॥

हे अश्विनीकुमारो । आपकी सामर्थ्य से ही यह घोषा, नारी लक्षणों से युक्त होकर सौभाग्यवती हुई, यथेच्छित वर-श्रेष्ठ की उसे प्राप्ति हुई । आपकी कृपावृष्टि से ही श्रेष्ठ वनस्पतियाँ हरी-भरी हुई हैं। नीचे की ओर अपने प्रवाह को करके, नदियाँ प्रवहमान हैं, इन सभी को सामर्थ्य एवं आरोग्य लाभ प्राप्त हुआ है॥९॥

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥१०॥

है अश्विनीकुमारो ! जो पुरुष अपनी पत्नी की जीवन रक्षा के लिए रोदन तक करते हैं, उन्हें यज्ञादि सत्कर्मों में नियोजित करते हैं, गर्भाधानादि संस्कार से सन्तानोत्पादन करके पितृ-यज्ञ में नियोजित करते हैं, उनकी स्त्रियाँ उन्हें सुख और सहयोग प्रदान करती हैं॥१०॥

न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥११॥

हे अश्विनीकुमारो ! मैं उस सुख से अपरिचित हूँ। आप ही उन सुखों का वर्णन करें, जो युवा पति-युवा पत्नी के साथ रहकर प्राप्त करते हैं। मेरी इच्छा है कि पत्नी से प्रेम करने वाले स्वस्थ-बलिष्ठ पति के गृह में पहुँचें॥११॥

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्याँ अशीमहि ॥१२॥

हे अन्न और ऐश्वर्ययुक्त अश्विनीकुमारो ! आप हमारे प्रति कृपा दृष्टि करें, हमारी मानसिक इच्छाओं की पूर्ति में सहायक हों, आप हमारे

लिए कल्याणकारी हों। हम अपने पति की प्रेमपात्र बनकर पतिगृह को सुशोभित करें॥१२॥

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥१३॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप मेरी प्रार्थना से प्रशंसित होकर मेरे पतिगृह को ऐश्वर्य एवं सन्तानादि से परिपूर्ण करें । हे कल्याणकारी अश्विनीकुमारो ! आप हमें सुख से सेवन करने योग्य जल प्रदान करें। हमारे पतिगृह के गमनमार्ग में यदि कोई दुष्ट, विघ्न उपस्थित करे , तो उसका निवारण करें॥१३॥

क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् ॥१४॥

हे दर्शनीय एवं कल्याणकारी अश्विनीकुमारो ! आजकल आप कहाँ, किनके गृहों में मनोविनोद करते हुए संरक्षण प्रदान करने के गुण से स्वयं को सन्तुष्ट करते हैं? कौन यजमान आप दोनों को बाँधकर रखने में समर्थ हैं ? किस ज्ञानवान् यजमान के गृह में आप गये हैं ?॥१४॥

सूक्त ४१

ऋषिः सुहस्त्यो घौषेयः
देवता – आश्विनौ। छंद – जगती

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥१॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों के पास एक ही रथ है, उस उत्तम रथ की स्तुति करते हुए अनेक लोग उसका आवाहन करते हैं । वह रथ तीन चक्रों से युक्त है, जो यज्ञ स्थलों में जाता हैं । वह चारों ओर विचरते हुए यज्ञों को सफल बनाता है, प्रतिदिन प्रभात वेला में हम श्रेष्ठ स्तुतियों से उसी रथ का आवाहन करते हैं॥१॥

प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना ॥२॥

हे सत्यनिष्ठ एवं नायक अश्विनीकुमारो ! आप प्रभात वेला में ही मधु वहन करके ले जाने वाले अश्वों से जोते गये रथ पर विराजमान हों । उसके द्वारा यज्ञशील यजमानों के समीप जाएँ, जो आपकी प्रार्थनाएँ करते हैं, उसके होतृयुक्त यज्ञ में भी आप भाग लें॥२॥

अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत्सवनानि गच्छथोऽत आ यातं मधुपेयमश्विना ॥३॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों हाथ में मधु धारण किये हुए अध्वर्यु , सुहस्त अथवा अग्निध नामक जो जितेन्द्रिय प्रत्व दान भावना से प्रेरित हैं, उनके समीप पहुँचे । आप सदैव विद्वान्-ज्ञानी यजमानों के यज्ञों में गमन करते हैं । मधुपान करने के लिए आप हमारे घर में भी अवश्य पधारें॥३॥

सूक्त ४२

ऋषि: कृष्ण अंगिरस
देवता – इन्द्र । छंद – त्रिष्टुप

अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन्भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ।
वाचा विप्रास्तरत वाचमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥१॥

जिस प्रकार धनुर्धारी उत्तम रीति से लक्ष्यवेधी बाणों का प्रहार करते हैं तथा पुरुष आभूषणों से सुसज्जित होते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव के लिए श्रेष्ठ स्तुतियों का प्रयोग करें । हे ज्ञानी मनुष्यो ! प्रतिस्पर्धा करने वालों के लिये ऐसी स्तुतियों का प्रयोग करें, जिससे वे पराजित हो जाएँ । हे स्तोताओ ! पराक्रमी इन्द्रदेव को सोमपान की ओर आप लोग आकर्षित करें॥१॥

दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥२॥

हे स्तुतिकर्ता ! जिस प्रकार गौओं का दोहन करके अपना प्रयोजन पूर्ण किया जाता है, वैसे ही मित्रस्वरूप इन्द्रदेव से अपने अभीष्टफलों को उपलब्ध करें, प्रशंसा योग्य इन्द्रदेव को जाग्रत् करें । जैसे मनुष्य अन्न से भरे हुए पात्र के मुख को नीचे की ओर करके उसके अन्न को निकालते हैं, वैसे ही शूर इन्द्रदेव को अभीष्ट सिद्धि के लिए अनुकूल बनायें॥२॥

किमङ्ग त्वा मघवन्भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥३॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! आपको ज्ञानी लोग कामनापूरक क्यों कहते हैं? आप हमें धन से सम्पन्न बनाएँ, हम आपको प्रोत्साहित करने वाला मानते हैं। हे इन्द्रदेव ! हमारी विवेक-बुद्धि,कार्यों को कुशलता से सम्पादित । करे, आप हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य-सम्पदा से सौभाग्ययुक्त करें॥३॥

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! योद्धा लोग समरभूमि में जाते हुए सहयोगार्थ आपका स्मरण करते हैं। वे साधक युद्ध में वीर की सहायता करते हैं । जो

वीर इन्द्र के लिए सोम प्रस्तुत नहीं करते, वे इन्द्र की मैत्रीभावना से वञ्चित रहते हैं॥४॥

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥

जो हविष्यान्नयुक्त यजमान असंख्य गौ-अश्वादि देने वाले वैभवशाली के समान ही उदार हृदय से इन्द्रदेव को तीव्र सोमरस समर्पित करते हैं, वे इन्द्रदेव का सहयोग प्राप्त करते हैं। वृत्रहनकर्ता इन्द्रदेव उस यजमान के ते है हननको इन्दै सामर्थ्यवान् एवं अनेक आयुधों से युक्त सैन्यदल वाले शत्रुओं को भी शीघ्रातिशीघ्र परास्त कर देते हैं तथा विघ्नकारी असुरों का संहार करते हैं॥५॥

यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥

जिन इन्द्रदेव की हम स्तोत्रों से प्रार्थना करते हैं तथा जो ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव हमें अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उनके सामने से शत्रु भयभीत होकर पलायन करें तथा शत्रुपक्ष की ऐश्वर्य-सम्पदा इन्द्रदेव को उपलब्ध हो॥६॥

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।

अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! असंख्य साधक आपको आमन्त्रित करते हैं । जो आपका तीक्ष्ण वज्रास्त्र है, उससे आप हमारे समीपस्थ शत्रुओं को खदेड़ कर दूर करें तथा हमें अन्न-जौ एवं गवादि से युक्त सम्पदा प्रदान करें । अपने स्तुतिकर्ता की प्रार्थना को अन्न-रत्नप्रसविनी बनाएँ ॥७॥

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८॥

तीक्ष्ण सोमरस, मधुररस के रूप में विभक्तधाराओं से गिरता हुआ, जिस समय इन्द्रदेव की देह में प्रविष्ट होता है, उस समय वैभव-सम्पन्न इन्द्रदेव सोमरस प्रदाता यजमान का विरोध नहीं करते, अपितु प्रचुर (पर्याप्त) मात्रा में सोमरस के प्रस्तुतकर्ता को (इच्छित) सम्पत्ति प्रदान करते हैं॥८॥

उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥९॥

जैसे पराजित जुआरी, विजयी जुआरी को खोजकर अपनी पिछली पराजय का बदला, उसे पराजित करके लेता है, वैसे इन्द्र भी अनिष्टकारी शत्रु के ऊपर पराक्रमी हमला करके उसे पराजित करते

हैं। जो साधक देवपूजन (यज्ञादि) में आर्थिक कंजूसी नहीं दिखाते, ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव उस साधक को धन-सम्पदा से सम्पन्न बनाते हैं॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

हे बहुसंख्यकों द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव ! आपकी कृपादृष्टि से हम गोधन द्वारा दुःख-दारिद्रयों से निवृत्त हो; जौ आदि अन्नों से क्षुधा को शान्त करें। हम शासनाध्यक्षों के साथ अग्रसर होते हुए अपनी सामर्थ्य-क्षमता से शत्रुओं की विपुल सम्पदाओं को अपने (आधिपत्य) में ले सकें॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

दुष्ट-पापी शत्रुओं से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम से, उत्तर से तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्वदिशा और मध्यभाग से आगमन करने वाले शत्रुओं से हमें संरक्षित करें । वे इन्द्रदेव सबके मित्र तथा हम भी उनके प्रिय सखा हैं, वे इन्द्रदेव हमारे अभीष्टों को सिद्ध करें॥११॥

सूक्त ४३

ऋषिः कृष्ण अंगिरस
देवता – इन्द्र । छंद – जगती, १०-११ त्रिष्टुप

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१॥

पवित्र, आत्मशक्ति की वृद्धि करने, एक साथ रहने तथा उन्नति की कामना करने वाली हमारी स्तुतियाँ ऐश्वर्यवान् इन्द्र को वैसे ही आवृत करती हैं, जैसे स्त्रियाँ आश्रय पाने के लिए अपने पति का आलिंगन करती है॥१॥

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२॥

हे असंख्यों द्वारा स्तुतियोग्य इन्द्रदेव ! आपको त्यागकर हमारा मन दूसरी और नहीं जाता। आप में ही हम अपनी आकांक्षाओं को

केन्द्रित करते हैं। जैसे राजा राजसिंहासन पर विराजमान होते हैं, वैसे ही आप कुशा के आसन पर प्रतिष्ठित हों । इस श्रेष्ठ सोमरस से आपके, पान करने की इच्छा की पूर्ति हो॥२॥

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इद्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३॥

हमें दुर्दशायुक्त कुमति तथा अन्नाभाव से संरक्षण प्रदान करने के लिए इन्द्रदेव हमारे चारों ओर विराजमान हों । ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ही सभी सम्पदाओं और धनों के अधिपति हैं । अभीष्टवर्धक और तेजस्वी इन्द्रदेव के निर्देशन में ही गंगादि सप्त सरिताएँ उस देश को अनादि से समृद्ध करती हैं॥३॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४॥

जिस प्रकार सुन्दर पत्तों का अवलम्बन पक्षी लेते हैं, उसी प्रकार पात्रों में विद्यमान हर्षदायक सोमरस इन्द्रदेव का आश्रय लेते हैं। सोमरस के प्रभाव एवं तेज से इन्द्रदेव का मुख तेजोमय होता है । इन्द्रदेव अपनी सर्वोत्तम तेजस्विता मनुष्यों को प्रदान करें॥४॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।

न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥५॥

जैसे जुआरी जुए के अड्डे पर अपने विजेता को खोजकर पराजित करता है, वैसे ही वैभवशाली इन्द्र जलवृष्टि अवरोधक सूर्य को पराजित करते हैं अर्थात् इन्द्रदेव सूर्य को जल बरसाने के लिए प्रेरित करते हैं । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! कोई भी पुरातन या नवीन (नूतन) मनुष्य आपके पराक्रम की बराबरी करने में सक्षम नहीं है ॥५॥

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६॥

अभीष्टदाता इन्द्रदेव सभी मनुष्यों में स्थित हैं । वे स्तोताओं की स्तुतियों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं। इन्द्रदेव जिस यजमान के सोमयाग में हर्षित होते हैं, वे यजमान तीक्ष्ण सोमरस द्वारा युद्धाभिलाषी रिपुओं को पराभूत करने में सक्षम होते हैं॥६॥

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

जिस प्रकार नदियों सागर की ओर स्वाभाविक रूप में प्रवाहित होती हैं तथा छोटे-छोटे नाले सरोवर की ओर बहते है, वैसे ही सोमरस भी सहज क्रम से इन्द्रदेव को प्राप्त होता है । जैसे दिव्य वृष्टि करने वाले

पर्जन्य जौ की कृषि को संवर्धित करते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव की महिमा को यज्ञस्थल में ज्ञानी लोग बढ़ाते हैं॥७॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८॥

जिस प्रकार क्रोधित बैल दूसरे बैल की ओर दौड़ते हैं, उसी प्रकार इन्द्रदेव क्रोधित होकर मेघ की ओर दौड़ते हैं, उन्हें तोड़कर अपने आश्रित वृष्टि से युक्त जल को हमारे लिए विमुक्त करते हैं। वे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव सोम अभिषवण कर्ता, दानी और हविष्यान्न समर्पित करने वाले यजमानों को तेजस्विता प्रदान करते हैं॥८॥

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९॥

इन्द्रदेव का वज्रास्त्र तेजस्विता के साथ प्रकट हो, पुरातनकाल के समान ही यज्ञ में स्तोत्रवाणी का प्रादुर्भाव हो। स्वयं देदीप्यमान इन्द्रदेव तेजस्विता से शोभायुक्त और पवित्र हों । सज्जनों के पालक इन्द्रदेव सूर्य के समान ही शुभ्रज्योति से प्रकाशमान हों॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

हे अनेकों द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव ! आपकी कृपा दृष्टि से हम गोधन द्वारा दुख-दारियों से निवृत्त हों। जौ आदि अन्नों से हम क्षुधा की आपूर्ति करें । शासनाध्यक्षों (सत्ताधीशों) के कृपापात्र बनकर अपनी सामर्थ्य से शत्रुओं की विपुल सम्पदाओं को हम अपने आधिपत्य में ले सकें॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

दुष्कर्मी पापियों से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम से, उत्तर से तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्व दिशा और मध्य भाग से आने वाले शत्रुओं से हमें बचायें। वे इन्द्रदेव सबके सखा हैं। हम भी उनके प्रति मित्रभावना को सुदृढ़ करें । वे इन्द्रदेव हमारे अभीष्टों को पूर्ण करें॥११॥

सूक्त ४४

ऋषि: कृष्ण अंगिरस
देवता – इन्द्र । छंद – जगती, १-३, १०-११ त्रिष्टुप

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१॥

जो इन्द्रदेव शारीरिक दृष्टि से स्थूल हैं और जो अपनी विशाल तथा पराक्रमी सामर्थ्य से सम्पूर्ण शक्तिशाली पदार्थों को शक्तिहीन कर देते हैं, वे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव रथारूढ़ होकर, यहाँ आकर हर्ष को प्राप्त करें॥१॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ्वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२॥

है मनुष्यों के पालक इन्द्रदेव ! आपका रथ उत्तम रीति से विनिर्मित है, आपके रथ के दोनों अश्व भली प्रकार से नियंत्रित हैं और आप हाथ में वज्रास्त्र को धारण किये हुए हैं । हे अधिपति इन्द्रदेव ! ऐसे सुशोभित आप श्रेष्ठ मार्ग से शीघ्रतापूर्वक हमारे समीप आएँ । आपके

सेवनार्थ सोमरस प्रस्तुत हैं, जिसे पिलाकर हम आपकी सामर्थ्य को संवर्धित करेंगे॥२॥

एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम् ।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥३॥

मनुष्यों के पालक, हाथ में वज्रधारण कर्ता, शत्रु सैन्यबल को क्षीण करने वाले, अभीष्टवर्षक तथा सत्यनिष्ठ वीर इन्द्रदेव के रथ के वाहक उग्र, बलिष्ठ तथा अति उत्साहित अश्व हमारे समीप लेकर आएँ॥३॥

एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्जः स्कम्भं धरुण आ वृषायसे ।
ओजः कृष्व सं गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! जिस सोमरस द्वारा शरीर परिपुष्ट होता है, जो कलश में मिश्रित होकर बल को संचारित करने वाला है, ऐसे सोमरस को आप अपने अन्दर समाहित करें तथा हमारी सामर्थ्य-शक्ति में वृद्धि करें। आप हमें अपना आत्मीयजन बना लें, क्योंकि आप ज्ञानशीलों की धन-सम्पदा को समृद्ध करने वाले हैं॥४॥

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! हम स्तोताओं को आप विपुल सम्पदा प्रदान करें, सोम से युक्त हमारे यज्ञ में शुभाशीर्वाद देते हुए आएँ, क्योंकि आप ही सबके स्वामी हैं। आप हमारे यज्ञ में कुशा के आसन पर विराजमान हों । आपके सेवनार्थ सज्जित सोमपात्र को कोई बलपूर्वक छीन सके, ऐसी सामर्थ्य किसी में नहीं है॥५॥

पृथक्प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! जो श्रेष्ठ लोग पुरातनकाल से ही देवताओं को आमन्त्रित करते रहे हैं, उन्होंने कीर्तिजनक तथा दुष्कर कार्यों को सम्पन्न करते हुए भिन्न-भिन्न देवलोकों को प्राप्त किया; परन्तु जो यज्ञ-उपासना रूपी नौका पर आरूढ़ न हो पाये, वे दुष्कृत्य रूपी पापों में फंसकर, ऋण-बोझ से दबकर दुर्गतिग्रस्त होकर पड़े रहते हैं॥६॥

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥

इस समय जो भी दुर्बुद्धिग्रस्त, यज्ञ विरोधी लोग हैं, जिनके (जीवन रूपी) रथ में पतन मार्ग में घसीटने वाले अश्व जोते गये हैं, वे अधोगामी होते हैं -नरकगामी होते हैं । जो मनुष्य पहले से ही देवताओं के निमित्त विष्यान्न समर्पित करने में संलग्न हैं, वे वास्तव में स्वर्गधाम को

प्राप्त करते हैं, जहाँ पर प्रचुर मात्रा में आश्चर्यप्रद उपभोग्य सामग्रियाँ उपलब्ध हैं॥७॥

गिरीँरज्रान्रेजमानाँ अधारयद्द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥८॥

जिस समय इन्द्रदेव सोमपान करके आनन्दित होते हैं, उस समय वे सब जगह घूमने वाले और काँपते हुए बादलों को सुस्थिर करते हैं। वे आकाश को विचलित कर देते हैं, जिससे वह गर्जना करने लगता है। जो द्युलोक और पृथ्वी आपस में सम्बद्ध हैं, उन्हें उसी स्थिति में धारण करते हुए वे उत्तम वचन उच्चारित करते हैं॥८॥

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥९॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपके इस श्रेष्ठ ढंग से बनाये गये अंकुश को हम धारण करते हैं । अंकुश रूपी स्तोत्रवाणी से हाथियों (दुष्टजनों) को दण्डित करते हुए, आप उन्हें अपने नियन्त्रण में रखते हैं। आप हमारे इस सोमयाग में पधारकर अपने स्थान पर प्रतिष्ठित हों। हे इन्द्रदेव ! आप श्रेष्ठरीति से सम्पन्न किये गये सोमयज्ञ में हमारी प्रार्थनाओं पर ध्यान दें॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

हे अनेकों के द्वारा आवाहनीय इन्द्रदेव ! आपकी कृपा दृष्टि से हम गोधन के द्वारा दुःख-दारिद्र्यों से निवृत्त हों तथा जौ आदि अन्नों से क्षुधा की पूर्ति करें। शासनाध्यक्षों के स्नेहपात्र बनकर अपनी क्षमता से शत्रुओं की विपुल सम्पदाओं को हम अपने आधिपत्य में ले सकें॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

दुष्कर्मी पापियों से बृहस्पतिदेव हमें पश्चिम से, उत्तर से तथा दक्षिण से संरक्षित करें । इन्द्रदेव पूर्वदिशा और मध्य भाग से प्रहारक शत्रुओं से हमें बचाएँ । इन्द्रदेव हमारे सखा हैं । हम भी उनके मित्र हैं। वे हमारे अभीष्ट की पूर्ति में सहायक हों॥११॥

सूक्त ४५

ऋषि: वत्स प्रिभ्रालन्दन:
देवता – अग्नि । छंद – त्रिष्टुप

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥१॥

सबसे पहले अग्निदेव आकाश मण्डल में विद्युत्रूप में प्रादुर्भूत हुए । उनका द्वितीय ज़न्मजातवेदा' (ज्ञानी) नाम से हमारे बीच पार्थिव रूप में प्रकट हुआ । तृतीय बड़वानल के रूप में समुद्री जल में वे उत्पन्न हुए । मनुष्यों के लिए कल्याणकारी अग्निदेव निरंतर प्रदीप्त रहते हैं। ध्यानपटु लोग उन्हीं अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं॥१॥

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ॥२॥

हे अग्निदेव ! हम आपके (उपर्युक्त) तीन प्रकार के स्वरूपों को जानते हैं । अनेक स्थानों में आपकी जो स्थिति है, उससे भी हम परिचित हैं। आपके जो अतिगूढ़ परमश्रेष्ठ नाम हैं, उनसे भी हम परिचित हैं।

आपको जो उत्पादन-स्थल है, उस कारणभूत स्थान से भी हम परिचित हैं॥२॥

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥३॥

हे अग्निदेव ! मनुष्यों के कल्याणकारी वरुणदेव ने आपको समुद्री जल के भीतर प्रज्वलित किया है। मनुष्यों के निरीक्षक सूर्यदेव आपको दिव्य स्थान (आकाश या यज्ञ) में प्रज्वलित करते हैं। आप अपने तृतीय स्थान मेघमण्डल में वृष्टि उत्पादक विद्युत् अग्नि के रूप में स्थित हैं। प्रधान देवगण स्तुतियों से आपके तेज़ को संवर्धित करते हैं॥३॥

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४॥

हे अग्निदेव ! आप आकाश में मेघों के मध्य विद्युत् के रूप में चमकते एवं गर्जना करते हुए पृथ्वी को गुंजायमान करते हैं। प्राण-पर्जन्य के रूप में वृक्ष-वनस्पतियों को अंकुरित करते हैं। आप शीघ्र उत्पन्न और प्रज्वलित होकर सभी को प्रकाशित करते हैं। पृथ्वी और द्युलोक के मध्य विद्युत् के रूप में सुशोभित होने वाले आप सभी के लिए स्तुत्य हैं॥४॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।

वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥५॥

उदार सम्पत्तिवान् , ऐश्वर्ग धारणकर्ता, मनीषियों के प्रेरक, सौम के संरक्षक, धन प्रदायक, बल के पुत्र, जल के स्वामी अग्निदेव उषाओं के अग्रभाग में प्रज्वलित होकर शोभायमान होते हैं॥५॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥६॥

सम्पूर्ण विश्व के प्रकाशक, जल के भीतर से उत्पन्न अग्निदेव प्रकट होते ही द्युलोक और भूलोक को संव्याप्त करते हैं । जिस समय पाँचों वर्गों के मनुष्य अग्निदेव की (यज्ञ द्वारा) अर्चना करते हैं, उस समय वे भली प्रकार सुदृढ़ पर्वत के समान बादलों का भेदन करके जल वृष्टि करते हैं॥६॥

उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥७॥

देखने में ज्योतिष्मान् अग्निदेव की दीप्ति महान् है । वे अदम्य प्राण युक्तं प्रकाश के साथ शोभायमान होते हैं। वे अन्न एवं वनस्पतियाँ पाकर अमर होते हैं । अग्नि के जन्मदाता द्युलोक की उत्पादक-शक्ति कितनी मनोरम है?॥७॥

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः ॥८॥

जिस प्रकार समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाले, तेजस्वी सूर्यदेव इस लोक में सहज दर्शनीय हैं तथा विभिन्न प्रकार से धन, ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए शोभायमान होते हैं, उसी प्रकार ये अग्निदेव श्रेष्ठ शक्ति-सम्पन्न, अमृत स्वरूप, दुःखनाशक तथा आयुष्य के संवर्द्धक हैं। देवताओं द्वारा इन्हें प्रकट किया गया है॥८॥

यस्ते अद्य कृणवद्भद्रशोचेऽपूपं देव घृतवन्तमग्ने ।
प्र तं नय प्रतरं वस्यो अच्छाभि सुम्नं देवभक्तं यविष्ठ ॥९॥

हे मंगलमय ज्योतिस्वरूप, (तरुण रूप) अग्निदेव ! जो यजमान आपके निमित्त घृतयुक्त पुरोड़ाश समर्पित करते हैं, ऐसे श्रेष्ठ याज्ञिक को आप श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करें । देवों के उपासक तथा हविष्य समर्पित करने वाले उस साधक को सभी प्रकार के सुख-सौभाग्य की ओर ले चलें॥९॥

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न उक्थउक्थ आ भज शस्यमाने ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवात्युज्जातेन भिनददुज्जनित्वैः ॥१०॥

हे अग्ने ! जब श्रेष्ठ अन्न द्वारा शास्त्रोक्त क्रियाकलाप सम्पादित होते हैं, उसी समय आप उस यजमान को श्रेष्ठ अभीष्टफल प्रदान करते हैं । स्तुति योग्य आप प्रत्येक उक्थ (स्तोत्र) में उन्हें अभीष्टफल प्रदान करें

। वे यजमान स्तुतिकर्ता सूर्य तथा अग्निदेव के प्रीतिपात्र हों । पुत्र-पौत्रादि सन्तानों के साथ वे शत्रुओं का संहार करें॥१०॥

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून्विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥११॥

हे अग्निदेव ! आपके साधक नित्य ही सभी प्रकार की श्रेष्ठतम पूजन-सामग्रियाँ आपके निमित्त समर्पित करते हैं। आपके साथ गोधन की आकांक्षा से प्रेरित देवस्वरूप ज्ञानियों ने गौओं से परिपूर्ण गोशाला का द्वार आपके लिए खोल दिया है॥११॥

अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१२॥

मनुष्यों में जिन अग्निदेव की सुन्दर आभा (ज्योति) स्थित है और जो सोम-संरक्षक हैं, उन्हीं अग्निदेव की ऋषयों द्वारा स्तुति की जाती हैं। विद्वेष भावना से रहित द्यावा-पृथिवीं का हम आवाहन करते हैं । हे देवगण ! हमें श्रेष्ठ वीर सन्तानों से युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें॥१२॥

सूक्त ४६

ऋषि: वत्स प्रिभ्रालन्दन:
देवता – अग्नि । छंद – त्रिष्टुप

प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्वा सीददपामुपस्थे ।
दधिर्यो धायि स ते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥१॥

जो समस्त मनुष्यों तथा मेघों के बीच विद्युत् के रूप में रहता है, वही यज्ञाग्नि के स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं । वे (यज्ञकुण्ड में) भली प्रकार प्रतिष्ठित अग्निदेव उपासकों को अन्न-धन देने वाले एवं शरीर के संरक्षक सिद्ध हों॥१॥

इमं विधन्तो अपां सधस्थे पशुं न नष्टं पदैरनु ग्मन् ।
गुहा चतन्तमुशिजो नमोभिरिच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् ॥२॥

जिस प्रकार चुराए हुए पशुओं को उनके पदचिह्नों के आधार पर खोज लिया जाता है, उसी प्रकार अप् तत्त्व (अथवा जल) के बीच गुह्य रूप में स्थित अग्नि को अनुसंधानरत, तपस्वी तथा ज्ञानवान् भृगुवंशियों ने स्तोत्रों से उपलब्ध किया॥२॥

इमं त्रितो भूर्यविन्ददिच्छन्वैभूवसो मूर्धन्यघ्न्यायाः ।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवा भवति रोचनस्य ॥३॥

महान् अग्निदेव के अभिलाषी विभूवसु के पुत्र त्रितऋषि ने उन्हें भूमि में उपलब्ध किया । सुखों को देने वाले अग्निदेव यजमानों के द्वारा यज्ञस्थल में प्रकट हुए। वे देव प्रकाशवान् पदार्थों (स्वर्गलोक) के नाभि रूप हैं॥३॥

मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम् ।
विशामकृण्वन्नरतिं पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु ॥४॥

आनन्दरूप, सभी के सुखदायक, अतिस्तुत्य, यजनीय, यज्ञ के प्रतिरूप, तीव्रगतिशील, पवित्रकर्ता, हविर्वाहक तथा मनुष्यों के श्रेष्ठ अधिपति जैसे गुणों से सुशोभित अग्निदेव को अभिलाषी ऋत्विग्गणों ने प्रार्थनाओं द्वारा हर्षित किया॥४॥

प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् ॥५॥

हे स्तोताओ ! शत्रुओं के विजेता महिमायुक्त तथा ज्ञानियों के धारणकर्ता अग्निदेव की स्तुति करने योग्य बनो । सभी ज्ञानी मनुष्य शत्रु नगरों के विनाशक, अरणिगर्भ रूप (अन्तर्भूत), प्रशंसनीय हरितकेश युक्त, तेजस्वी ज्चालायुक्त तथा स्तुतिप्रेमी अग्निदेव को

हविष्यान्न समर्पित करके अपने अभीष्ट फलों को उपलब्ध करते हैं॥५॥

नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन्परिवीतो योनौ सीददन्तः ।
अतः संगृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयते नॄन् ॥६॥

गार्हपत्यादि तीन रूप वाले, यज्ञमान के घरों को सुस्थिर करने वाले अग्निदेव लपटों से संव्याप्त होकर यज्ञस्थल में अपनी वेदिका पर प्रतिष्ठित होते हैं। अग्निदेव, प्रजाजनों द्वारा दी गई आहुतियाँ लेकर, यजमानों के निमित्त दानदाता बनकर तथा प्रजाजनों के लिए ही शत्रुओं को विनष्ट करते हुए, देवों के समीप जाते हैं॥६॥

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥७॥

यजमान-साधक अनेक अग्नियों से युक्त हैं । वे अग्निदेव जरारहित, शत्रुओं के दमनकर्ता, वन्दनीय, धूम्ररूपी ज्वालाओं से युक्त, पावनस्वरूप, उज्ज्वल वर्ण, शीघ्र सहायक, भरण-पोषणकर्ता, वन में आश्रित, वायु के समान उत्साहप्रद तथा सोम के समान फलदायी हैं॥७॥

प्र जिह्वया भरते वेपो अग्निः प्र वयुनानि चेतसा पृथिव्याः ।
तमायवः शुचयन्तं पावकं मन्द्रं होतारं दधिरे यजिष्ठम् ॥८॥

जो अग्निदेव ज्वालारूपी जिह्वा से अपने सुकर्मों का निर्वाह करते हैं और जो प्रकृति के संरक्षण के लिए अनुकूलता पूर्वक स्तोत्रों को धारण करते हैं, प्रगतिशील मनुष्य उन्हीं तेजस्वी, परमशोधक, स्तवनीय, होता तथा यजनीय अग्निदेव को प्रतिष्ठित करते हैं॥८॥

द्यावा यमग्निं पृथिवी जनिष्टामापस्त्वष्टा भृगवो यं सहोभिः ।
ईळेन्यं प्रथमं मातरिश्वा देवास्ततक्षुर्मनवे यजत्रम् ॥९॥

ये वही अग्निदेव हैं, जिन्हें द्यावा-पृथिवी ने प्रादुर्भूत किया, भृगुवंशियों ने जिन्हें स्तोत्र इत्यादि साधनों से उपलब्ध किया तथा त्वष्टादेव ने अप् में से जिन्हें उत्पन्न किया, मातरिश्वा वायु ने जिन्हें प्रमुख स्तुतियोग्य तथा अन्य सम्पूर्ण देवों ने मनुष्यों के यज्ञार्थ बिनिर्मित किया हैं॥९॥

यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन्यशसः सं हि पूर्वीः ॥१०॥

हे अग्निदेव ! आप हव्यवाहक हैं, देवताओं ने आपको धारण किया हुआ है । अभिलाषा युक्त मनुष्यों ने यज्ञीय कार्यों के लिए आपको स्वीकार किया है । हे अग्निदेव ! आप यज्ञ में हम स्तोताओं के लिए अन्नादि प्रदान करें। देवाराधक यजमान आपकी कृपा से यशस्वी बनते हैं॥१०॥

सूक्त ४७

ऋषि: सप्तगुरांगिरस:
देवता – वैकुंठ इन्द्र: । छंद – त्रिष्टुप

जगृभ्मा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥१॥

हे सम्पत्तिवान् – शूरवीर, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! ऐश्वर्य की कामना से हम आपके दाएँ हाथ का आश्रय लेते हैं। आप गौ (गौओं-इन्द्रियों अथवा किरणों) के स्वामी हैं। आप हमें चित्र-विचित्र कामनाओं को पूर्ण करने वाला धन-वैभव प्रदान करें॥१॥

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥२॥

सुन्दर वज्रादि अस्त्रों से युक्त, श्रेष्ठ संरक्षक, सुन्दर नेत्रों वाले, चारों समुद्रों को जल से परिपूर्ण करने वाले, धन-धारण कर्ता, बारम्बार

धनों के सम्पादनशील, स्तुत्य तथा दुःख-क्लेशों के निवारणकर्ता हे इन्द्रदेव ! आप हमें सुखदायक तथा विलक्षण ऐश्वर्य प्रदान करें॥२॥

सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥३॥

है इन्द्रदेव ! आपको हम स्तवनीय, देवाराधक, महान्, अति गम्भीर, सुविस्तृत, अतिज्ञानवान् , तेजस्वी और शत्रु- संहारक मानते हैं । आप हमें श्रेष्ठ और बलशाली सन्तानादि ऐश्वर्य प्रदान करें॥३॥

सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! हम अन्न-सम्पन्न, सर्वोत्तमज्ञानी, तारणकर्ता, ऐश्वर्यपूरक, उत्कर्षशाली, श्रेष्ठ शक्तिमान् शत्रु-संहारक, शत्रुनगरियों के विध्वंसक तथा सत्यकर्मनिष्ठ आपको स्वीकार करते हैं । आप हमें विलक्षण एवं कामनापूरक सन्तान सहित सम्पदा प्रदान करें॥४॥

अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपको अश्व सम्पन्न रथ एवं शूरवीर योद्धाओं से युक्त , सैकड़ों-हजारों गौओं अथवा सहायकों से युक्त, अन्नादियुक्त, हितैषी सेवकों से युक्त अतिश्रेष्ठ वीर तथा सर्वसुखदायक रूप में स्वीकार करते हैं। आप हमें अभीष्टपूरक एवं शक्तिशाली सन्ततियुक्त ऐश्वर्य प्रदान करें॥५॥

प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां बृहस्पतिं मतिरच्छा जिगाति ।
य आङ्गिरसो नमसोपसद्योऽस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥६॥

सत्यकर्म निष्ठ, श्रेष्ठ मेधावी, मंत्र विद्या के विशेषज्ञ (स्वामी) अंगिरावंशज मुझ सप्तगु को श्रेष्ठ सज्ञान-सम्पन्न सुमति उपलब्ध हो । मैं नमन करते हुए देवों के अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए उनके समीप ज्ञाता हूँ। आप हमारे लिए अद्भुत और अभीष्टपूरक सन्तानसहित ऐश्वर्य प्रदान करें॥६॥

वनीवानो मम दूतास इन्द्रं स्तोमाश्चरन्ति सुमतीरियानाः ।
हृदिस्पृशो मनसा वच्यमाना अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥७॥

सुन्दर, स्नेह भावनाओं से ओतप्रोत, सद्बुद्धि की अभिलाषा से प्रेरित होकर हमारी प्रार्थनाएँ दूतरूप में इन्द्रदेव के समीप जाएँ । ये प्रार्थनाएँ अन्त:स्पर्शी हैं, मनोयोगपूर्वक रचित हैं । आप हमें सुखदायक एवं आश्चर्ययुक्त ऐश्वर्य प्रदान करें॥७॥

यत्त्वा यामि दद्धि तन्न इन्द्र बृहन्तं क्षयमसमं जनानाम् ।
अभि तद्द्यावापृथिवी गृणीतामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारी अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करें । हमें निवास योग्य ऐसा विशाल गृह भी प्रदान करें , जो अद्वितीय हो, द्युलोक-पृथिवी लोक भी इस बात का अनुमोदन करें । आप हमें आश्चर्यप्रद, अभीष्टपूरक ऐश्वर्य प्रदान करें॥८॥

सूक्त ४८

ऋषि: वैकुंठ इन्द्र
देवता – इन्द्र । छंद – जगती, ७, १०-११ त्रिष्टुप

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः ।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥१॥

मैं इन्द्रदेव ही ऐश्वर्य का अधिपति हूँ तथा असंख्य शत्रुओं के धन पर एक साथ आधिपत्य करने में समर्थ हैं। जैसे पिता को पुत्र बुलाता है, वैसे ही सम्पूर्ण प्राणीं मेरा आवाहन करते हैं। दानी यजमान (हव्यादि दाता यजमान) को मैं अन्नादि सम्पदा प्रदान करता हूँ॥१॥

अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन्दधीचे मातरिश्वने ॥२॥

मैं (इन्द्र) ने (अथर्वण के पुत्र) आथर्वण दध्य ऋषि का शीश उतारा था (क्योंकि दध्य ने इन्द्र की अस्वीकृति पर भी गुप्त मधु विद्या को अश्विनीकुमारों को बताया) । सूखे कुएँ में पतित त्रित के संरक्षणार्थ

बादलों से जलवृष्टि की थी । शत्रुओं की धन-सम्पदा को ग्रहण किया तथा मातरिश्वा के पुत्र दधीचि के निमित्त जल को अवरुद्ध किए हुए बादलों को तोड़कर जलवृष्टि की॥२॥

महां त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥३॥

त्वष्टा देव ने मेरे निमित्त ही लोहे का वज्रास्त्र निर्मित किया, देव शक्तियाँ भी मेरे लिए ही यज्ञकर्म करती हैं। मेरी सैन्यशक्ति सूर्य के समान ही जीतने में दुष्कर है । वृत्र के संहार के कारण मेरे समीप सभी आगमन करते हैं॥३॥

अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ॥४॥

जिस समय यजमान लोग सोमरस एवं स्तवन वाणियों से मुझ (इन्द्रदेव) को सन्तुष्ट करते हैं, उस समय मैं शत्रुओं के अश्व, गौ, हविर्द्रव्य तथा दुधारू पशुओं को आयुधों से जीतता हूँ। दानी यजमान के शत्रुओं के संहार के लिए अपने अनेक शस्त्रों को तीक्ष्ण करता हूँ॥४॥

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥५॥

मैं इन्द्र ही सभी ऐश्वर्यों का स्वामी हूँ, मेरे ऐश्वर्यशाली प्रभुत्व को कोई प्रभावित नहीं कर सकता। मैं कभी भी मृत्यु के समक्ष पराजित नहीं होता (उनके साधक मृत्यु भय से मुक्त होते हैं), अतएव हे सोमाभिषव कर्ता यजमानो ! मनोवांछित तथा अभीष्टपूरक ऐश्वर्य की मुझसे कामना करो । हे मनुष्यो ! मेरे प्रति मित्र भावना को कभी क्षीण न होने दो॥५॥

अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ॥६॥

जो दीर्घश्वास युक्त दो-दो शत्रुओं के युग्म मुझ शस्त्रधारी इन्द्र के समक्ष युद्ध भावना से प्रेरित होकर प्रस्तुत हुए, जिन्होंने मुकाबले के लिए मुझे ललकारा, उन पर वाणी का कठोर प्रयोग करते हुए ऐसा प्रहार किया गया, जिससे वे परलोक सिधार गए। वे ही झुके, मैं किसी के समक्ष झुकने वाला नहीं हूँ॥६॥

अभीदमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान्प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥७॥

मैं (इन्द्र) एक शत्रु को परास्त करने में समर्थ हैं, दो असह्य शत्रुओं को भी परास्त करने के लिए समर्थ हैं। तथा तीन शत्रु भी मेरे मुकाबले कुछ नहीं हैं। जैसे कृषक धान मलने के समय सूखे पौधों को आसानी से मसल डालता है, वैसे ही मैं शत्रुओं को मसल डालता हूँ। मेरे विरोधी शत्रु मेरी (इन्द्र की निन्दा कैसे कर सकते हैं ?॥७॥

अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।
यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८॥

मैंने गुंगुओं के देश के संरक्षणार्थ अतिथिग्व के पुत्र दिवोदास को प्रजाजनों के बीच अन्न के समान संरक्षण के लिए स्थापित किया था। मैं गुंगुओं के शत्रुओं के संहारक तथा विपत्ति- निवारणकर्ता हूँ । पर्णय और करञ्ज नामक शत्रुओं के विध्वंस से समर भूमि में मेरी ख्याति हुई थी॥८॥

प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥९॥

मेरे स्तोता सबके लिए आश्रयभूत, अन्नसम्पन्न और उपभोग दाता हैं। मेरे साधक स्तोताओं को लोग गोदाता और हितैषी मित्र के रूप में स्वीकार करते हैं। मैं अपने भक्त साधक की विजयश्री के लिए

युद्धभूमि में आयुध धारण करता हूँ। स्तोताओं को मैं प्रसिद्धि प्रदान करता हूँ॥९॥

प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन्द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥१०॥

दो स्तोताओं में एक सोमयाग करते हैं, संरक्षक, पराक्रमी इन्द्रदेव ने इस स्तोता के लिए वज्र को धारण किया। तीखे तेज से युक्त सोम यज्ञ-सम्पादन कर्ता के साथ संघर्ष करने को प्रेरित हुए, परन्तु अँधेरे के बीच आबद्ध हो गए॥१०॥

आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ॥११॥

आदित्यगण, वसु, मरुद्गण और देवताओं के स्थानों को इन्द्रदेव नष्ट नहीं करते, वेदेवताहमारा मंगल करें, शक्ति-सामर्थ्य प्रदान करने की कृपा करें। उन्होंने हमें अपराजेय, साहसी तथा सुदृढ़ बनाया है॥११॥

सूक्त ४९

ऋषि: वैकुंठ इन्द्र
देवता – इन्द्र । छंद – जगती, २, ११ त्रिष्टुप

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।
अहं भुवं यजमानस्य चोदितायज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ॥१॥

मैं (इन्द्र) स्तोत्रकर्ता को सनातन वैभव और आश्रय प्रदान करता हूँ । यज्ञीय अनुष्ठान मेरे उत्कर्ष के लिए हैं। मेरे लिए हविष्यान्न समर्पित करने वाले यजमान के ऐश्वर्य को, मैं प्रेरित करता हूँ तथा यज्ञीय कर्मों से विहीन को पराभूत करता हूँ॥१॥

मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः ।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे ॥२॥

द्युलोक, भूलोक तथा अन्तरिक्ष में उत्पन्न सभी प्राणधारी एवं देवगण मुझे उपास्य मानते हैं। संग्राम में जाने के लिए मैं हरिसंज्ञक, शक्तिशाली, विविधकर्मा तथा शीघ्रगामी, अश्वों को रथ के साथ

नियोजित करता हूँ। पराक्रमी शत्रुओं को परास्त करने वाले वज्रास्त्र को शक्ति-साधन के रूप में धारण करता हूँ॥२॥

अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैरहं कुत्समावमाभिरूतिभिः ।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ॥३॥

मैं (इन्द्र) ने उशना ऋषि के संरक्षणार्थ अत्क नामक शत्रु को प्रताड़ित किया। अनेक संरक्षण व्यवस्थाएँ जुटाकर मैंने कुत्स को संरक्षित किया। मैंने शत्रु शुष्ण के संहार के लिए वज्रास्त्र धारण किया। दस्युओं को मैं आर्य नहीं कहता॥३॥

अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम् ।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्र यद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ॥४॥

मैंने पिता के समान वेतसु नामक जनपद को तथा तुम और स्मदिभ को भी ऋषिकुत्स के नियन्त्रण में किया था ।यजमान को मैं श्री-सम्पन्न करता हूँ पिता की तरह भक्तों को शत्रुओं से रक्षित करके उनका हित करता हूँ॥४॥

अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक् ।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकरमहं सव्याय पड्गृभिमरन्धयम् ॥५॥

मैंने उस समय श्रुतर्वा ऋषि के लिए मृगय राक्षस को नियन्त्रण में किया था, जब वे मेरी ओर आये तथा स्तुति प्रार्थना अर्पित की। मैंने ही आयु के अधीनस्थ वेश को तथा सव्य के अधीनस्थ पड्गृभि को किया था॥५॥

अहं स यो नववास्त्वं बृहद्रथं सं वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम् ।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्दूरे पारे रजसो रोचनाकरम् ॥६॥

मैंने वृत्रसंहार के समान ही नववास्त्व तथा बृहद्रथ का संहार किया। उस समय ये दोनों राक्षस उत्कर्षयुक्त और सुविख्यात थे। इन दोनों को मैंने कान्तिवान् विश्व से निष्कासित कर दिया॥६॥

अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा ।
यन्मा सावो मनुष आह निर्णिज ऋधक्कृषे दासं कृत्व्यं हथैः ॥७॥

तीव गमनशील अश्वों द्वारा वहन किया जाकर मैं अपनी तेजस्विता से सूर्य के चारों ओर घूमता हूँ। जिस समय सोम का अभिषवकर्ता यजमान मेरा आवाहन करते हैं, उस समय हिंसक रिपुओं को तेज धार युक्त अस्त्रों से विनष्ट करता हूँ॥७॥

अहं सप्तहा नहुषो नहुष्टरः प्राश्रावयं शवसा तुर्वशं यदुम् ।
अहं न्यन्यं सहसा सहस्करं नव व्राधतो नवतिं च वक्षयम् ॥८॥

मैं सात रिपु-नगरियों को विध्वंस करने वाला हूँ, महाबली मानकर तुर्दश और यदु को मैंने सुप्रसिद्ध किया। मैं ही अति विशाल (सर्वप्रथम) बन्धनकर्ता हैं। दूसरे स्तोताओं को भी मैंने शक्तिशाली बनाया तथा शत्रु की निन्यानवे नगरियों को विध्वंस किया॥८॥

अहं सप्त स्रवतो धारयं वृषा द्रविल्वः पृथिव्यां सीरा अधि ।
अहमर्णांसि वि तिरामि सुक्रतुर्युधा विदं मनवे गातुमिष्टये ॥९॥

जलवर्षक मैं (इन्द्र) प्रवाहशील सात सरिताओं का धारणकर्ता हैं । पृथ्वी पर प्रवाहित तथा वेगवान् सरिताओं को मैं ही सुशोभित करता हूँ मैं मनुष्य को अभीष्ट फल देने के लिए युद्ध करके उनका मार्ग प्रशस्त करता हूँ॥९॥

अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् ॥१०॥

गौओं के स्तनों में प्रशंसनीय, उज्ज्वल और मधुर दूध धारण कराने वाला मैं ही हूँ। कोई अन्य देवता या त्वष्टा देव भी इस कार्य में सक्षम नहीं हैं। वे (स्तन) नदी जल के समान ही दूध को वहन करते हैं । सोम के साथ मिश्रित किये जाने पर दूध सबके लिये उपयोगी हो जाता है॥१०॥

एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन्प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत्ता ते हरिवः शचीवोऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ॥११॥

इस प्रकार अपनी प्रभावक्षमता से ऐश्वर्यवान् और सत्यधनीं मैं (इन्द्र) देवों और मनुष्यों को सौभाग्ययुक्त करती हैं। हे विविध कर्मकर्ता और अश्व-अधिपति इन्द्रदेव ! आपके कार्य स्वनियंत्रित हैं। अति प्रोत्साहित ऋत्विग्गण आपके उन क्रियाकलापों को प्रशंसित करते हैं॥११॥

सूक्त ५०

ऋषिः वैकुंठ इन्द्र
देवता – इन्द्र । छंद – जगती, ३,४ अभिसारिणी , ५ त्रिष्टुप

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥१॥

हे अंत्वजो ! सम्पूर्ण विश्व के उत्पादक, मनुष्यों के लिए अन्नदाता, महान् आनन्द प्रदायक, उन इन्द्रदेव की अर्चना करो, जिन इन्द्रदेव को द्यावा और पृथिवी भी उत्तम यज्ञ, संघर्षशक्ति, महान् यश और धन आदि पदार्थ प्रदान करके पूजते हैं॥१॥

सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुतश्चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे ।
विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्वभि शूर मन्दसे ॥२॥

इन्द्रदेव मित्र के समान मनुष्यों के हितचिन्तक, सबके स्तुतियोग्य तथा सर्व अधिपति हैं। हमारे सदृश मनुष्यों के वही उपास्य देव हैं । हे

सज्जनों के संरक्षक वीर इन्द्रदेव ! आप ही श्रेष्ठ कार्यों, पराक्रमों तथा बादलों से जल वृष्टि के लिए स्तुति करने योग्य हैं॥२॥

के ते नर इन्द्र ये त इषे ये ते सुम्नं सधन्यमियक्षान् ।
के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपसे अन्न, धन और सुख-सम्पत्ति उपलब्ध करने के सत्पात्र कौन हैं? वे कौन हैं, जो आपको असुरता की संहारक सामर्थ्य उपलब्ध करने के लिए सोमपान करने को प्रेरित करते हैं? वे सत्पत्र साधक कौन हैं, जो अपनी उपजाऊ भूमि में जलवृष्टि और पराक्रमी सामर्थ्य पाने के लिए सोमरस समर्पित करते हैं?॥३॥

भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
भुवो नॄँश्च्यौत्नो विश्वस्मिन्भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ॥४॥

हे इन्द्र ! आप हमारे यज्ञीय सत्कर्मों से महिमामय हुए हैं। सभी यज्ञीय कार्यों में आप ही यजनयोग्य हैं। आप संग्रामों में प्रमुख शत्रुओं के संहारक रहे हैं । हे सर्वद्रष्टा इन्द्र ! आप सर्वोत्तम और सुयोग्य परामर्शदाता हैं॥४॥

अवा नु कं ज्यायान्यज्ञवनसो महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः ।
असो नु कमजरो वर्धाश्च विश्वेदेता सवना तूतुमा कृषे ॥५॥

है इन्द्रदेव ! आप सर्वोत्तम होते हुए यज्ञ-सम्पादक यजमानों की शीघ्र सुरक्षा करें । सभी मनुष्य आपकी महती संरक्षण- शक्ति से परिचित हैं। आपका उत्कर्ष बढ़े तथा इस सोमयाग को आप शीघ्र सम्पन्न करें॥५॥

एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे ।
वराय ते पात्रं धर्मणे तना यज्ञो मन्त्रो ब्रह्मोद्यतं वचः ॥६॥

हे शक्तिशाली इन्द्रदेव आप जिन सोमयज्ञों को धारण करते हैं, उन्हें शीघ्रतापूर्वक सम्पन्न करते हैं। आपको शत्रु- संहारक संरक्षण बल हमारी सुरक्षा करे । हमारे धन का सदुपयोग धर्म – जागरण के लिए हों। ये यज्ञ और मंत्र आपके लिए ही समर्पित हों तथा श्रेष्उ त्तम यह पावन वाणी आपके निमित्त ही उच्चारित हो॥६॥

ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां च वसुनश्च दावने ।
प्र ते सुम्नस्य मनसा पथा भुवन्मदे सुतस्य सोम्यस्यान्धसः ॥७॥

है मेधा सम्पन्न इन्द्रदेव ! जो स्तोता इकट्ठे (संघबद्ध होकरं सोम अभिषव करते हैं तथा जो विविध प्रकार के ऐश्वर्य और लाभ की कामना से दान द्वारा आपकी अर्चना करते हैं, वे अभिषुत सोम से

आनन्दित होते हैं, तब वे सुख- सौभाग्य पाने के लिए आन्तरिक रूप से आपके मार्गदर्शन में ही श्रेष्ठपद् प्राप्ति के अधिकारी हों॥७॥

सूक्त ५१

ऋषि: १,३,५,७,९ देवा:, २,४,६,८ सौचीकोऽग्नि
देवता – २,४,६,८, देवा, १,३,५,७,९ अग्नि । छंद – त्रिष्टुप

महत्तदुल्बं स्थविरं तदासीद्येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः ।
विश्वा अपश्यद्बहुधा ते अग्ने जातवेदस्तन्वो देव एकः ॥१॥

हे अग्निदेव ! आपका वह आच्छादन अति विशाल तथा स्थूल था, जिससे घिरे हुए होकर आप अपूतत्त्व (या जल) में स्थित थे । हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आपके सभी अंगों को अनेक विधियों से एक देवता ने देखा॥१॥

को मा ददर्श कतमः स देवो यो मे तन्वो बहुधा पर्यपश्यत् ।
क्वाह मित्रावरुणा क्षियन्त्यग्नेर्विश्वाः समिधो देवयानीः ॥२॥

(अग्निदेव का कथन) वे देव कौन थे, जिन्होंने विविध प्रकार से मेरे (अग्नि के) रहस्यमय स्वरूप को देखा था? हे मित्र और वरुणदेवो !

अग्निदेव के वे सम्पूर्ण प्रज्वलित देवयान साधन रूप मार्ग कहाँ पर विद्यमान हैं ? इसे बताने की कृपा करें॥२॥

ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु ।
तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् ॥३॥

(देवों का कथन) हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! जल और ओषधि तत्त्वों में अनेक प्रकार से आप सन्निहित हैं, उनमें हम आपको खोजते हैं। हे विलक्षण कान्ति से युक्त अग्निदेव ! इस प्रकार से विद्यमान आपका यमदेव ने परिचय प्राप्त किया । दस रहस्यमय गुह्य आश्रय स्थलों में विद्यमान आप अति तेजस्वी हैं॥३॥

होत्रादहं वरुण बिभ्यदायं नेदेव मा युनजन्नत्र देवाः ।
तस्य मे तन्वो बहुधा निविष्टा एतमर्थं न चिकेताहमग्निः ॥४॥

(अग्निदेव का कथन) हे वरुणदेव ! मैं (अग्नि) यजन कार्य से भयभीत होकर यहाँ आ गया हूँ । मुझे इस प्रकार के कार्य में देवगण उपयोग न करें, ऐसी मेरी अभिलाषा है । अतएव मैंने अपने स्वरूप को विभिन्न प्रकार से जल में छिपाया है। मैं इस कार्य का इच्छुक नहीं हूँ॥४॥

एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामोऽरंकृत्या तमसि क्षेष्यग्ने ।
सुगान्पथः कृणुहि देवयानान्वह हव्यानि सुमनस्यमानः ॥५॥

(देवों का कथन है अरने ! देवपूजक, मनस्वी-साधक यज्ञ को सम्पादित करने के अभिलाषी हैं। अत: आप आएँ। आप स्वयं तेजोमय होकर भी तमस् (अन्धकार) को आश्रय दिये हुए हैं । आप यहाँ आकर देवों के प्रति हविष्य पदार्थ ले जाने वाले मार्गों को हमारे लिए सरल बनाएँ ।आप हर्षित होकर हमारे हविष्य को धारण करें॥५॥

अग्नेः पूर्वे भ्रातरो अर्थमेतं रथीवाध्वानमन्वावरीवुः ।
तस्माद्भिया वरुण दूरमायं गौरो न क्षेप्नोरविजे ज्यायाः ॥६॥

(अग्निदेव का कथन) हे देवगण ! जिस प्रकार रथी मार्ग से गमन करते हुए लक्ष्य तक पहुँचता है, वैसे ही हमारे तीन ज्येष्ठ भ्राता (भूपति, भुवनपति और भूतपति) इस यजन कार्य को करते हुए मृत्यु को प्राप्त हुए हैं । हे वरुणदेव ! इसी भय से चिन्तित होकर मैं (अग्नि) सुदूर चला आया हूँ । धनुर्धारी की प्रत्यञ्चा से जिस प्रकार हरिण भयभीत होता है, उसी प्रकार मैं भी इस यजन कार्य से भयभीत हूँ॥६॥

कुर्मस्त आयुरजरं यदग्ने यथा युक्तो जातवेदो न रिष्याः ।
अथा वहासि सुमनस्यमानो भागं देवेभ्यो हविषः सुजात ॥७॥

(देवों का कथन) हे अग्निदेव ! हम आपको अमरतापूर्ण (अविनाशी या जरारहित) आयुष्य प्रदान करते हैं । हे सर्वज्ञ ! आप इस आधार पर अनश्वर रहेंगे। हे सुजन्मा अग्ने ! अब आप प्रसन्नचित्त होकर देवों के पास हव्य पहुँचाएँ॥७॥

प्रयाजान्मे अनुयाजाँश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ॥८॥

(अग्निदेव का कथन) हे देवगण ! यज्ञ के प्रयाज (प्रथम हविर्भाग) और अनुयाज (शेष हविर्भाग) तथा हवि के परिपुष्ट विपुल भाग को मुझे प्रदान करें । जल का सारतत्त्व घृत, ओषधि से उत्पादित प्रमुख भाग तथा दीर्घायु मुझे प्रदान करें॥८॥

तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञोऽयमस्तु सर्वस्तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः ॥९॥

(देवों का कथन) हे अग्ने ! प्रयाज, अनुयाज, विपुल तथा असाधारण हविष्य भाग आपको प्राप्त होंगे। यह यज्ञ भी आपके लिए ही समर्पित हो । चारों दिशाएँ आपके समक्ष नतमस्तक होकर आपका सम्मान करें॥९॥

सूक्त ५२

ऋषि: सौचीकोऽग्नि
देवता – विश्वे देवा । छंद – त्रिष्टुप

विश्वे देवाः शास्तन मा यथेह होता वृतो मनवै यन्निषद्य ।
प्र मे ब्रूत भागधेयं यथा वो येन पथा हव्यमा वो वहानि ॥१॥

हे देवो ! आपने हमें विवाक के रूप में धारण किया है, मनुष्यों के लिए देवों की प्रार्थना कर सकें, ऐसा मार्गदर्शन प्रदान करें । हमारे हिस्से कौन से हैं तथा आपके हिस्से कौन से हैं, यह हमें बताएँ । जिस मार्ग से आपके लिए यज्ञीय पदार्थ में लेकर जाना है, वह भी बताएँ, जिससे मैं (अग्नि) आपके कथनानुसार अनुगमन करू ॥१॥

अहं होता न्यसीदं यजीयान्विश्वे देवा मरुतो मा जुनन्ति ।
अहरहरश्विनाध्वर्यवं वां ब्रह्मा समिद्भवति साहुतिर्वाम् ॥२॥

श्रेष्ठ यज्ञ-सम्पादक होता रूप में यज्ञीय कार्य हेतु मैं यहाँ स्थित हैं, सम्पूर्ण देवता और मरुद्गण भी हवि वहन करने के लिए मुझे प्रेरित

करते हैं। हे अश्विनीकुमारो! आपको ऋत्विज् के कार्य प्रतिदिन वहन करने पड़ते हैं। कान्तिमान् सोम स्तोत्र स्वरूप है, वही हमारी सोम आहुति आपको समर्पित हो॥२॥

अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः।
अहरहर्जायते मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥३॥

यह जो होता है, उसका क्या कार्य है ? होता यजमान के जिस हविर्द्रव्य का यजन करते हैं, उसका भाग देवों को मिलता है। (सूर्यरूप से) प्रतिदिन उज्वल रूप में (चन्द्रमा रूप से) प्रतिमास जो प्रकट होते हैं, उन अग्निदेव को देवताओं ने हविवाहक रूप में धारण किया है॥३॥

मां देवा दधिरे हव्यवाहमपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम्।
अग्निर्विद्वान्यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ॥४॥

मैं (अग्नि) सम्पूर्ण जगत् से लुप्त हो गया था, अनेक तरह से कठिन व्रतों का पालन करने वाले देवों ने मुझे हविवाहक के रूप में नियुक्त किया है। ज्ञानवान् अग्निदेव हमारे यज्ञ को सम्पादित करते हैं, यह यज्ञ पाँच मार्गों से गमनीय हैं, उसमें तीन प्रकार से सोम का अभिषवण किया जाता है तथा सात छन्दों में स्तवन किये जाते हैं॥४॥

आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः कराणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेयामथेमा विश्वाः पृतना जयाति ॥५॥

हे देवगण ! मैं (अग्नि) आपकी हविरूप से सेवा करता हूँ, अतएव आपसे अमरता तथा वीर सन्तान के लिए प्रार्थना करता हूँ। मैं हीं इन्द्रदेव के दोनों हाथों में वज्रास्त्र सौंपता हैं, इससे ही वे इन सभी शत्रुसेनाओं पर विजय प्राप्त करते हैं ॥५॥

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥६॥

तीन हजार तीन सौ उनचालीस देवशक्तियाँ अग्निदेव की ही सेवा-साधना करती हैं। अग्निदेव को घृताहुतियों से अभिषिक्त किया जाता है, उनके लिए कुशाओं के आसन बिछाए गये हैं तथा होता के रूप में उन्हें यज्ञ में प्रतिष्ठित किया गया है॥६॥

सूक्त ५३

ऋषि: देवा, ४-५ सौचीकोऽग्नि
देवता – अग्नि, ४-५ देवा । छंद – १-५, ८ त्रिष्टुप, ६-७, ९-११ जगती

यमैच्छाम मनसा सोऽयमागाद्यज्ञस्य विद्वान्परुषश्चिकित्वान् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्नि हि षत्सदन्तरः पूर्वो अस्मत् ॥१॥

मानसिक रूप से जिन अग्निदेव की हम कामना करते हैं, वे यज्ञ के अंग – उपांगों को जानने वाले ज्ञानवान् अग्निदेव पधार रहे हैं । वे अतिपूजनीय अग्निदेव देवताओं की प्राप्ति के निमित्त किये गये हमारे यज्ञ को यजन करें और यजन योग्य देवताओं के बीच हमसे पूर्व ही वेदी पर प्रतिष्ठित हों॥१॥

अराधि होता निषदा यजीयानभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यत् ।
यजामहै यज्ञियान्हन्त देवाँ ईळामहा ईड्याँ आज्येन ॥२॥

यज्ञ को श्रेष्ठ रीति से सम्पादित करने वाले होता रूप अग्निदेव यज्ञस्थल में प्रतिष्ठित होकर हव्यवाहक हुए हैं, वे चरु, पुरोडाश आदि सामग्री का श्रेष्ठ रीति से निरीक्षण कर रहे हैं, जिससे यजनीय देवों को शीघ्रता से घृताहुति से संतुष्ट किया जा सके तथा स्तवनीय देवों का स्तोत्रवाणियों द्वारा स्तवन किया जा सके, यही उनकी कामना है॥२॥

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥३॥

हमारे यज्ञ में देवों के आवाहन (लाने वाला) का जो प्रमुख अंग है, उसे अग्निदेव हीं सुसम्पन्न करें । अग्निरूप यज्ञ की गूढ़ जिह्वा (अग्नि की ज्वाला) को हम उपलब्ध कर चुके हैं। वे अग्निदेव सुगन्धित रूप तथा दीर्घायुष्य धारण करके हमारे यहाँ उपस्थित हुए हैं। देवों के आवाहन रूप यज्ञ को अग्निदेव ने पूर्ण किया॥३॥

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम ।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ॥४॥

हम आज उन सर्वश्रेष्ठ वचनों का उच्चारण करते हैं, जिनके उच्चारण से हम राक्षसों को पराभूत करने में सक्षम हों । हे अन्नभक्षक,यजनीय देव ! है मनुष्यादिपञ्चजनो ! आप सभी हमारे यज्ञको स्वीकार करें॥४॥

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥५॥

जो पृथ्वी में उत्पादित अथवा हव्यादि के लिए उत्पन्न और यजन योग्य हैं, वे सभी पाँचों जन (पाँचों वर्ण) हमारे यज्ञ को ग्रहण करें । पृथ्वी हमारे पार्थिव पापों से हमें बचाए तथा अन्तरिक्ष आकाश से सम्बन्धित (शब्दादि से प्रकट) पाप कृत्यों से हमें संरक्षित करे॥५॥

तन्तुं तन्वत्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥६॥

हे अग्निदेव ! आप यज्ञ को विस्तृत (व्यापक) करते हुए लोक के प्रकाशक सूर्यदेव का अनुगमन करें । सत्कर्मों द्वारा ज्योतिर्मय देवमार्गों(देवयानों) को सुरक्षित करें तथा स्तोताओं को सुखदायी बनाएँ । हे अग्निदेव ! आष प्रशंसनीय बनकर मनुष्यों को देवोपासना की ओर प्रेरित करें अर्थात् देवों को यज्ञ की ओर प्रेरित करें॥६॥

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।
अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥७॥

हे सोमेच्छुक देवगण ! आप रथ में योजित करने योग्य घोड़ों को उससे जोतें । उनकी लगामों को ठीक करें तथा घोड़ों को सुसज्जित करें । आठ सारथियों के बैठने योग्य सूर्यरथ के साथ आप यज्ञ में पधारें । इसी रथ से देवता हमें ले जायेंगे॥७॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥८॥

अश्मन्वती नाम की नदी प्रवाहित हो रही है, (उद्देश्य प्राप्ति के लिए संगठित होकर उठे और उसे पार करें । हे मित्रगण ! जो हमारे लिए कष्टदायी हैं, उनका हम यहीं परित्याग करते हैं, नदी को पार करके हम सुखदायक अन्नों को उपलब्ध करेंगे॥८॥

त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शंतमा ।
शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः ॥९॥

त्वष्टादेव (देवों के शिल्पी) पात्रों की निर्माण कला के विशेषज्ञ हैं, उन्हीं ने देवताओं के निमित्त कलापूर्ण सुन्दर (सोम) पान-पात्र तैयार किये हैं। अभी वे लोहे से विनिर्मित परशु (कुटार) को तेजधारा युक्त करते हैं, जिससे वे ब्रह्मणस्पति पात्र निर्माण योग्य काष्ठ को काटते हैं॥९॥

सतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः ॥१०॥

हे क्रान्तदर्शियो ! जिन कुठारास्त्रों से अमृत-पान (अमरत्व की प्राप्ति के लिए पात्र विनिर्मित करते हो, उन्हें उचित रीति से तेज़ करो। हे ज्ञानियो ! ऐसे रहस्यमय (गोपनीय) वासस्थलों को निर्मित करो, जिससे । जहाँ से देवताओं ने अमरता को प्राप्त किया था॥१०॥

गर्भे योषामदधुर्वत्समासन्यपीच्येन मनसोत जिह्वया ।
स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिषासनिर्वनते कार इज्जितिम् ॥११॥

नारी के गर्भ में वत्स की भाँति, मानसिक भावों को (परिपक्व करके) मुख में स्थित जिह्वा से (वाणी के रूप में) व्यक्त करने वाला, श्रेष्ठ मन से प्रतिदिन देव समूह को स्तोत्र प्रदान करने वाला साधक (जीवन-संग्राम में) विजयी होता है॥११॥

सूक्त ५४

ऋषिः बृहदुक्थो वामदेव्य
देवता – इन्द्र। छंद – त्रिष्टुप

तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्त्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥१॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आपकी उस अलौकिक महिमायुक्त यशस्विता का हम भली प्रकार से गुणगान करते हैं। जिस समय राक्षसी भय से आतंकित द्यावा-पृथिवी ने आपको आवाहित किया, उस समय आपने यहाँ के निवासी देवताओं को संरक्षित किया । आपने असुरों का विनाश किया तथा यजमान स्वरूप प्रजाजनों को आश्वस्त किया, जिसका हम वर्णन करते हैं॥१॥

यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! यशस्वी स्तोत्रों से अपने स्वरूप को विस्तारित करके तथा अपने पराक्रमी प्रभुत्व को स्थापित करकै, जो आप विचरण करते हैं, वे आपकी कृतियाँ माया रूप ही हैं। पुरातन श्रेष आपके शत्रु-संहारक नानाविध संग्रामों का वर्णन करते हैं, वे भी मायावी ही हैं, क्योंकि न तो अभी (वर्तमान में) ही कोई आपका बैरी है, न प्राचीन समय में ऐसा था॥२॥

क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी सम्पूर्ण महिमा की सीमा हमसे पहले कौन-कौन से ऋषियों ने उपलब्ध की थी ? क्योंकि आप अपने माता-पिता (द्यावा-पृथिवी) को एक साथ ही (संयुक्त रूप में) अपनी देह से उत्पन्न करते हैं॥३॥

चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥४॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! आपके अतिस्तुत्य (पूजनीय) चार शरीर (रूप) हैं, जो राक्षसों के संहारक और जरारहित हैं। हे मित्ररूप इन्द्रदेव ! आप उन स्वरूपों से परिचित हैं, जिनसे सभी महान् कार्यों (पराक्रमों) को आप सम्पादित करते हैं॥४॥

त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि ।
काममिन्मे मघवन्मा वि तारीस्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता ॥५॥

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप सम्पूर्ण असाधारण और रहस्यमय (छिपी हुई) दोनों प्रकार की सम्पदाओं को अपने में स्थापित करते हैं । अतएव आप हमारी शुभाकांक्षाओं को विनष्ट न करें । आप हमें अभीष्ट ऐश्वर्य प्रदान करें, क्योंकि आप स्वयमेव दातारूप हैं ॥५॥

यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना सं मधूनि ।
अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ॥६॥

जिसने सूर्यादि ज्योतियों में ज्योति रूप तेज को स्थापित किया है, जिसने मधुर रसों से युक्त सोमादि रसों का सृजन किया है, इस प्रकार के उन इन्द्रदेव के निमित्त बृहदुक्थ (मन्त्रों के निर्माणकर्ता ऋषि } ने अतिप्रिय बलवर्द्धक स्तोत्र कहा॥६॥

सूक्त ५५

ऋषिः बृहदुक्थो वामदेव्य
देवता – इन्द्र। छंद – त्रिष्टुप

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैर्यत्त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान्मघवन्तित्विषाणः ॥१॥

जब भयभीत (अस्तित्व में आने पर द्यावा-पृथिवी ने) आप (इन्द्र) को पुकारा, तब आपने पृथ्वी और आकाश को अधर में ही थाम लिया । हे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप भरण-पोषण कर्ता (पर्जन्य) के पुत्रों (मेघ – जल आदि) को विद्युत् से प्रकाशित करते हैं। आपका यह नाम (प्रभाव) आपसे विमुख रहने वालों के लिए छिपा (अव्यक्त) ही रहता है॥१॥

महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च ॥२॥

आपका सभी स्थानों में संव्याप्त अतिगुप्त (अन्यों से अनभिज्ञ) प्रशंसनीय, जो नाम (प्रभाव या शरीर) है, जिससे आप भूत और भविष्य को उत्पादित करते हैं, जिससे अति पुरातन और प्रिय लगने वाले ज्योति स्वरूप (सूर्यादि) प्रकट हुए। उस प्रिय ज्योति को प्राप्त करके पञ्चजन (चारों वर्ण और निषाद) हर्षित होते हैं॥२॥

आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥३॥

इन्द्रदेव अपने तेज से द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष को संव्याप्त करते हैं। उसी प्रकार वे समय-समय पर पञ्चदेवों (देव, मनुष्य, पितर, असुर और राक्षस) और सात तत्त्वों (साः, मरुद्गण, सात सूर्य किरणें, सात लोकादि) को प्रकाशित करते हैं। वे नानाविध कर्मों के निर्वाहक चौंतीस प्रकार के देवों (आठ वसु, बारह आदित्य, ग्यारह रुद्र, प्रजापति, वषट्कार और विराटादि) के समान रूप और तेज से विविध प्रकार से दृश्यमान होते हैं॥३॥

यदुष औच्छः प्रथमा विभानामजनयो येन पुष्टस्य पुष्टम् ।
यत्ते जामित्वमवरं परस्या महन्महत्या असुरत्वमेकम् ॥४॥

हे देवि उषा ! आप प्रकाश के क्रम में सबसे पहले उदीयमान होतीं और तेजस्वियों में अति तेजस्वी (सूर्य) को प्रकाशित करती हैं। आप ऊर्ध्व लोकनिवासिनी हैं; किन्तु निम्नस्थ पृथ्वीलोक के निवासी मनुष्यों के साथ भी आपका मातृवत् सम्बन्ध है । इस प्रकार महान् (आप) से महान् बल का प्रादुर्भाव हुआ है॥४॥

विधुं दद्राणं समने बहूनां युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वाद्या ममार स ह्यः समान ॥५॥

युद्ध में शौर्य प्रदर्शित करके शत्रुसेना को खदेड़ देने वाले बलशाली इन्द्रदेव के प्रभाव से श्वेतकेश (शक्तिहीन) वृद्ध भी स्फूर्तिवान् हो जाता है । हे स्तोताओ ! महान् इन्द्रदेव के पराक्रम का विवेचन करने वाले विचित्र काव्य को देखो, जो आज (उच्चारण के बाद) समाप्त हो जाने पर भी (भविष्य में नवीन मंत्रों के रूप में) पुनः प्रकट होता है॥५॥

शाक्मना शाको अरुणः सुपर्ण आ यो महः शूरः सनादनीळः ।
यच्चिकेत सत्यमित्तन्न मोघं वसु स्पार्हमुत जेतोत दाता ॥६॥

सर्वशक्ति- सम्पन्न, अरुणाभ पक्षी के समान महान् पराक्रमी और सनातन, गतिशील इन्द्रदेव जिस कार्य को कर्तव्य के रूप में निश्चित कर लेते हैं, वहीं करते हैं, व्यर्थ कुछ नहीं। अभीष्ट वैभव को अपने

पराक्रम से अर्जित करके वे स्तोताओं को सब प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं॥६॥

ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥७॥

वज्रधारी, वृत्रहन्ता इन्द्रदेव मरुद्गणों के साथ मिलकर (जल वृष्टि आदि) महान् पौरुष युक्त कर्म करते हैं। वृत्रादि शत्रुओं को मारने के लिए जल वृष्टि करते हैं । (ऐसे महान् कृत्यों में) मरुद्गण इन्द्रदेव के सहायक सिद्ध होते हैं ॥७॥

युजा कर्माणि जनयन्विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद्दस्यून् ॥८॥

मरुद्गणों के सहयोग से वृष्टि रूप कार्यों को इन्द्रदेव करते हैं । वे सभी प्रकार के शौर्यों के निर्वाहक, असुरों के संहारक, सर्वव्यापी, शीघ्रतापूर्वक शत्रुओं के पराभूतकर्ता हैं । वीर इन्द्रदेव ने द्युलोक से आकर , सोमपान से प्रोत्साहित होकर आयुधों से दुष्ट राक्षसों का संहार किया॥८॥

सूक्त ५६

ऋषि: बृहदुक्थो वामदेव्य
देवता – विश्वे देवा । छंद – त्रिष्टुप, ८-९ जगती

इदं त एकं पर ऊ त एकं तृतीयेन ज्योतिषा सं विशस्व ।
संवेशने तन्वश्चारुरेधि प्रियो देवानां परमे जनित्रे ॥१॥

(मृत पुत्र वाजी को लक्ष्य करके ऋषि कहते हैं-) हे मृत्यु के ग्रास ! तेरा एक अंश अग्नि है, दूसरा वायु है, तीसरा अंश ज्योति रूप (आत्म तत्व) है । उनसे संयुक्त होकर हे पुरुष ! तेजस्वी रूप प्राप्त कर । पावन स्थान में स्थित होकर देवशक्तियों का प्रिय एवं श्रेष्ठ बन॥१॥

तनूष्टे वाजिन्तन्वं नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवान्दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयाः ॥२॥

हे वाजी ! पृथ्वी तुम्हारे शरीर को धारण करती है, वह तुम्हें सुख प्रदान करने के साथ हमारे लिए भी ऐश्वर्यप्रद हो । तुम सत्यनिष्ठ होकर महान् देवताओं के धारणकर्ता परमेश्वर को उपलब्ध करने के लिए

दिव्यलोक में प्रतिष्ठित सूर्यदेव में अपनी आत्मा (चेतना) को समाहित करो॥२॥

वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवं गाः ।
सुवितो धर्म प्रथमानु सत्या सुवितो देवान्त्सुवितोऽनु पत्म ॥३॥

हे पुत्र ! तुम सामर्थ्यवान्, शक्तिशाली और श्रेष्ठ कान्तिमान् हो । श्रेष्ठमार्ग से गमन करते हुए उत्तम स्तवनों का गान करके श्रेष्ठ पद प्राप्त करो, सुखप्रद मार्गगामी होकर स्वर्गलोक में जाओ, श्रेष्ठ आचरण द्वारा धर्मानुष्ठान करो और सर्वोत्तम सत्यफलों को प्राप्त करो । शुभ कर्मशील बनकर तुम देवों को प्राप्त करो तथा सन्मार्गगामी बनकर सूर्यदेव के साथ स्वयं को संयुक्त करो॥३॥

महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम् ।
समविव्यचुरुत यान्यत्विषुरैषां तनूषु नि विविशुः पुनः ॥४॥

हमारे पितरगण देवों के समान ही पूज्यास्पद (श्रद्धास्पद) हैं, देवत्वपद को प्राप्त करके उन्होंने देवों के साथ अपने कर्मों का एकीकरण किया है। जो प्रकाशमयी दीप्ति यहाँ लोग प्राप्त करते हैं, वे सभी उनके साथ संयुक्त हो गये हैं, वे पुनः उन शरीरों में प्रविष्ट होते हैं॥४॥

सहोभिर्विश्वं परि चक्रमू रजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः ।
तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे प्रासारयन्त पुरुध प्रजा अनु ॥५॥

हमारे पितगण अपनी सामर्थ्य-शक्ति से सम्पूर्ण विश्व – ब्रह्माण्ड का परिभ्रमण कर चुके हैं। जिन सभी पुरातन लोकों में जाने की सामर्थ्य भूवासियों की नहीं, वे वहाँ भी गये हैं। अपने सूक्ष्म शरीरों में रहकर उन्होंने सम्पूर्ण लोकों को नाप लिया है । प्रजाजनों के प्रति उन्होंने विभिन्न प्रकार से अपनी सामयों को विस्तृत किया हैं॥५॥

द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदमास्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा ।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् ॥६॥

सूर्य के पुत्ररूप देवताओं ने स्वर्गज्ञाता और सामर्थ्यवान् आदित्य को तृतीय कर्म (पुत्रोत्पादन) द्वारा दो प्रकार से (उदय और अस्त में) प्रतिष्ठित किया है। हमारे पितरगणों ने सन्तानोत्पादन द्वारा सन्तानों की देह (शरीर) में वंशानुगत संस्कार स्थापित किये हैं। वे अपना वंशानुगत चिरस्थायी संस्कार स्थापित कर गये हैं॥६॥

नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वावरेष्वदधादा परेषु ॥७॥

जिस प्रकार मनुष्य नाव से जल को प्राप्त करते हैं, जिस प्रकार कल्याण मार्ग से कष्टदायी विपत्तियों से मुक्ति मिलती है तथा पृथ्वी की विभिन्न दिशाओं तक पहुँचना होता है । उसी प्रकार बृहदुक्थ अषि ने अपनी प्रजा (पुत्र) को, अपनी महती सामर्थ्य से अग्नि और सूर्यदेव के साथ संयुक्त किया॥७॥

सूक्त ५७

ऋषि: बन्धु: श्रुतबंधुध्रुविप्रबंधुगौपायना:
देवता – विश्वे देवा । छंद – गायत्री

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! हम सन्मार्ग से विचलित होकर कुमार्गगामी न बनें। हम सोमयुक्त यज्ञीय सत्कर्मों से कभी विमुख न हों । हमारे मार्ग दुष्ट शत्रुओं से निष्कंटक हों॥१॥

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः ।
तमाहुतं नशीमहि ॥२॥

जो अग्निदेव यज्ञ को सम्पन्न करने के माध्यम हैं, जो पुत्र सदृश होकर देवों तक अपने स्वरूप से व्याप्त रहते हैं, उन यजनीय अग्निदेव को हम प्राप्त करें॥२॥

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन ।
पितृणां च मन्मभिः ॥३॥

हम श्रेष्ठ पुरुषों (पितरों) के द्वारा, प्रशंसित सोम के द्वारा तथा पितरों को तृप्त करने वाले स्तोत्रों से मन देवता का आवाहन करते हैं॥३॥

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक्च सूर्यं दृशे ॥४॥

सत्कर्म के लिए, कार्यों में दक्षता के लिए तथा चिरकाल तक सूर्यदेव का अवलोकन करने के लिए श्रेष्ठ मन (हमारे पास) आए॥४॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।
जीवं व्रातं सचेमहि ॥५॥

हमारे पितर हमारे मन को पुनः श्रेष्ठता के लिए प्रेरित करें, जिससे हम जीवन एवं प्राण को पुष्ट कर सकें॥५॥

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥६॥

हे सोमदेव ! हम (याजक) आपके अनुरूप कर्मों – व्रतों में संलग्न रहते हुए शरीर में मन को लगाए हुए हैं, ताकि हम प्रजावान् होकर पोषण में समर्थ हों॥६॥

सूक्त ५८

ऋषिः बन्धुः श्रुतबंधुध्रुविप्रबंधुगौपायनाः
देवता – मन आवर्तनम्। छंद – अनुष्टुप

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१॥

हे बन्धु ! आपका जो मन विवस्वान् के पुत्र यमदेव के समीप चला गया है, उसे हम वहाँ से वापस लाते हैं, क्योंकि आप यहाँ इस संसार में रहने के लिए जीवन धारण किये हुए हैं॥१॥

यत्ते दिवं यत्पृथिवीं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥२॥

आपका मन जो सुदूर दिव्य लोक और भूलोक के समीप चला जाता है, उसे हम वापस यहीं लेकर आते हैं; क्योंकि आप इस संसार में निवास करने के लिए शरीर धारण किये हुए हैं॥२॥

यत्ते भूमिं चतुर्भृष्टिं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥३॥

सभी ओर से अस्थिर जो आपका मन अति दूरवर्ती भूभाग में चला जाता है, आपके उस मन को हम वापस लेकर आते हैं, क्योंकि आप इस संसार में रहने के लिए जीवन धारण किए हुए हैं ॥३॥

यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥४॥

जो आपका मन दूरवर्ती प्रदेशों में अतिदूर चला गया है, उसे हम वहाँ से वापस लाते हैं, क्योंकि आप यहाँ वास करने हेतु जीवन धारण किए हुए हैं॥४॥

यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥५॥

जो आपका मन जल से परिपूर्ण समुद्र या अन्तरिक्ष के भीतर सुदूर तक चला गया है, आपके उस मन को हम वहाँ से लौटाते हैं, क्योंकि आप विश्व में वास करने के लिए जीवन धारण किये हुए हैं॥५॥

यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥६॥

जो आपका मन चारों ओर विस्तारित किरणों के समीप अतिदूर चला गया है, उस मन को वहाँ से हम लौटाते हैं, क्योंकि आप यहाँ वास करने के निमित्त जीवन धारण किए हुए हैं॥६॥

यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥७॥

जो आपका मन दूरस्थ जल के भीतर तथा बृक्ष-वनस्पतियों में गमन कर गया है, उसे हम वहाँ से लौटाते हैं; क्योंकि आप यहाँ इस जगत् में वास हेतु जीवित हैं॥७॥

यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥८॥

जो आपका मन सूर्यदेव अथवा देवी उषा के समीप सुदूर गमन कर गया हैं, आपके उस मन को हम वहाँ से वापस लौटाते हैं, क्योंकि आप यहाँ इस विश्व में रहने के लिए जीवित हैं॥८॥

यत्ते पर्वतान्बृहतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥९॥

आपका जो मन दूरस्थ विशाल पर्वतीय श्रृंखलाओं के समीप गमन कर गया है, उसे हम वापस लेकर आते हैं, क्योंकि आप विश्व में वास करने के लिए जीवन धारण किए हैं॥९॥

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१०॥

आपका जो मन इस अखिल विश्व में अति दूर चला गया है, उसे हम वापस लौटाते हैं, क्योंकि आप विश्व में निवास करने के लिए जीवित हैं॥१०॥

यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥११॥

आपका जो मन दूर से अति दूर तथा उससे भी अति दूरस्थ किन्हीं स्थानों पर भी चला गया है, उस मन को दुबारा हम वापस लाते हैं, क्योंकि आप इस संसार में वास करने के लिए यहाँ जीवित हैं॥११॥

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥१२॥

आपका जो मन भूत और भविष्यत् किसी अति दूरस्थ काल की ओर चला गया है, उसे हम पुनः वापस लाते हैं, क्योंकि संसार में रहने के लिए आपका जीवन है॥१२॥

सूक्त ५९

ऋषि: बन्धु: श्रुतबंधुध्रुविप्रबंधुगौपायना:
देवता – १-३ निऋति; ४ निऋति: सोमश्च, ५-६ असुनीति, ७ पृथ्वी-द्वयन्तरिक्ष -सोम- पूष- पथ्या-स्वस्तय: ८-१० द्यावा पृथ्वी १० इन्द्र द्यावा पृथिव्य: । छंद – त्रिष्टुप, ८ पंक्ति, ९ महा पंक्ति १० पश्क्त्युत्तरा

प्र तार्यायुः प्रतरं नवीयः स्थातारेव क्रतुमता रथस्य ।
अध च्यवान उत्तवीत्यर्थं परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥१॥

जिस प्रकार क्रियाकुशल सारथी के होने पर रथ पर चढ़े व्यक्ति सुख की अनुभूति करते हैं, वैसे ही सुबन्धु की आयु यौवनयुक्त और दीर्घ होकर संवर्द्धित हो । पतनशील भी, जीवन के उद्देश्य श्रेष्ठ रीति से प्राप्त करें, पाष के अधिष्ठाता देवता हमसे दूर हो जाएँ॥१॥

सामन्नु राये निधिमन्नन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।
ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥२॥

सामगान प्रारम्भ रहते हुए सम्पदा प्राप्त करने के लिये हम श्रेष्ठ अन्न और विभिन्न प्रकार के श्रेष्ठतम विर्द्रव्य संगृहीत करते हैं। हम निति की वन्दना करते हैं। वे हमारे (उक्त) सभी पदार्थों का आस्वादन करें, (अपने बन्धनों को) जीर्ण करें और भलीप्रकार हमसे दूर चले जाएँ॥२॥

अभी ष्वर्यः पौंस्यैर्भवेम द्यौर्न भूमिं गिरयो नाज्रान् ।
ता नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥३॥

हम अपनी पराक्रमी शक्ति द्वारा शत्रुओं को भली प्रकार पराभूत करें जैसे पृथ्वी के ऊपर आकाश स्थित है, वैसे ही हम शत्रुओं के ऊपर वर्चस्व स्थापित करें। जैसे मेघों का वेग पर्वतों द्वारा अवरुद्ध किया जाता है, वैसे ही हम शत्रुओं की गति को रोकने में सक्षम हों । हमारे सभी स्तोत्रों को निक्रति सुने तथा हमसे वे दूर चले जाएँ॥३॥

मो षु णः सोम मृत्यवे परा दाः पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥४॥

हे सोमदेव ! हमें मृत्यु के अधीनस्थ न करें । हम सूर्यदेव को आकाशमार्ग में जाते हुए सदा देख सकें। हम दीर्घजीवी हों) । हमारी वृद्धावस्था भी नित्य सुखप्रद हो तथा नितिदेव हमसे दूर चले जाएँ॥४॥

असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः ।
रारन्धि नः सूर्यस्य संदृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥५॥

हे प्राणविद्या विशेषज्ञ ! आप हमारी ओर ध्यान दें तथा हमारे दीर्घजीवन के लिए हमारी आयु को भलीप्रकार बढ़ाएँ । जहाँ तक सूर्यदेव का प्रकाश हैं, वहाँ तक हमें संरक्षित करें, आप घृत से हमारे शरीर को परिपुष्ट करें॥५॥

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।
ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥६॥

हे प्राणविद्या के ज्ञाता ! आप हमारे लिए पुनः नेत्रशक्ति, प्राणऊर्जा तथा उपभोग्य सामग्री प्रदान करें । हम चिरकाल तक सूर्य के दर्शन से लाभान्वित हों । हे अनुमते ! जिससे हम विनष्ट न हों, ऐसा हमारा कल्याण करे॥६॥

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् ।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां या स्वस्तिः ॥७॥

पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक हमें पुन: प्राण शक्ति प्रदान करें, सोमदेव हमें पुन: शारीरिक सामर्थ्य प्रदान करें तथा सर्वपोषक पूषादेव हमें कल्याणकारी वाणी प्रदान करें, जिससे हमारा हर प्रकार से मंगल हो ॥७॥

शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥८॥

महिमायुक्त और यज्ञ की मातृस्वरूपा द्यावा-पृथिवी सुबन्धु का मंगल करें । जो भी हमारे पाप कर्म हों, उन्हें हमसे दूर करें । हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों क्षमाशील हैं, तो पापकर्म किस प्रकार से होगा? हे सुबन्धु ! वे पापकर्म आपको पीड़ित किये बिना विनष्ट हो॥८॥

अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा ।
क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥९॥

स्वर्गलोक से पृथ्वी तक जो दो (अश्विनीकुमारों के रूप में) और तीन (इड़ा, सरस्वती, भारती) रोग निवारक ओषधियाँ संचरित होती हैं, उनमें से एक ओषधि पृथ्वी पर विचरण करती है । हे द्यावा और पृथिवि ! जो भी हमारे पापकर्म हों, आप उन्हें दूर हटायें । हे सुबन्धु ! आपके किसी प्रकार के भी पापकर्म हमें पीड़ित न करें॥९॥

समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! जो बैल उशीनराणी नामक ओषधि वहन करके ले जाते हैं, ऐसे शकटवाही बैलों (अथवा किरण समूहों) को भली प्रकार प्रेरित करें । हे द्युलोक और पृथिवि ! जो हमारे पापकर्म हैं, उन्हें दूर करें । हे सुबन्धु ! आपके किसी प्रकार के दोष हमें कष्टपीड़ित न कर सकें॥१०॥

सूक्त ६०

ऋषिः बन्धुः श्रुतबंधुध्रुविप्रबंधुगौपायना:, अगस्त्यस्वसा एषां माता ऋषिका
देवता – १-४ असमातिः, ५ इन्द्र, ७-११ जीवः, १२ हस्तः। छंद – अनुष्टुप, १-५ गायत्री, ८-9 पंक्ति

आ जनं त्वेषसंदृशं माहीनानामुपस्तुतम् ।
अगन्म बिभ्रतो नमः ॥१॥

महान् व्यक्तियों से प्रशंसित (असमाति नरेश) के प्रदेश में हम विनम्रभाव से प्रविष्ट हुए॥१॥

असमातिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम् ।
भजेरथस्य सत्पतिम् ॥२॥

शत्रु संहारक, तेजस्वी रथ के समान सर्वत्र गतिशील भजेरथ नरेश के वंशज तथा सज्जनों के संरक्षक असमाति (अतुलनीय सामर्थ्यवान्) नरेश की हम प्रार्थना करते हैं॥२॥

यो जनान्महिषाँ इवातितस्थौ पवीरवान् ।
उतापवीरवान्युधा ॥३॥

जिस प्रकार सिंह – भैसों को गिराकर मार देता है, वैसे ही वे अपने पराक्रम बल से हाथ में खड्ग धारण करके शत्रुओं को मार गिराते हैं। खड्ग धारण किये बिना भी वे शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर लेते हैं॥३॥

यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान्मराय्येधते ।
दिवीव पञ्च कृष्टयः ॥४॥

शत्रु संहारक और ऐश्वर्य सम्पन्न राजा इक्ष्वाकु शासन में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, पाँचों वर्गों के लोग स्वर्गीय सुखों का उपभोग करें॥४॥

इन्द्र क्षत्रासमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारय ।
दिवीव सूर्यं दृशे ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! जैसे सूर्यदेव आकाश में दिखाई देते हैं, वैसे ही आप रथारूढ़ राजा असमाति को क्षात्रबल धारण करायें॥५॥

अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता ।
पणीन्न्यक्रमीरभि विश्वान्राजन्नराधसः ॥६॥

हे राजन् ! आप ऋषि अगस्त्य के हर्षदायी बन्धु-बान्धवों के लिए अपने गतिशील दो लालवर्ण के अश्वों को रथ से नियोजित करें । जो व्यापारी अतिकजूस, श्रेष्ठ कार्यों में दानभाव से शून्य हैं, उन्हें आप पराजित करें॥६॥

अयं मातायं पितायं जीवातुरागमत् ।
इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धवेहि निरिहि ॥७॥

जो अग्निदेव पधारे हैं, वे माता, पिता तथा जीवनदाता रूप हैं । हे जीव ! यह शरीर आपके जीवन का आश्रय स्थान है, इसमें स्थापित हों॥७॥

यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥८॥

जिस प्रकार रथ को धारण करने के लिए रस्सी से दोनों जुओं को बाँधते हैं, वैसे ही आपके मन को जीवनीशक्ति तथा आरोग्यता के लिए धारण करते हैं, मृत्यु (विनाश) के लिए नहीं॥८॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥९॥

जिस प्रकार यह विशाल धरती इन वृक्ष – वनस्पतियों को धारण करती है, उसी प्रकार अग्निदेव आपके मन को धारण किये हुए हैं, जिससे आप जीवनीशक्ति तथा कल्याण प्राप्त कर सकें और मृत्यु से संरक्षित रहें॥९॥

यमादहं वैवस्वतात्सुबन्धोर्मन आभरम् ।
जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥१०॥

विवस्वान् के पुत्र यमराज से हमने सुबन्धु के मन को विमुक्त किया है, जिससे वे कल्याण रूप जीवन को धारण करते हुए, मृत्यु से सुरक्षित रहें॥१०॥

न्यग्वातोऽव वाति न्यक्तपति सूर्यः ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः ॥११॥

वायुदेव दिव्यलोक से नीचे के लोक में प्रवाहित होते हैं, सूर्यदेव ऊपर से नीचे की ओर ताप देते हैं, अहिंसक गौ नीचे की ओर दुही जाती है, उसी प्रकार है सुबन्धु ! आपके अमंगल भी अधोगामी हों॥११॥

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥१२॥

यह हमारा हाथ सौभाग्य युक्त है, अति सौभाग्यशाली यह हाथ सबके लिए सभी रोगों का निवारण कर्ता है । यह हाथ शुभ और कल्याणकारी है॥१२॥

सूक्त ६१

ऋषि: नाभानेदिष्ठो मानव:
देवता – विश्वे देवा। छंद – त्रिष्टुप

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतृन् ॥१॥

नाभानेदिष्ठ (श्रेष) के माता, पिता, भातादि कार्य विभाजन करते समय, नाभानेदिष्ठ को (भूल से) उनका भाग न देकर, रुद्रदेव की अर्चना करने लगे। इससे नाभानेदिष्ट भी रुद्र स्तोत्र के लिए तत्पर होकर अंगिराओं के यज्ञ में सम्मिलित हुए। यज्ञ के छठे दिन, जो उन लोगों की विस्मृति में था, उन्होंने (नाभानेदिष्ठ ने) उन सात होताओं से कहकर यज्ञसत्र को सम्पूर्ण किया॥१॥

स इद्दानाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत् ॥२॥

स्तोताओं को ऐश्वर्य प्रदान करने तथा शत्रुओं के संहार हेतु अस्त्रादि देते हुए रुद्रदेव (इस विशिष्ट) यज्ञ स्थल पर जाकरे विराजमान हुए। जल वृष्टि द्वारा जिस प्रकार बादल अपने प्रभाव या बल को प्रदर्शित करते हैं, वैसे ही रुद्रदेव यज्ञ में उपस्थित होकर अपनी क्षमता को सर्वत्र प्रकाशित करने लगे॥२॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तौ ॥३॥

हे अश्विनीकुमारो ! जो अत्विज् प्रचुर हविष्य पदार्थों से सम्पन्न होते हुए भी अपने हाथ में हमारी अँगुलियाँ पकड़कर आपका नामोच्चारण करते हुए यज्ञ सम्पादित करते हैं, आप मन के समान शीघ्र गति से उस स्तोता के यज्ञ में विवेकपूर्वक गमन करते हैं॥३॥

कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदद्दिवो नपाताश्विना हुवे वाम् ।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू ॥४॥

हे दिव्यलोक के पुत्र अश्विनी कुमारो ! जब रात्रि का अन्धकार विनष्ट होता है और प्रात:कालीन सूर्य किरणों की लाल रंग की आभा प्रकट होती है, उस समय हम आपका आवाहन करते हैं। आप यज्ञ की इच्छा से प्रेरित होकर हमारे यज्ञ में पधारें तथा हविष्यान्न का सेवन

करें। दो अश्वों के समान निरन्तर हवि का भक्षण करते हुए द्वेष भावना को विस्मृत करें॥४॥

प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत् ।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ॥५॥

जिन प्रजापति ब्रह्मा का तेज प्रजा के उत्पादन में समर्थ है । वे मनुष्यों के हित में तेजस् को छोड़ते हैं । आवश्यकता के अनुसार उसे पुनः धारण करते हैं । उन्होंने अपनी सुन्दर कन्या उषा में उस उत्पादक तेज को स्थापित किया ॥५॥

मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥६॥

जिस समय सृष्टि- कामना से युक्त प्रजापति ने युवती कन्या (उषा) में तेजस् स्थापित किया, उस समय दोनों के बीच शक्तिरूप प्राण ऊर्जा का अभिषिंचन न्यूनरूप में हुआ; परन्तु यज्ञ के आधार स्वरूप उच्च उद्देश्य के लिए जब दोनों का संगम (प्रचुर मात्रा में) हुआ, तो कल्याण के प्रतीक रुद्र (सूर्य) की उत्पत्ति हुई॥६॥

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्क्ष्मया रेतः संजग्मानो नि षिञ्चत् ।
स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥७॥

जिस समय कन्या (उषा) के साथ प्रजापति के तेज का संयोजन हुआ, उस समय पृथ्वी के लिए उत्पादक तेज़ का अभिषेचन किया गया। उसी से सत्कर्मशील देवताओं ने (वतों के संरक्षक) ब्रह्मशक्ति का उत्पादन किया। वास्तोष्पति (यज्ञ के पालकों की उस व्रतशीलता से वास्तोष्पति(पदार्थों के उत्पादक देव) का सृजन हुआ॥७॥

स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः ।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ्न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे ॥८॥

जिस प्रकार सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव नमुचि के वध काल में युद्ध में मुँह से झाग छोड़ते हुए वापस लौटे थे, वैसे ही हमारे समीप से वास्तोष्पति जिन पैरों से आए थे, उन्हीं से वापस लौटे। अंगिराओं ने दक्षिणा स्वरूप हमें जो गौएँ प्रदान की थीं, वे उन्हें दूर से ही त्यागते हुए आगे एक कदम भी नहीं बढ़े, आसानी से ग्रहण करने योग्य उन हमारी गौओं को मार्गदर्शक रुद्रदेव महण नहीं करते॥८॥

मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निं न नग्न उप सीददूधः ।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत् ॥९॥

प्रजाजनों के उत्पीड़क और अग्नि की तरह दाहक (जलाने वाले) असुर अचानक शीघ्रता से इस यज्ञ में उपस्थित नहीं हो सकते । रात्रि

में भी वस्त्रहीन दुष्ट असुर अग्नि के समीप नहीं आ सकते; क्योंकि इस यज्ञ के संरक्षक रुद्रदेव हैं, यज्ञ के दूसरे संरक्षक यज्ञवाहक अग्निदेव, समिधाओं को ग्रहण करते हुए और हविष्यान्नरूपी सामर्थ्य को बाँटते हुए यज्ञवाहक अग्निदेव राक्षसों के साथ युद्ध में प्रवृत्त होते हैं॥९॥

मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ॥१०॥

नौ मास तक यज्ञानुष्ठान करते हुए आङ्गिरसों ने गौओं को उपलब्ध किया। उन्होंने सुन्दर स्तुतियों के सहयोग से यज्ञीय वाणी का प्रयोग करते हुए उसे सम्पूर्ण किया। उन्होंने इहलौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उपलब्धियों को प्राप्त किया तथा इन्द्र के समीप पहुँच गए । दक्षिण रहित निष्काम भाव से सत्र नामक यज्ञ को उन्होंने सम्पन्न करके अक्षुण्ण फल को प्राप्त किया॥१०॥

मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो राधो न रेत ऋतमित्तुरण्यन् ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥११॥

अङ्गिराओं ने जिस समय अमृततुल्य दुधारू गौओं के शुभ और पवित्र दूध को यज्ञ में समर्पित किया, उस समय उत्तम स्तोत्र वाणियों द्वारा नवीन सम्पत्ति के समान ही द्युलोक से अभिषिञ्चित वृष्टिरूप प्रवाह को उपलब्ध किया॥११॥

पश्वा यत्पश्चा वियुता बुधन्तेति ब्रवीति वक्तरी रराणः ।
वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा विश्वं विवेष्टि द्रविणमुप क्षु ॥१२॥

जिस समय यजमान- स्तोता गोशाला को गोरहित देखते हैं, उस समय वे इस प्रकार कहते हैं, कि स्तोत्र में रमण करने वाले और ऐश्वर्यों से विशेष वैभवशाली, पापरहित (पवित्रतायुक्त) इन्द्रदेव सभी गोरूप धन को शीघ्र ही चारों ओर संगृहीत करके यजमान साधक को देने के लिये धारण करते हैं॥१२॥

तदिन्न्वस्य परिषद्वानो अग्मन्पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन् ।
वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा विदत्पुरुप्रजातस्य गुहा यत् ॥१३॥

सुदृढ़ इन्द्रदेव जिस समय अनेक रूपों में विस्तार युक्त शुष्ण नामक राक्षस के गुप्त मर्म को ढूंढकर उसे विनष्ट करते हैं अथवा नृषद के पुत्र का संहार करते हैं, उस समय उनके सेवकगण विभिन्न तरह से उन्हें घेर कर उनके साथ जाते हैं॥१३॥

भर्गो ह नामोत यस्य देवाः स्वर्ण ये त्रिषधस्थे निषेदुः ।
अग्निर्ह नामोत जातवेदाः श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक् ॥१४॥

जो देवगण स्वर्गीय स्थिति के अनुसार यज्ञ स्थल के कुश पर प्रतिष्ठित होते हैं, वे अग्नि की तेजस्विता को 'भर्ग' इस नाम से सम्बोधित करते हैं। अग्निदेव के एक तेज का नाम 'जातवेदस्' भी है । हे यज्ञ निष्पादक अग्निदेव ! आप यज्ञ के होतारूप हैं, आप अनुकूल होकर हमारे आवाहन को स्नेह- भावना से ग्रहण करें॥१४॥

उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै ।
मनुष्वद्वृक्तबर्हिषे रराणा मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू ॥१५॥

हे इन्द्रदेव ! वे दोनों प्रख्यात तेजस्वितायुक्त रुद्रपुत्र अश्विनीकुमार हमारे स्तोत्र को सुनकर यज्ञ – स्थल में पदार्पण करें । जिस प्रकार वे आदिपुरुष महाराज मनु के यज्ञ में प्रशंसित होते हैं, उसी प्रकार हमारे यज्ञ-स्थल में अति हर्षित हों । वे हमारे ऊपर अनुग्रह करते हुए श्रेष्ठ धन और अन्नदाता प्रजाओं के सुखार्थ यज्ञ को धारण करें॥१५॥

अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः ।
स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु ॥१६॥

सबके प्रेरक और सर्वस्तुत्य ओषधिराज सोमदेव की हम प्रार्थना करते हैं, शुद्ध और क्रियाकुशल सोम स्वयमेव सेतुरूप हैं। वे जल को प्रतिदिन पार करते हैं । जिस प्रकार शीघ्र गमनशील घोड़े चक्र

की धुरी को कम्पित करते हैं, वैसे ही कक्षीवान और अग्नि को भी वे सोमदेव प्रकम्पित करते हैं॥१६॥

स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः ॥१७॥

अग्निदेव इस लोक और परलोक दोनों के लिए कल्याणप्रद हैं । वे हवियों द्वारा तारणकर्ता तथा यज्ञ-सम्पादक हैं । जो गाय अमृततुल्य दुधारू होने पर दूधरहित है, उसे प्रसववती करके वे दुधारू बनाते हैं ।यज्ञ में मित्र, वरुण और अर्यमादेव को श्रेष्ठतम स्तवनों द्वारा भली प्रकार प्रशंसित किया जाता है॥१७॥

तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियंधा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चा कतिथश्चिदास ॥१८॥

हे द्युलोक में विद्यमान सूर्यदेव ! आपका वह परमबन्धु नाभानेदिष्ठ आपकी प्रार्थना करता है। कर्मशील नाभानेदिष्ठ अंगिरा द्वारा प्रदत्त एक हजार गौओं की कामना से स्तुति करता है । द्युलोक हमारा और सूर्य का श्रेष्ठ उत्पत्ति स्थल है । उसे सूर्य एवं मेरे जन्म में कितना अन्तर है?॥१८॥

इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः ।

द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना ॥१९॥

दिव्यलोक ही मेरा उत्पत्ति स्थल है, यही मेरा आश्रय हैं । सम्पूर्ण देवगण (अथवा प्रकाशमान किरणे) मेरे अपने हैं, मैं सबमें विद्यमान हूँ । द्विज (दो बार जन्म लेने वाले) सत्यस्वरूप ब्रह्मा से उत्पन्न हुए हैं । यज्ञ स्वरूप गौ (माध्यमिका वाक्) ने प्रकट होकर सभी प्रकार का सृजन किया॥१९॥

अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट् ।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता ॥२०॥

अति आनन्दित होकर अग्निदेव चारों ओर अपना स्थान ग्रहण करते हैं । कान्तिमान् , काष्ठभक्षक दोनों लोकों में सहायक इस अग्नि की ज्वालाएँ ऊपर उठती हैं। अतिस्तुत्य, सुस्थिर सुखों के वर्द्धक, अग्नि की माता (अरणि अथवा द्यावा- पृथिवी) इसे यज्ञ में शीघ्र उत्पन्न करती हैं॥२०॥

अधा गाव उपमातिं कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः ।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं याळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः ॥२१॥

श्रेष्ठतम स्तोत्र वाणियों का उच्चारण नाभानेदिष्ठ को शान्ति प्रदान करता है, सभी के प्रशंसनीय इन्द्रदेव के समीप प्रार्थनाएँ जाती हैं। हे

ऐश्वर्यवान् अग्निदेव ! आप हमारी स्तुति पर ध्यान दें । आप इन्द्रदेव के यज्ञ को सम्पन्न करें, आप अश्वमेध यज्ञ को सम्पन्न करने वाले मनु के पुत्र की प्रार्थना से समृद्ध होते हैं॥२१॥

अध त्वमिन्द्र विद्ध्यस्मान्महो राये नृपते वज्रबाहुः ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ ॥२२॥

हे वज्रधर और नरेन्द्र इन्द्रदेव ! आप हमारी विपुल ऐश्वर्य की कामना के अभिप्राय को जाने-समझे । हम आपके निमित्त स्तुतिगान करते हुए हविष्यान्न समर्पित करते हैं । आप हमारा संरक्षण करें । हे अश्वों से सम्पन्न इन्द्रदेव ! आपकी अनुकम्पा से हम पापमुक्त हों॥२२॥

अध यद्राजाना गविष्टौ सरत्सरण्युः कारवे जरण्युः ।
विप्रः प्रेष्ठः स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान् ॥२३॥

हे दीप्तिमान् मित्रावरुण ! गोधन की कामना से प्रेरित होकर अंगिराजन यज्ञ को सम्पादित करते हैं, सर्वज्ञाता नाभानेदिष्ठ स्तोत्र की आकांक्षा से यज्ञ के समीप जाते हैं। नाभानेदिष्ठ ने स्तोत्र – गान करके यज्ञ को सम्पूर्ण किया, इसी से वे उनके अतिप्रिय ज्ञानी विप्र हुए हैं॥२३॥

अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।

सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ ॥२४॥

हम श्रद्धापूर्वक स्तुतिगान करने वाले, उन जयशील और प्रशंसनीय वरुणदेव की, अभीष्ट सिद्धि के लिये कामना करते हैं। ये शीघ्रगामी अश्व वरुणदेव के पुत्ररूप हैं। हे वरुणदेव ! आप शुद्ध स्वरूप हैं, हमें अन्न लाभ से लाभान्वित करने के लिये प्रेरित हों॥२४॥

युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान् ।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत्सूनृतायै ॥२५॥

हे मित्र और वरुण देवो ! आपकी मैत्री- भावना को सुदृढ़ करने तथा बल- वृद्धि के लिये जब अन्न से युक्त ऋत्विज् विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं, तब आपका बन्धुत्वभाव प्राप्त कर लेने पर सम्पूर्ण विश्व में यज्ञ की महिमा का विस्तार होता है । जिस प्रकार चिरपरिचित मार्ग सुखद होता है, वैसे ही आपको मैत्रीभावना हम स्तोताओं को सुखकर हो॥२५॥

स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः ।
वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः ॥२६॥

हे परमबन्धु वरुणदेव ! आप देवताओं के सहयोग से नमस्कार और श्रेष्ठ स्तोत्रों से स्तुत होकर आनन्दपूर्वक समृद्ध हों । स्तोत्र वचनों से

वे शीघ्र हमारे समीप आगमन करें । उन्हीं के निमित्त गोदुग्ध की धारा यज्ञ में प्रवाहित होती है॥२६॥

त ऊ षु णो महो यजत्रा भूत देवास ऊतये सजोषाः ।
ये वाजाँ अनयता वियन्तो ये स्था निचेतारो अमूराः ॥२७॥

हे यजन योग्य देवगण ! आप हमारे श्रेष्ठ संरक्षण के लिए संगठित हों । हे ज्ञानी अंगिराओ ! परिश्रमपूर्वक आपने हमें बल प्रदान किया, आपकी मोहदृष्टि समाप्त हो गई है, आप इस समय गोरूपी ऐश्वर्य-सम्पदा को प्राप्त करें॥२७॥

सूक्त ६२

ऋषिः नाभानेदिष्ठो मानवः
देवता – विश्वे देवा १-६ अंगिरस , ८-११ सार्वर्णेर्दानम् । छंद – जगती, ५,८,९ अनुष्टुप, प्रगाथ, १० गायत्री, ११ त्रिष्टुप

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश ।
तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥१॥

हे मेधायुक्त अंगिराओ ! हवियोग्य पदार्थों तथा दक्षिणा से सम्पन्न यज्ञीय सत्कर्मों से आपने इन्द्रदेव के बन्धुत्व और अमृतत्त्व को उपलब्ध किया है। उनके निमित्त आप लोगों का कल्याण हो । आप मुझ नाभानेदिष्ठ (मनु- पुत्रों को भी (यज्ञार्थ) स्वीकार करें॥१॥

य उदाजन्पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन्परिवत्सरे वलम् ।
दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥२॥

हे अंगिराओ ! आप हमारे पितृतुल्य हैं। आपने पूरे वर्ष ऋत (सत्य या ज्ञान) द्वारा वल (राक्षस अथवा अवरोध) का उच्छेदन करके गौ (पृथ्वी)

सहित वसु (धन या आवास उपलब्ध किया। आपको दीर्घायुष्य की प्राप्ति हो । हे मेधावी जनो ! आप मुझ मनु पुत्र को (यज्ञार्थ) स्वीकार करें॥२॥

य ऋतेन सूर्यमारोहयन्दिव्यप्रथयन्पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥३॥

हे अंगिरागण ! आप लोगों ने सत्यरूप यज्ञीय तेज से दिव्य लोक में सर्व प्रेरक सूर्यदेव को प्रतिष्ठित किया और सबकी निर्मात्री पृथ्वी को यज्ञीय सत्कर्मों से समृद्ध तथा विख्यात किया है। आपकी श्रेष्ठ प्रजाप सन्ताने हों । हे श्रेष्ठ ज्ञाननिष्ठ ऋषियो ! आप मुझ मनु पुत्र को अपने साथ लें॥३॥

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥४॥

हे देवपुत्र अंगिराओ ! यह नाभानेदिष्ठ आपके यज्ञ स्थल में कल्याणकारी वचनों का प्रयोग करता है, उसे आप आदर सहित सुनें । आप सभी शोभनीय ब्रह्मशक्ति को प्राप्त करें । हे मेधा- सम्पन्न श्रेष्ठ अंगिराओ ! आप मुझ मनु पुत्र को साथ में रखें॥४॥

विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः ।

ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ॥५॥

ये अंगिरा विविध रूप वाले हैं, गंभीर कर्म करने वाले ये अग्नि के पुत्र हैं। ये सभी ओर प्रकट हुए हैं॥५॥

ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि ।
नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ॥६॥

विविध रूपों वाले अंगिरागण दिव्यलोक में अग्निदेव के द्वारा चारों ओर उत्पन्न हुए। उनमें किसी ने नौ मास और किसी ने दस मास तक यज्ञ कर्म करके तेजस्विता प्राप्त की। देवों के साथ स्थित अग्निदेव हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं॥६॥

इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम् ।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत ॥७॥

श्रेष्ठ रीति से यज्ञकर्मों के सम्पादक अंगिराओं ने इन्द्रदेव के सहयोग से अश्वों (शक्ति-कणों) और गौओं (किरणों) के समूहों को प्रकट किया। वे ऋषिगण यज्ञीय अवशिष्ट असंख्य धन हमें देकर इन्द्रादि देवताओं में अपनी यशस्विता को प्रख्यात करें॥७॥

प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु ।
यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥८॥

जो सैकड़ों अश्व और सहस्रों गौएँ शीघ्रता से ऋषिगणों को दान देने के लिए प्रेरित होते हैं, वे सावर्णि मनु जल से सिञ्चित बीज के समान कर्मफल से युक्त होकर सन्तान और धनादि से सम्पन्न हों॥८॥

न तमश्नोति कश्चन दिव इव सान्वारभम् ।
सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ॥९॥

आकाश में उच्च स्थान पर तेजस्वी सूर्य सदृश स्थित उन सावर्णि मनु के समान दूसरे किसी में भी दान देने की सामर्थ्य नहीं । सावर्णि मनु का दान सर्वत्र प्रवहमान नदी के समान ही सर्वत्र प्रख्यात हैं अथवा विस्तृत है ॥९॥

उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा ।
यदुस्तुर्वश्च मामहे ॥१०॥

उत्तम कल्याणकारी, आज्ञाकारी प्रचुर गौओं से युक्त और सेवक के समान स्थित (विद्यमान) यदु और तुर्व नामक राजर्षि मनु के दुग्ध रूप भोजनार्थ गवादि पशु प्रदान करते हैं॥१०॥

सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥११॥

सहस्रों गौओं के दानकर्ता और मनुष्यों के नायक रूप मनु का अशुभ करने में कोई सक्षम नहीं । इस मनु द्वारा प्रदत्त दक्षिणा सूर्यदेव के सहयोग से तीनों लोकों में प्रख्यात हो । सावर्णि मनु के आयुष्य को इन्द्रादि देवगण समृद्ध करें । आलस्य रहित हम श्रेष्ठ अन्न उपलब्ध करें॥११॥

सूक्त ६३

ऋषि: गय: पलात
देवता – विश्वे देवा, १५-१६ पथ्या स्वस्ति:। छंद - जगती, १५ त्रिष्टुब्वा, १६-१७ त्रिष्टुप

परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः ॥१॥

जो इन्द्रादि देवगण सुदूर देश से आकर मनुष्यों के साथ मैत्री- भाव को सुदृढ़ करते हैं, जो देवगण यज्ञों से संतुष्ट होकर विवस्वान् के पुत्र मनु की मनुष्यादि सन्तानों को धारण करते हैं, जो देवगण नहुष पुत्र ययाति राजा (अथवा प्रयत्नरत मनुष्यों) के यज्ञ में आसनों पर विराजमान होते हैं, वे हमें ऐश्वर्य- सम्पदा प्रदान करके सम्माननीय बनाएँ और हमारी प्रगति करें॥१॥

विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः ।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम् ॥२॥

हे देवगण ! आपके सम्पूर्ण नाम नमनयोग्य-स्तुतियोग्य हैं तथा आपके सभी अंग यजनीय हैं । जो आप द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी से प्रकट हुए हैं, वे आप यज्ञ में आकर हमारे आवाहन को सुनें॥२॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये ॥३॥

सभी की निर्मात्री पृथ्वी जिन देवताओं के निमित्त मधुर दूध (जल) प्रवाहित करती है । जिनके निमित्त अविनाशी और मेघों से आच्छादित अन्तरिक्ष अमृत को धारण करता है । स्तुत्य यज्ञीय कर्मों से अति सामर्थ्यवान् वृष्टि के आश्रय, उत्तम कर्मा उन अदिति के पुत्र देवों की स्तुति करें॥३॥

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥४॥

कर्तव्यनिष्ठ मनुष्यों के निरीक्षण के लिए जो सदा जागरूक रहते हैं, वे तेजस्वी देवगण उपासना एवं स्तुतियों से सर्वत्र पूज्यास्पद होकर महिमामय अमृत पद को प्राप्त करते हैं । ज्योतिर्मय रथ से युक्त विघ्नरहित और पापरहित ये देवगण द्युलोक के उच्चस्थान पर लोगों के मंगल के लिए निवास करते हैं॥४॥

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ॥५॥

अपनी तेजस्विता से प्रतिष्ठित और विकसित जो देवगण हविष्यान्न सेवन हेतु यज्ञ में उपस्थित होते हैं, और जो पराभवरहित होकर द्युलोक में निवास करते हैं; उन महिमामय देवों और उनकी जननी अदिति के मंगल के निमित्त श्रेष्ठ हविष्यान्न और विनम्र स्तुतियाँ समर्पित करें॥५॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥६॥

हे देवशक्तियो ! हमारे अतिरिक्त कौंन साधक आपकी स्तुति करने में सक्षम हो सकता हैं, जिन पर आप स्नेहवश कृपा करते हैं ? हे ज्ञान- सम्पन्न देवों ! जो यज्ञीय सत्कर्म पाप से बचाकर हमारे लिये परम सुखकर और कल्याणमय हैं, उस यज्ञ को हमारे अतिरिक्त कौन स्तुतियों और आहुतियों से सुशोभित करते हैं?॥६॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥७॥

वैवस्वत मनु ने अग्नि को प्रज्वलित करके श्रद्धायुक्त मन से सात ऋत्विग्गणों के साथ जिन देवताओं के निमित्त श्रेष्ठ हविर्द्रव्यों को समर्पित किया, वे अदिति पुत्र हमें अभय और सुख प्रदान करें तथा हमारे मंगल के निमित्त हमारे गन्तव्य मार्गों को सुगम बनाएँ॥७॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥८॥

श्रेष्ठ ज्ञाननिष्ठ और मननीय देवगण स्थावर और जङ्गम सभी लोकों के अधीश्वर हैं । हे देवशक्तियो ! आप हमारे कल्याणमय सुख़ के लिये सभी प्रकार के ज्ञात और अज्ञात मानसिक पापकर्मों से हमे संरक्षित करें॥८॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥९॥

पापों के मुक्तिदाता, सुखदायक इन्द्रदेव को हम संग्राम में शत्रुओं से संरक्षण के लिए आवाहित करते है । श्रेष्ठ कर्मशील, दैवी गुणों से युक्त मनुष्यों तथा अग्नि, वरुण और भगदेवों को सहयोग के लिए हम आमंत्रित करते हैं । द्युलोक, पृथिवी और मरुद्गणों को अन्न और कल्याण के लिए आवाहित करते हैं॥९॥

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१०॥

भली प्रकार से रक्षा करने वाली, पर्याप्त विस्तार वाली, अत्यधिक विशाल, सुखदायक, श्रेल आश्रय देने वाली, निर्दोष, उत्तम पतवार वाली, बिना छिद्र वाली, मृत्यु भय से बचाने वाली, दिव्य और अखण्डत द्युलोक की यज्ञीय नौका पर हम आरूढ़ हों, जिससे हमारा कल्याण हो॥१०॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥११॥

हे यजनीय देवगण ! आप संरक्षण के लिये हमें आश्वासन प्रदान करें, सर्वविनाशक दुर्गति से हमें सुरक्षित करें । हे देवगण ! आप हमारी सत्यस्वरूप आदर- भाव युक्त प्रार्थनाओं को सुनते हुए हमारे संरक्षण और कल्याण के निमित्त आगमन करें॥११॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१२॥

हे देवगण ! आप हमारे रोगों और उनके समान ही बाधक शत्रुओं का निवारण करें । सभी प्रकार की दानरहित बुद्धि और देवों के

विरोधी शत्रुओं को दूर करें । आप धन लोलुप दुर्मति और देवों के प्रति हविष्यान्न से रहित शत्रुओं को दूर करें । हमसे सम्बन्धित शत्रुओं के बैर भाव का निवारण करें तथा हमारे कल्याण के लिए प्रचुर सुख-सम्पदा प्रदान करें॥१२॥

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१३॥

हे आदित्यो ! आप जिसे सन्मार्ग दिखाकर और पापकर्मों से विमुक्त करके कल्याणपथ पर प्रेरित करते हैं, ऐसे मुनष्य सभी प्रकार के अनिष्टों से रहित होकर प्रगतिपथ पर अग्रसर होते हैं तथा सत्यधर्माचरण द्वारा सुसन्तति और पशु आदि से सम्पन्न बनते हैं॥१३॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥१४॥

हे देवगण ! अन्न सामग्री को प्राप्त करने के लिए आप जिस रथ को संरक्षित करते हैं; हे मरुद्गण ! वीरों के लिए उचित संग्राम में शत्रुओं की संचित सम्पदा की प्राप्ति के लिए आप जिस रथ को बचाते हैं, हे इन्द्रदेव ! संग्राम में गमन करते हुए उस रथ को प्रभात वेला में प्राप्त

करने की कामना करें । ऐसे ध्वस्त न होने वाले रथ पर आरूढ़ होकर हम कल्याण पथ पर अग्रसर हों॥१४॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्यप्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥१५॥

मार्ग, मरुस्थल, जल के बीच तथा युद्धक्षेत्र सभी हमारे लिए कल्याणप्रद हों । उस सेना के मध्य भी हमारा मंगल हो, जहाँ अस्त्रादि का प्रयोग हो रहा हो । संतान को उत्पन्न करने वाली स्त्रियों के गर्भस्थ शिशुओं तथा गृहों का भी मंगल हो । हे देवगण ! आप हमारे धनादि ऐश्वर्य लाभ के लिए मंगलमय हों॥१५॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥१६॥

जो पृथ्वी संग्रामगामी मनुष्यों के लिए मंगलकारिणी है तथा जो श्रेष्ठ ऐश्वर्यशालिनी होकर दूसरों के लिए सुख प्रदान करती है, ऐसी पृथ्वी हमारे घरों को भी संरक्षित करे । वही अरण्यप्रदेशों में सुरक्षा करे । हे देवों द्वारा संरक्षित पृथिवि ! आप हमारे लिए उत्तम आश्रययुक्त सिद्ध हों॥१६॥

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।

ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥

हे सम्पूर्ण देवगण एवं देवमाता अदिति ! ज्ञाननिष्ठ स्तोता प्लात ऋषि के पुत्र 'गय'ने आप लोगों को स्तुति प्रार्थनाओं द्वारा भली प्रकार से समृद्ध किया है। अविनाशी देवों के अनुग्रह से मनुष्य ऐश्वर्य- सम्पदा के स्वामी होते हैं । दिव्य गय, आप देवजनों की स्तुति करते हैं । १७॥

सूक्त ६४

ऋषि: गय: पलात
देवता – विश्वे देवा । छंद - जगती, १२, १६, १७ त्रिष्टुप

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृळाति कतमो नो मयस्करत्कतम ऊती अभ्या ववर्तति ॥१॥

यज्ञ में हमारी प्रार्थना को स्वीकार करने वाले किन देवों के प्रति किस प्रकार के मननीय स्तोत्र को, किस ढंग से हम प्रस्तुत करें ? कौन देव हमारे ऊपर अनुग्रह करके हमारे लिए कल्याणकारी सुख प्रदान करेंगे ? कौन देव हमारे संरक्षणार्थ हमारे यज्ञ में उपस्थित होंगे ?॥१॥

क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥२॥

हमारी आन्तरिक विवेकबुद्धि में अग्निहोत्रादि कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करती हैं। तेजसम्पन्न लोग देवों की कामना करते हैं, हमारी अभिलाणएँ देवानुगामी होती हैं। उन देवों के अतिरिक्त अन्य कोई

भी सुखदायक नहीं हैं, इन्द्रादि देवताओं में ही हमारी अभिलाषाएँ स्थित हैं॥२॥

नरा वा शंसं पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ॥३॥

हे साधको ! मनुष्यों द्वारा स्तुत्य, अगम्य पूषादेव की प्रार्थना करो तथा देवों में प्रज्वलित अग्नि की स्तुति करो। आप सभी अपनी वाणी से सूर्य, चन्द्र, यम, तीनों लोकों में संव्याप्त वायु, उषा, रात्रि और अश्विनीकुमारों की स्तुति करो॥३॥

कथा कविस्तुवीरवान्कया गिरा बृहस्पतिर्वावृधते सुवृक्तिभिः ।
अज एकपात्सुहवेभिर्ऋक्वभिरहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ॥४॥

क्रान्तदर्शी अग्निदेव किस प्रकार असंख्य स्तोताओं से युक्त होते हैं तथा किस वाणी से सम्माननीय होते है ? श्रेष्ठ स्तोत्र वाणियों से बृहस्पतिदेव हर्षित होकर बढ़ते हैं । अजएकपात् और अहिर्बुध्य देवता हमारे आवाहन काल में हमारे श्रेष्ठ मंत्रयुक्त स्तोत्रों का, हर्षित होकर श्रवण करे॥४॥

दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि ।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ॥५॥

हे अदिति (अखण्ड़ मातृ ऊर्जा-मदर फार्म आफ कास्मिक एनर्जी) ! दक्ष (सृजन में कुशल आद्य शक्त प्रवाह) के जन्म के समय आप प्रकाशमान मित्रावरुण की सेवा करती हैं। विविध प्रकार के स्वरूपों में जन्म लेने वाले सप्तहोता (सप्त वर्णयुक्त) अर्यमा (प्रकाश कण-फोटांस या सूर्य) अविचलित मार्ग से चलने वाले सुख साधनों से युक्त रथ से सम्पन्न होते हैं॥५॥

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥६॥

इन्द्रदेव के जो अश्व संग्राम काल में शत्रुओं के विशाल धन को स्वयमेव वहन करते हैं, जो यज्ञ काल में सदैव सहस्रों ऐश्वर्य प्रदान करते हैं और जो कुशल अश्वों के समान शीघ्र गति से पद-निक्षेप करते हैं, वे सभी हमारे आवाहन को सुनें । हमारे आमन्त्रण को वे कभी अस्वीकार नहीं करेंगे॥६॥

प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥७॥

हे स्तोतागण ! आप रथयोजक वायु, विपुल कर्मकर्ता इन्द्रदेव और पूषादेव की श्रेष्ठ स्तुति करके अपनी मैत्री के लिए उन्हें आमन्त्रित

करो। वे सभी समान मनों से युक्त होकर सर्वप्रेरक सवितादेव के यज्ञ में, प्रभातवेला में आकर विराजमान होते हैं॥७॥

त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन्पर्वताँ अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तृन्तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥८॥

तीन (द्‌यु, अन्तरिक्ष एवं भूलोक में) और सतत संचरित सात प्रवाह (अथवा २१ नदियाँ), सतत संचरित सात महासागर, वनस्पतियों, पर्वतों, अग्नि, कृशानु नामक सोमपालक गन्धर्व, वाण चालक अनुचर गन्धर्वो, पुष्य नक्षत्र, हविर्भाग योग्य रुद्र, रुद्रगणों में श्रेष्ठ रुद्र को हम यज्ञीय संरक्षण के लिए आवाहित करते हैं॥८॥

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥९॥

महती, पूजनीय और तरंगशालिनी त्रिसप्त धाराएँ हमारे संरक्षण के लिए आगमन करें । मातृ सदृश और जल प्रेरक ये सभी देवियाँ घृतवत् पुष्टिप्रद और मधु के समान पय (दूध या पोषक प्रवाह) हमें प्रदान करें॥९॥

उत माता बृहद्दिवा शृणोतु नस्त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः ।
ऋभुक्षा वाजो रथस्पतिर्भगो रण्वः शंसः शशमानस्य पातु नः ॥१०॥

तेजस्विनी देवमाता हमारे निवेदन को सुनें, देवपिता त्वष्टा अपने पुत्र देवों- देवपत्नियों के साथ हमारे वचनों के अभिप्राय को समझें । इन्द्र, वाज, रथपति भग एवं स्तुत्य मरुद्गण हम स्तोताओं का संरक्षण करें॥१०॥

रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः ।
गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वा सदा देवास इळया सचेमहि ॥११॥

दर्शन में मनोहारी मरुद्गण अन्नादि से परिपूर्ण आवासगृह के समान हैं। रुद्रपुत्र मरुद्गणों की प्रशंसनीय प्रार्थना अतिकल्याणप्रद होती है, मनुष्यों में हम गवादि पशुधन से युक्त होकर यशस्वी बनें । हे देवगण ! इस प्रकार हम सदैव अन्न आदि से सम्पन्न बनें॥११॥

यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ ॥१२॥

हे मरुद्गण, इन्द्र, देववृन्द, वरुण और मित्रगण ! जैसे गाय दूध से परिपूर्ण रहती है, वैसे ही आप हम लोगों के सुकृत को अभीष्ट फलों से युक्त करें । स्तोत्र को सुनकर रथारूढ़ होकर आप लोग हमारे यज्ञ में पधारे हैं॥१२॥

कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ ।
नाभा यत्र प्रथमं संनसामहे तत्र जामित्वमदितिर्दधातु नः ॥१३॥

हे मरुद्गणो ! आपने इससे पूर्व अनेक बार हमारे बन्धुत्व को स्थापित किया है । जिस नाभिरूप यज्ञ स्थल पर सबसे पहले हम आपकी अर्चना करें, वहाँ देवमाता अदिति हमें मनुष्यों के साथ हमारे बन्धुत्व को प्रगाढ़ करें॥१३॥

ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः ।
उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः ॥१४॥

सम्पूर्ण विश्व के निर्माणकर्ता, महिमामय, दीप्तिमान् और यजन योग्य द्यावा- पृथिवी प्रकट होने के साथ ही इन्द्रादि देवों को प्राप्त करते हैं। दोनों द्युलोक और पृथिवीलोक अनेक प्रकार के भरण-पोषणयुक्त अन्न जल से देवों और मनुष्यों को पोषित करते हैं। पालक देवों के सहयोग से विपुल तेज का सिंचन होता है॥१४॥

वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पनीयसी ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः ॥१५॥

जो वाणी सभी को बुलाने का माध्यम हैं, वह सभी श्रेष्ठ ऐश्वर्यों को संव्याप्त करती हैं, जो महान् गुणों की पालक, स्तुतियुक्त होकर देवों के निमित्त स्तोत्र प्रकट करती है, जहाँ सोम का अभिषवण करने वाली शिला भी सुशोभित होती हैं, ऐसे स्तवनीय यज्ञ में स्तोता लोग अपनी प्रार्थनाओं से देवताओं को यज्ञोन्मुख बनाते हैं॥१५॥

एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः ।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म ॥१६॥

इस प्रकार क्रान्तदशी बहुस्तुति युक्त, यज्ञ-विशेषज्ञ, पशु आदि ऐश्वर्य की कामना करने वाले, ज्ञाननिष्ठ ऋषि 'गय' ने श्रेष्ठ वचनों और स्तुतियों से दिव्य देवों का स्तवन किया॥१६॥

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥

हे देवगण एवं देवमाता अदिते ज्ञाननिष्ठ ऋतज्ञ स्तोता प्लात ऋषि के पुत्र गय ने स्तुतियों से आपको संवर्द्धित किया।देवों के अनुग्रह से मनुष्य ऐश्वर्य सम्पन्न बनते हैं। इसीलिए गय ने आप दिव्यजनों की स्तुति की॥१७॥

सूक्त ६५

ऋषि: वासुकर्णो वासुक:
देवता – विश्वे देवा । छंद - जगती, १५ त्रिष्टुप

अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत्सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

अग्नि इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, वायु, पूषा, सरस्वती, आदित्यगण, विष्णु, मरुद्गण, स्वर्ग, सोम, रुद्र, अदिति और ब्रह्मणस्पति ये सभी देव परस्पर संगठित होकर अपनी महिमा से इस महान् अन्तरिक्ष को समृद्ध करते हैं॥१॥

इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा समोकसा ।
अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥२॥

इन्द्र और अग्निदेव सज्जनों के संरक्षक हैं । वे संग्रामकाल में संयुक्त होकर अपनी शारीरिक सामर्थ्य से शत्रुओं को विनष्ट करते हैं तथा

व्यापक अन्तरिक्ष को अपने तेज से परिपूर्ण करते हैं। तेजस्वी सोम से उनका बल बढ़ता है॥२॥

तेषां हि मह्ना महतामनर्वणां स्तोमाँ इयर्म्यृतज्ञा ऋतावृधाम् ।
ये अप्सवमर्णवं चित्रराधसस्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः ॥३॥

महानतम, अपराजेय और ऋत (सत्य या यज्ञ) के वर्द्धक उन देवताओं के निमित्त हम यज्ञवेत्ता स्तुतिवाणी का प्रयोग करते हैं। अति आश्चर्यप्रद, ऐश्वर्य- अधिपति जो देव जल बरसाते हैं, वे ही श्रेष्ठ मित्ररूप देवता हमें ऐश्वर्य प्रदान करके श्रेष्ठता प्रदान करें॥३॥

स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।
पृक्षा इव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः ॥४॥

सबके नायक सूर्य, आकाशस्थ ग्रहों, नक्षत्रों, तेज, द्युलोक, पृथिवीलोक और व्यापक पृथ्वी को उन्हीं देवों ने स्वकीय सामर्थ्य से यथास्थान स्थित किया है । धनदाताओं के समान हीं साधकों को श्रेष्ठदान द्वारा ये देव मनुष्यों में श्रेष्ठ बनाते हैं, इसीलिए इनकी प्रार्थना की जाती है॥४॥

मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः ।
ययोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद्ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतौ ॥५॥

दानी मित्र और वरुण देव को हविष्यान्न समर्पित करें। ये दोनों सम्राट् मित्र और वरुणदेव कभी मानसिक त्रुटि नहीं करते, इनके धाम लोक कल्याणकारी सत्कर्मों से प्रकाशित हो रहे हैं। दोनों द्यावा-पृथिवी इनके समक्ष याचक के समान स्थित हैं॥५॥

या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः ।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥६॥

मार्ग स्वयं पार करने वाली यह दुधारू गौएँ स्तुतियों से प्रभावित होकर (दूध देकर) हमारे यज्ञ को परिपूर्ण करती हैं। हमारे द्वारा प्रशंसित ये गोएँ, दाता वरुणदेव एवं इतरदेवगणों को यजनीय पदार्थ प्रदान करें तथा हम देवत्व संवर्द्धक लोकसेवियों को संरक्षण प्रदान करें॥६॥

दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृध ऋतस्य योनिं विमृशन्त आसते ।
द्यां स्कभित्व्यप आ चक्रुरोजसा यज्ञं जनित्वी तन्वी नि मामृजुः ॥७॥

जो देव आत्म तेज से आकाश में संव्याप्त हैं, अग्निज्वाला रूपी जिह्वायुक्त एवं यज्ञ संवर्द्धक हैं, वे यज्ञस्थल में अपने-अपने निर्धारित स्थानों पर विराजमान होते हैं। वे अन्तरिक्ष को धारण करके अपने

तेजस्वी बल से अप् (गति अथवा जल) चक्र को चलाते हैं और यजनीय हविष्यान्न से अपने शरीर को सुशोभित करते हैं ॥७॥

परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा ।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत्पयो महिषाय पिन्वतः ॥८॥

सर्वव्यापी, सबके माता-पिता स्वरूप, सर्वप्रथम उत्पन्न, सहयोग भाव से रहने वाले द्युलोक और पृथिवीलोक दोनों ही यज्ञस्थल में रहते हैं। दोनों ही समान मन से युक्त होकर अति वन्दनीय वरुणदेव की प्रसन्नता के लिए घृतवत् पय स्रवित करते हैं॥८॥

पर्जन्यावाता वृषभा पुरीषिणेन्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ॥९॥

मेघ और वायु ये दोनों अभीष्ट कामनाओं के वर्षक और जल के धारणकर्ता हैं । इन्द्र, वायु, वरुण, मित्र, अर्यमा, अदितिपुत्र तथा आदित्य देवों को हम आवाहित करते हैं, जो देवता पृथ्वी, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक में प्रकट हुए हैं, उनका भी हम आवाहन करते हैं॥९॥

त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये ।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधसमिन्द्रियं सोमं धनसा उ ईमहे ॥१०॥

हे ऋभुगण ! जो सोमदेव आपके कल्याण के लिए त्वष्टा, वायु आदि देवों को आमन्त्रित करने वाली देवी उषा के समीप जाते हैं तथा जो बृहस्पति, श्रेष्ठ ज्ञानवान् और वृत्रहन्ता इन्द्रदेव के समीप जाते हैं, उन इन्द्रदेव की तुष्टि के लिए सोमदेव से हम ऐश्वर्य की कामना करते हैं॥१०॥

ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ॥११॥

देवताओं ने अन्न, गौ, अश्व, ओषधि, वनस्पतियों, व्यापक धरती, पर्वतों और जल को उत्पन्न किया है । वे ही आकाश में सूर्यदेव को स्थापित करने वाले हैं। श्रेष्ठ दानदाता ये देवगण भूलोक में सभी स्थानों पर विद्यमान हैं। उनके द्वारा ही श्रेष्ठ हितकारी यज्ञादि सत्कर्मों का प्रसार हुआ है। उनसे हम धन की कामना करते हैं॥११॥

भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं विश्वकायाव सृजथः ॥१२॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों ने भुज्यु को (जो समुद्र में गिरे हुए थे) बचाकर विपत्ति का निवारण किया और वधिमती को श्याव नामक पुत्रदान दिया। आपने विमद अषि को कमद्यु नामक श्रेष्ठ भार्या

प्रदान की तथा विश्वक ऋषि को विष्णाष्व नामक पुत्र प्रदान किया॥१२॥

पावीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन्वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरंध्या ॥१३॥

आयुध धारी, मधुरा माध्यमिक वाणी, आकाश धारणकर्ता अज़ एकपात् सिन्धु, आकाशस्थ जल, सम्पूर्ण देवता, विभिन्न कर्मों तथा ज्ञान से सम्पन्न सरस्वती हमारे स्तोत्रों को सुनें॥१३॥

विश्वे देवाः सह धीभिः पुरंध्या मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
रातिषाचो अभिषाचः स्वर्विदः स्वर्गिरो ब्रह्म सूक्तं जुषेरत ॥१४॥

अनेक सत्कर्मों और सद्ज्ञान से सम्पन्न मनुपुत्रों के यज्ञ में यजनयोग्य, अमरस्वरूप, सत्यज्ञाता, हवि को धारण करने वाले, यज्ञ में संयुक्त रूप से विद्यमान रहने वाले तथा सर्वज्ञ इन्द्रादि सम्पूर्ण देव हमारी प्रार्थनाओं और मंत्रोच्चारण द्वारा समर्पित उत्तम अन्न को ग्रहण करें॥१४॥

देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥

वसिष्ठ कुल में उत्पन्न श्रेषि ने अमरदेवों की अर्चना की। जो देवगण सभी लोकों में अपनी तेजस्विता से विद्यमान हैं, वे सभी देव हमें श्रेष्ठ यशस्वी अन्न दें । हे देवगण ! आप हमारे लिए कल्याणकारी होकर सदैव हमारा संरक्षण करें॥१५॥

सूक्त ६६

ऋषि: वासुकर्णो वासुक:
देवता – विश्वे देवा । छंद - जगती, १५ त्रिष्टुप

देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः ।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः ॥१॥

विपुल अन्न सम्पन्न, ज्योति के सृजेता, श्रेष्ठ ज्ञानवान् इन्द्रदेव को ज्येष्ठ मानने वाले, अमर और यज्ञ से संवर्द्धित होने वाले देवों को हम यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिए आवाहित करते हैं॥१॥

इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः ।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः ॥२॥

इन्द्रदेव द्वारा कर्मप्रेरित और वरुणदेव द्वारा श्रेष्ठ रीति से अनुमोदन युक्त होकर जिन देवों ने तेजस्वी सूर्यदेव का पथ-प्रशस्त किया, उन

शत्रु विनाशक इन्द्रदेव से युक्त मरुद्गणों के स्तोत्रों को हम बुद्धि में धारण करते हैं । ज्ञानीजन (उनके लिए) यज्ञायोजन सम्पन्न करें॥२॥

इन्द्रो वसुभिः परि पातु नो गयमादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु ।
रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नस्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविताय जिन्वतु ॥३॥

वसुओं के सहयोग से इन्द्र हमारे घर को संरक्षित करें । आदित्य गणों के साथ देवमाता अदिति हमें सुख प्रदान करें । मरुद्गणों के साथ रुद्रदेव हमें सुखी करें । त्वष्टादेव देवपत्नियों के साथ हमें हर्ष प्रदान करें॥३॥

अदितिर्द्यावापृथिवी ऋतं महदिन्द्राविष्णू मरुतः स्वर्बृहत् ।
देवाँ आदित्याँ अवसे हवामहे वसून्रुद्रान्त्सवितारं सुदंससम् ॥४॥

देवमाता अदिति, द्यावा-पृथिवी, महिमामय सत्यरूप अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण, आदित्यदेव आदि सम्पूर्णदेवों को वसु, रुद्र, सुकर्मा तथा सविता देव को हम अपने संरक्षणार्थ बुलाते हैं॥४॥

सरस्वान्धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना ।
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन्त्रिवरूथमंहसः ॥५॥

ज्ञानवान् समुद्र, कर्मनिष्ठ वरुण, पूषा, महिमायुक्त विष्णु, वायु, अश्विनीदेव, स्तोताओं के अन्न प्रदाता, ज्ञानी, पापकर्मियों के विध्वंसक और अविनाशी देवगण हमें तीन खण्ड़ों वाला दिव्य आश्रय (त्रितापों का नाश करने वाला, या आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक स्तर देने वाला या पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक में संरक्षण देने वाला) प्रदान करें॥५॥

वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः ।
वृषणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ॥६॥

यज्ञ हमारे अभीष्ट फलों को पूर्ण करें । यजनीय देवगण सुखों के प्रदाता हैं। देवगण, हविष्यान्न संग्रहकर्ता, यज्ञ के अधिष्ठाता, द्युलोक और पृथ्वीलोक, पर्जन्य के अधिपति तथा स्तोतागण सभी हमारी कामनाओं की पूर्ति में सहायक हों॥६॥

अग्नीषोमा वृषणा वाजसातये पुरुप्रशस्ता वृषणा उप ब्रुवे ।
यावीजिरे वृषणो देवयज्यया ता नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसतः ॥७॥

जलवर्षक, बहुस्तुत अग्निदेव और सोमदेव की हम अन्नादि प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। जो देव यज्ञीय कर्म में ऋत्विजों की अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करने वाले (कहलाकर) प्रशंसित होते हैं; ऐसे देव हमें तीन स्तरों वाला आश्रय प्रदान करें॥७॥

धृतव्रताः क्षत्रिया यज्ञनिष्कृतो बृहद्दिवा अध्वराणामभिश्रियः ।
अग्निहोतार ऋतसापो अद्रुहोऽपो असृजन्ननु वृत्रतूर्ये ॥८॥

कर्तव्य धर्म के निर्वाह में संकल्पित, शक्तिशाली, यज्ञ को शोभायमान करने वाले, महान् दीप्तिमान् यज्ञीय कर्मों को श्रेय देने वाले, अग्नि के आवाहक, सत्यवती, द्रोहभाव से रहित ऐसे गुणों से सम्पन्न देवों ने वृत्रासुर संग्राम के समय अप् (जल अथवा तेज) का सृजन किया॥८॥

द्यावापृथिवी जनयन्नभि व्रताप ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया ।
अन्तरिक्षं स्वरा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी नि मामृजुः ॥९॥

देवताओं ने द्युलोक और भूलोक को लक्ष्य करके अपने शुभकर्मों द्वारा जल, ओषधि और यजनीय पलाशादि वृक्षों से परिपूर्ण वनों को प्रकट किया तथा अपने तेज से स्वर्गलोक और अन्तरिक्ष को संव्याप्त किया। उन देवताओं ने यज्ञ के साथ स्वयं को समाहित करके यज्ञ को शोभायमान किया॥९॥

धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।
आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् ॥१०॥

दिव्यलोक के धारक, श्रेष्ठ आयुधों से युक्त ऋभुदेव, विशाल शब्द ध्वनि करने वाले वायु और पर्जन्य, वनस्पति हमारी स्तुतियों को विकसित करें । धनदाता भगदेव और अर्यमादेव हमारे यज्ञ में पधारें॥१०॥

समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्षमज एकपात्तनयित्नुरर्णवः ।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम ॥११॥

जल से परिपूर्ण समुद्र, महानद, अन्तरिक्ष, रजयुक्त पृथ्वी, अजएकपात्, सागर, गर्जनशील मेघ तथा अहिर्बुध्य (अन्तरिक्षस्थ देव) और प्रज्ञावान् सभी देवगण हमारे स्तोत्रों आवाहनों को सुनें॥११॥

स्याम वो मनवो देववीतये प्राञ्चं नो यज्ञं प्र णयत साधुया ।
आदित्या रुद्रा वसवः सुदानव इमा ब्रह्म शस्यमानानि जिन्वत ॥१२॥

हे देवगण ! हम मनु की सन्तान मनुष्य आपके निमित्त यज्ञीय सत्कर्मों को समर्पित करें, प्राचीनकाल से प्रचलित हमारी यज्ञीय परम्परा को आप भली प्रकार सम्पादित करें । हे आदित्यो, रुद्रो और श्रेष्ठ दानी वसुदेवो ! इन उच्चारित स्तोत्रों से आप हर्षित हों॥१२॥

दैव्या होतारा प्रथमा पुरोहित ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया ।
क्षेत्रस्य पतिं प्रतिवेशमीमहे विश्वान्देवाँ अमृताँ अप्रयुच्छतः ॥१३॥

अग्नि और आदित्य दोनों ही सर्वश्रेष्ठ पुरोहित रूप हैं, जो देवों के आवाहन कर्ता हैं, उनके निमित्त हम हविष्यान्न समर्पित करते हैं। यज्ञ के श्रेष्ठ कल्याणकारी पथ का हम अनुगमन करते हैं। हम अपने समीपस्थ क्षेत्रपति और अविनाशी एवं प्रमादरहित सम्पूर्ण देवों से धन की कामना करते हैं॥१३॥

वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत्स्वस्तये ।
प्रीता इव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु ॥१४॥

वसिष्ठ ऋषि के वंशजों ने ऋषि वसिष्ठ के समान ही मंगलकामना से देवों का पूजन- वन्दन किया । हे देवगण ! अपने प्रिय मित्रों के समान आप यहाँ आकर संतुष्ट होते हुए हमारी आकांक्षाओं को जानकर हमें गौ आदि धन प्रदान करें॥१४॥

देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥

वसिष्ठ वंशियों ने अविनाशी देवों की प्रार्थना की । जो देवगण सम्पूर्ण लोकों में अपने ज्योतिर्मय स्वरूप से स्थित हैं, वे सभी हमें श्रेष्ठ अन्न दें । हे देवो ! आप हमारे लिए कल्याणकारी होकर सदैव हमारा संरक्षण करें॥१५॥

सूक्त ६७

ऋषि: अयास्य अंगिरस:
देवता – बृहस्पति: । छंद - त्रिष्टुप

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१॥

हमारे पूर्वज अंगिरा ऋषियों ने सात छन्दों वाले विशाल स्तोत्र की रचना की, उनकी उत्पत्ति सत्य से हुई थी। संसार के कल्याणार्थ अयास्य ऋषि ने इन्द्रदेव को प्रशंसित करके एक पद के स्तोत्र की रचना की॥१॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥२॥

अंगिरा ऋषियों ने यज्ञ के श्रेष्ठ स्थल में जाने का निश्चय किया । वे सत्यव्रती, मनोभावों से सरल, दिव्य पुत्र, महाबलवान् तथा ज्ञानियों के समान आचरणनिष्ठ हैं॥२॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३॥

बृहस्पतिदेव के मित्रों ने हंसों के समान स्वर निकाले । उनके सहयोग से बृहस्पतिदेव ने पत्थरों के बने द्वारों को खोल दिया। अन्दर अवरुद्ध गौएँ आवाज करने लगीं। वे ज्ञानी, देवजनों के प्रति श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चस्वर से गान करने लगे॥३॥

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥

असत् (अव्यक्त) गुह्य क्षेत्र में गौएँ (प्रकाश किरणें-दिव्य वाणियाँ) छिपी हुई थीं। बृहस्पति (ज्ञान या वाणी के अधिपति) देव ने अन्धकार से प्रकाश (अज्ञान से ज्ञान) की कामना करते हुए नीचे के दो (अन्तरिक्ष एवं पृथ्वी) तथा ऊपर का एक (द्युलोक), इस प्रकार तीनों द्वारों को खोलकर गौओं(किरणों या वाणियों) को प्रकट किया॥४॥

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥५॥

गौओं के लिए अवरोधक बल के अधोमुख पुरों (संस्थानों) का भेदन करके बृहस्पतिदेव ने एक साथ तीनों बन्धन काटकर जलाशय (मेघों या अप् प्रवाहों) से उषा, सूर्य एवं गौओं (किरणों) को एक साथ प्रकट किया। वे (बृहस्पतिदेव) विद्युत् की तरह गर्जना करने वाले अर्क (प्राण के स्रोत) को जानते हैं॥५॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥६॥

जिस 'वल' (राक्षस) ने गौओं को छिपाया था, उसे इन्द्रदेव ने हिंसक हथियार के समान अपनी तीव्र हुंकार से छिन्न-भिन्न कर दिया। मरुद्गणों की सहायता के इच्छुक उन्होंने पणि (वल के अनुचर) को नष्ट किया और उस असुर से चुराई गई गौओं को मुक्त किया॥६॥

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥७॥

बृहस्पतिदेव ने सत्यस्वरूप, मित्ररूप, तेजस्वी और ऐश्वर्ययुक्त मरुद्गणों के सहयोग से गौओं के अवरोधक इस वल राक्षस को विनष्ट किया । वेदज्ञान के स्वामी ने वर्षणशील मेघों द्वारा प्रज्वलित एवं गतिशील मरुद्गणों के सहयोग से द्रव्यों को उपलब्ध किया॥७॥

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथोअवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥८॥

गौओं को उपलब्ध करके सत्यनिष्ठ मन से वे मरुद्गण अपने श्रेष्ठ कर्मों से बृहस्पतिदेव को गौओं के अधिपति बनाने के लिए प्रेरित हुए। बृहस्पतिदेव ने दुष्ट राक्षसों से गौओं के संरक्षणार्थ एकत्रित हुए मरुद्गणों के सहयोग से गौओं को विमुक्त किया॥८॥

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥९॥

अन्तरिक्ष में सिंह के समान बार-बार गर्जनशील, कामनाओं के वर्षक और विजयशील उन बृहस्पतिदेव को प्रोत्साहित करने वाले हम, मरुत् वीरों के युद्ध में कल्याणकारी स्तुतियों से उनकी प्रार्थना करते हैं॥९॥

यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१०॥

जिस समय बृहस्पतिदेव सभी सांसारिक अन्नों का सेवन करते हैं तथा आकाश में ऊपर जाकर उत्तम लोकों में प्रतिष्ठित होते हैं, तब बलशाली बृहस्पतिदेव को देवगण मुख (वाणी) से प्रोत्साहित करते हैं, वे विभिन्न दिशाओं में रहते हुए उन्हें उन्नतिशील बनाते हैं॥१०॥

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११॥

हे देवगण ! अन्न प्राप्ति के निमित्त की गई हमारी प्रार्थनाओं को आप सफलता प्रदान करें। आप अपने आश्रय से हम साधकों को संरक्षण करें, तत्पश्चात् हमारी सभी प्रकार की विपदाओं का निवारण करें । हे सम्पूर्ण विश्व को हर्षित करने वाले द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों हमारे निवेदन के अभिप्राय को समझें॥११॥

इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धून्देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥१२॥

सर्वसमर्थ बृहस्पतिदेव ने विशाल जल भण्डार रूप मेघों के सिर को छिन्न-भिन्न किया । जल के अवरोधक शत्रुओं को विनष्ट किया । सप्तधाराओं को प्रवाहित एवं संयुक्त किया । हे द्यावा-पृथिवि ! आप देवताओं के साथ आगमन करके हमारा संरक्षण करें॥१२॥

सूक्त ६८

ऋषि: अयास्य अंगिरस:
देवता – बृहस्पति: । छंद - त्रिष्टुप

उदप्रुतो न वयो रक्षमाणा वावदतो अभ्रियस्येव घोषाः ।
गिरिभ्रजो नोर्मयो मदन्तो बृहस्पतिमभ्यर्का अनावन् ॥१॥

जिस प्रकार धान्यक्षेत्र से पक्षियों को उड़ाते समय संरक्षक कृषक शब्द-ध्वनि करते हैं, जैसे मेघों का गर्जन बार-बार होता है, जैसे पर्वतों से झरने वाले झरने तथा मेघ से गिरने वाली जल धाराएँ शब्द करती हैं, उसी प्रकार ऋत्विज् लोग बृहस्पति देव की निरन्तर स्तुति करते हैं॥१॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भग इवेदर्यमणं निनाय ।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥२॥

अंगिरा पुत्र बृहस्पतिदेव ने गुप्त स्थान में रहने वाली गौओं (वाणियों अथवा किरणों) को प्रकाशित किया। भगदेव के समान ही वे अपनी तेजस्विती से संव्याप्त हुए। जिस प्रकार मित्र लोग, दम्पती (स्त्री और पुरुष) के पारस्परिक योग (मिलन) करने में सहायक होते हैं, वैसे ही उन्होंने गौओं को जन साधारण के लिए उपलब्ध करायो । हे बृहस्पतिदेव ! जिस प्रकार अश्वों (शक्ति कणों) को तेजगति में दौड़ाया जाता है, वैसे ही गौओं (पोषक किरणों या दिव्य वाणियों) को गतिशील बनाएँ॥२॥

साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः ।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३॥

कल्याणकारी दूध देने वाली, निरन्तर गतिशील, काम्य स्पृहायुक्त, श्रेष्ठ वर्णयुक्त, निन्दारहित रूपवती गौओं को बृहस्पति देव उसी प्रकार पर्वतों (गुप्त स्थानों) से शीघ्रतापूर्वक बाहर निकालें, जिस प्रकार कृषक संगृहीत धान्य से जौ को बाहर निकाल कर बोते हैं॥३॥

आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥४॥

जैसे आकाश में उल्काएँ प्रकट होती हैं, उसी प्रकार पूज्य बृहस्पति देव ऋत (सत्य या यज्ञ) के योनि (उद्भव स्थलों में मधुर रसों को गिराते

हैं। उन्होंने मेघों से गौओं (किरणों) को मुक्त किया तथा पृथ्वी की त्वचा को इस प्रकार भेदा जैसे वर्षा की बूंदें भेदती हैं॥४॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥५॥

जिस प्रकार वायु जल की पीठ पर स्थित शैवाल (काई) को दूर हटाता है, जैसे वायुदेव ही मेघों को दूर हटाते हैं, उसी प्रकार बृहस्पतिदेव ने विचारपूर्वक वलासुर के आवरण को हटाकर गौओं को बाहर निकाला॥५॥

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६॥

बृहस्पतिदेव के अग्नितुल्य प्रतप्त और उज्ज्वल आयुध ने, जिस समय 'वल' के अस्त्र को छिन्न-भिन्न किया, उसी समय बृहस्पतिदेव ने उन गौओं को अपने अधिकार क्षेत्र में ले लिया। जैसे दाँतों द्वारा चबाये गये अन्न को जीभ प्राप्त करती है, वैसे ही पणियों का वध करके बृहस्पतिदेव ने गौसमूह को प्राप्त किया॥६॥

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत् ।
आण्डेव भित्त्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७॥

गुफा में छिपाकर रखी गई गौओं के रंभाने की आवाज को सुनकर बृहस्पतिदेव को गौओं की उपस्थिति का आभास हुआ। जिस प्रकार पक्षी के अण्डों को फोड़कर गर्भ रूप बच्चे बाहर आते हैं, वैसे ही बृहस्पतिदेव पर्वत (मेघों-अवरोधों) को तोड़कर गौओं (किरणों) को बाहर निकाल लाये ॥७॥

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम् ।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद्बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥८॥

बृहस्पतिदेव ने पर्वतीय गुफा में बँधी हुई सुन्दर गौओं को उसी दयनीय अवस्था में देखा, जिस प्रकार न्यून जल की मात्रा में मछलियाँ व्यथित होती हैं। जैसे वृक्ष से सोमपात्र के निर्माण हेतु काष्ठ निकाला जाता है, वैसे ही बृहस्पतिदेव ने विभिन्न प्रकार के बन्धनों को तोड़कर गौओं को मुक्त किया॥८॥

सोषामविन्दत्स स्वः सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।
बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥९॥

बृहस्पतिदेव ने गौओं की मुक्ति के लिए उषा को प्राप्त किया। उन्होंने सूर्य और अग्नि के माध्यम से अन्धकार को विनष्ट किया । जैसे अस्थि

को भेदकर मज्जा प्राप्त की जाती है, वैसे ही असुर बल को भेदकर (बृहस्पतिदेव ने) गौओं (किरणों) को बाहर निकाला॥९॥

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१०॥

जिस प्रकार हिमपात पद्मपत्रों को हरण (नाश) करता है, उसी प्रकार गौओं का अपहरण किया गया। बृहस्पतिदेव के द्वारा वलासुर से उनको मुक्त कराया गया । ऐसा कार्य किसी दूसरे द्वारा किया जाना सम्भव नहीं। सूर्य और चन्द्र दोनों ही इसका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं॥१०॥

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ॥११॥

जिस प्रकार कृष्णवर्ण घोड़े को स्वर्ण के आभूषणों से सुशोभित किया जाता है, वैसे ही देवताओं ने द्युलोक को नक्षत्रों से विभूषित किया है। उन्होंने रात्रिकाल में अन्धकार तथा दिवस में प्रकाश को स्थापित किया। उसी समय बृहस्पतिदेव ने पर्वत को तोड़कर गौओं को प्राप्त किया॥११॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।

बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥१२॥

आकाश में उत्पन्न हुए बृहस्पतिदेव के निमित्त ये स्तुतिगान किये गये हैं, हम सादर उन्हें प्रणाम करते हैं। जिन के लिए नानाविध चिरपुरातन ऋचाओं को बार-बार उच्चारित किया हैं, वे बृहस्पतिदेव हमें गौएँ, घोड़े, वीर सन्ताने तथा सेवकों सहित अन्नादि प्रदान करें॥१२॥

सूक्त ६९

ऋषि: सुमित्रो वाघ्रयश्व
देवता – अग्नि । छंद - त्रिष्टुप, १-२ जगती

भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य संदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः ।
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् ॥१॥

प्रशंसा योग्य अग्निदेव का दर्शन वध्र्यश्व के लिए कल्याणप्रद हो, उनका प्राकट्य कल्याणकारी हो तथा यज्ञ की ओर आगमन सुखद हो । जिस समय सुमित्र लोग अग्नि की यज्ञकुण्ड में स्थापना करते हैं, उस समय अग्निदेव घृताहुति से प्रज्वलित होते हैं तथा हम उनकी अर्चना करते हैं॥१॥

घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम् ।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्य इव रोचते सर्पिरासुतिः ॥२॥

वाध्र्यश्व वंशज अग्निदेव घृताहुति से संवर्द्धित होते हैं, घृत ही अग्निदेव का आहार रूप है तथा वह ही उनको पोषक हैं । घृताहुति पाकर

अग्निदेव तेजस्वी रूप में अति प्रज्वलित होते हैं तथा घृताहुति से ही अग्निदेव सूर्य सदृश प्रकाशमान होते हैं॥२॥

यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः ।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः ॥३॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार आपकी ज्वालारूपी किरणों को 'मनु' प्रदीप्त करते हैं, उसी प्रकार 'सुमित्र' भी आपको प्रदीप्त करते हैं। यह तेजस्विता नवीन है । आप धन-सम्पन्न होकर सुशोभित हों । आप हमारी प्रार्थनाओं को प्रेमपूर्वक ग्रहण करें। आप शत्रु सेना का विध्वंस करें तथा हमें अन्न युक्त यशस्विता प्रदान करें॥३॥

यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व ।
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे ॥४॥

हे अग्निदेव ! ऋत्विज् वध्र्यश्व ने आपको ही सर्वप्रथम हवियों से प्रज्वलित किया । आप हमारे स्तोत्रों को भी ग्रहण करें । आप हमारे निवास गृहों तथा देहों के संरक्षक बने तथा हमारी सन्तानों को सुरक्षित करें। आपने उदार हृदय से जो हमें प्रदान किया है, उसका संरक्षण भी करें॥४॥

भवा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदभिमातिर्जनानाम् ।
शूर इव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम ॥५॥

हे वाज्र्यश्व वंशज अग्निदेव ! आप यशस्वी बनकर हमारे संरक्षक बनें । हिंसक शक्तियाँ आपको पराभूत न कर सकें, क्योंकि आप स्वयं रिपुओं को पराजित करने वाले हैं। आप वीरों के समान धैर्यशाली, बलिष्ठ, शत्रुओं के पराभवकर्ता तथा शत्रुसंहारक हैं । वाज्र्यश्व अग्नि के नामों (विशेषणों) की घोषणा मैं 'सुमित्र' करता हूँ॥५॥

समज्र्या पर्वत्या वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ ।
शूर इव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः ॥६॥

हे अग्निदेव !आप पर्वतीय धन-सम्पदा को दास असुरों से जीतकर आर्य श्रेष्ठों को प्रदान करते हैं। आप शूर-वीर योद्धाओं के समान ही धैर्यवान् तथा शत्रुओं के पराभवकर्ता हैं । आप युद्ध की इच्छा से आने वाले शत्रुओं को पराभूत करें॥६॥

दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
द्युमान्द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु ॥७॥

जो अग्निदेव विस्तृत तन्तुओं से युक्त (विस्तृत वंश वाले) प्रमुख दानी, सहस्र स्थानों के आच्छादन कर्ता, अनेक मार्गों से जाने वाले (विभिन्न रीतियों से स्थापित), महिमामय, तेजस्वियों में तेजस्विता युक्त हैं; वे देव प्रमुख ऋत्विजों द्वारा सुशोभित होते हैं । हे अग्निदेव ! आप देवसाधक सुमित्र वंशियों के घरों को प्रज्वलित करें॥७॥

त्वे धेनुः सुदुघा जातवेदोऽसश्चतेव समना सबर्धुक् ।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः ॥८॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आपके समीप श्रेष्ठ..: अति सहजता से दूध देने वाली गौ हैं, उसका दोहन करने में कोई कठिनाई नहीं । वहीं आदित्य के सहयोग से अमृत के समान दूध देने वाली है । देवसाधक सुमित्रवंशीय प्रमुख अत्विज दक्षिणा युक्त होकर आपको प्रदीप्त करते हैं॥८॥

देवाश्चित्ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन् ।
यत्सम्पृच्छं मानुषीर्विश आयन्त्वं नृभिरजयस्त्वावृधेभिः ॥९॥

हे सर्वज्ञ वाध्यश्व अग्निदेव ! आपकी महिमा का गान अमर देवगण भी करते हैं। जिस समय मनस्वी प्रजाजनों ने देवों के सहयोग से असुरता के संहारक के सम्बन्ध में आपके समीप जाकर प्रश्न किया, तो आपने नायक बनकर अपने वृद्धिकर्ता देवों के साथ विघ्नकारी शत्रुओं को पराजित किया॥९॥

पितेव पुत्रमबिभरुपस्थे त्वामग्ने वध्र्यश्वः सपर्यन् ।
जुषाणो अस्य समिधं यविष्ठोत पूर्वाँ अवनोर्व्राधतश्चित् ॥१०॥

हे अग्निदेव ! जिस प्रकार पिता, पुत्र का पालन-पोषण करते हैं, वैसे ही मेरे पिता वध्र्यश्व ने अपने समीप रखकर हविष्यान्न समर्पित करके आपकी अर्चना की। हे तरुण रूप अग्निदेव ! आपने हमारे पिता

वक्ष्यश्व से समिधा प्राप्त करके विघ्नकारी रिपुओं को विनष्ट किया॥१०॥

शश्वदग्निर्वध्र्यश्वस्य शत्रून्नृभिर्जिगाय सुतसोमवद्भिः ।
समनं चिददहश्चित्रभानोऽव व्राधन्तमभिनद्वृधश्चित् ॥११॥

अग्निदेव, सोम अभिषवण क्रिया करने वाले ऋत्विगुगणों के सहयोग से वध्यश्च के रिपुओं पर सदैव विजय प्राप्त कर रहे हैं । हे अद्भुत तेजस्वी अग्निदेव ! आप सावधानी से हिंसक शत्रु का दहन करते हैं । आप स्वयं तेजस्वी ज्वालाओं से युक्त होकर अनिष्टकारी शत्रुओं को नष्ट कर देते हैं॥११॥

अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात्प्रेद्धो नमसोपवाक्यः ।
स नो अजामीँरुत वा विजामीनभि तिष्ठ शर्धतो वाध्र्यश्व ॥१२॥

ये वक्ष्यश्व अग्निदेव शत्रुनाशक और प्राचीनकाल से अति तेजस्वी तथा प्रदीप्त रूप हैं । वे नमन योग्य वचनों से स्तुत्य हैं । हे वयश्च कुल में उत्पन्न अग्निदेव ! आप हमारे विद्रोही शत्रुओं और विजातीय हिंसकों को पराजित करें॥१२॥

सूक्त ७०

ऋषिः सुमित्रो वाघ्रयश्व
देवता – आप्रीसूक्तं । छंद - त्रिष्टुप

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।
वर्ष्मन्पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप उत्तर वेदी पर प्रदत्त हमारी इस समिधा को ग्रहण करें और घृत सिंचन की आकांक्षा करें । हे श्रेष्ठ ज्ञानी अग्निदेव ! आप पृथ्वी के ऊँचे स्थान पर हमारे दिनों को श्रेष्ठ, सुखकर एवं आनन्दमय बनाने के लिए देवयज्ञ द्वारा ज्वालाओं के साथ ऊर्ध्वगामी हों॥१॥

आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् ॥२॥

देवों के अग्रणी और मनुष्यों द्वारा स्तुत्य अग्निदेव विभिन्न वर्गों से युक्त अश्वों के साथ इस यज्ञ में पदार्पण करें । अतिपूजनीय देवों में प्रमुख

अग्निदेव यज्ञीय मार्ग से सम्मानित होकर स्तवनों के सहयोग से देवताओं के निमित्त आहुतियों को ग्रहण करें॥२॥

शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
वहिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेना देवान्वक्षि नि षदेह होता ॥३॥

हविदाता यजमान हविष्यान्न वहन करने के लिए शाश्वत अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं कि हे अग्निदेव ! आप श्रेष्ठ अश्वों और उत्तम, रथ से इन्द्रादि देवों को यज्ञ में लेकर आएँ और होता बनकर इस यज्ञ में प्रतिष्ठित हों॥३॥

वि प्रथतां देवजुष्टं तिरश्चा दीर्घं द्राघ्मा सुरभि भूत्वस्मे ।
अहेळता मनसा देव बर्हिरिन्द्रज्येष्ठाँ उशतो यक्षि देवान् ॥४॥

हे बर्हि नामक अग्निदेव ! देवों द्वारा सेवनीय बर्हि (यज्ञ) का विस्तार हो, इसकी कालावधि बढ़े तथा हमारे लिए श्रेष्ठ सुगन्धि उत्पन्न हो । हे देवस्वरूप अग्निदेव ! आप क्रोध भावना से रहित होकर प्रसन्नचित्त हो, आहुतियों के अभिलाषी इन्द्रादि देवों की अर्चना करें॥४॥

दिवो वा सानु स्पृशता वरीयः पृथिव्या वा मात्रया वि श्रयध्वम् ।
उशतीर्द्वारो महिना महद्भिर्देवं रथं रथयुर्धारयध्वम् ॥५॥

हे दिव्य द्वार (यह सम्बोधन यज्ञ के लिए ही हैं) ! आप दिव्यलोक के ऊँचे स्थान को स्पर्श करें तथा उन्नतशील हों। आप पृथ्वी के समान उत्पाद्यशक्ति से सम्पन्न होकर विस्तारित हों । देवाकांक्षी और रथेच्छ बनकर आप अपनी महिमा से देवों द्वारा अधिष्ठित हों तथा विहार योग्य साधनभूत रथ को धारण करें॥५॥

देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ॥६॥

दिव्यलोक की सुन्दर और तेजस्वी पुत्री उषा तथा रात्रि यज्ञ वेदों में प्रतिष्ठित हों । हे अभिलाषिणी और श्रेष्ठ वैभव युक्त देवियो ! आपके विस्तृत और निकटस्थ स्थानों में हवि की अभिलाषा से प्रेरित देवता विराजमान हों॥६॥

ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन्विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम् ॥७॥

जिस समय सोमाभिषव के निमित्त पत्थर ऊपर उठाते हैं और जब महिमायुक्त अग्निदेव अति प्रदीप्त होते हैं तथा जिस समय देवों के लिए प्रीतिजनक धाम (हविर्धारक यज्ञ पात्र) यज्ञस्थल में उपस्थित किये जाते हैं, तब हे पुरोहित और ऋत्विक् – दोनों ज्ञानी पुरुषो ! इस सत्कर्मरूपी यज्ञ से आप हमें ऐश्वर्य- सम्पन्न बनाएँ॥७॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सीदत चकृमा वः स्योनम् ।
मनुष्वद्यज्ञं सुधिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त ॥८॥

हे इडादि तीन देवियो ! आपके निमित्त ही ये सुखद आसन बिछाये गये हैं। आप इन श्रेष्ठ कुशा के आसनों पर स्थान ग्रहण करें । इडा, तेजस्विनी सरस्वती और दिव्य-स्वरूपा भारती ने जैसे मनु द्वारा सम्पादित यज्ञ में आहुतियों को ग्रहण किया था, वैसे हमारे इस यज्ञ में उत्तम रीति से, आदर भाव से प्रदत्त आहुतियों को ग्रहण करें ॥८॥

देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वाँ उशन्यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥९॥

है त्वष्टादेव ! आपने मंगलमय स्वरूप को धारण किया है। आप हम अङ्गिराओं के मित्रस्वरूप हैं। हे ऐश्वर्यदाता ! ऐसे गुणवान् आप श्रेष्ठ सम्पदाओं के स्वामी हैं। आप हविष्यान्न की अभिलाषा से देवभाग को जानते हुए देवों के निमित्त अन्न प्रदान करें॥९॥

वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
स्वदाति देवः कृणवद्धवींष्यवतां द्यावापृथिवी हवं मे ॥१०॥

हे वनस्पतिदेव ! आप ज्ञानवान्-विद्वान् हैं। आप अग्नि की जिह्वा से संयुक्त होकर देवताओं के समीप हविष्यान्न पहुँचाने में सहयोग करें । अग्निदेव हव्य में सन्निहित रसों का सेवन करें तथा हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों को देवों तक ले जाएँ। हमारे यज्ञ की सुरक्षा द्युलोक और पृथ्वी पर करें॥१०॥

आग्ने वह वरुणमिष्टये न इन्द्रं दिवो मरुतो अन्तरिक्षात् ।
सीदन्तु बर्हिर्विश्व आ यजत्राः स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥

हे अग्निदेव ! आप द्युलोक(स्वर्ग) और अन्तरिक्ष (आकाश) लोक से इन्द्र, वरुण तथा मरुत् आदि देवताओं को हमारे यज्ञ के निमित्त लेकर आएँ । सभी यज्ञाभिलाषी देवता आने पर आसनों पर विराजमान हों । वे अविनाशी देवगण स्वाहा शब्द से प्रदत्त आहुतियों द्वारा आनन्दित हों॥११॥

सूक्त ७१

ऋषि: बृहस्पतिरांगिरस
देवता – ज्ञानम् । छंद - त्रिष्टुप, ९ जगती

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥१॥

ऋषि बृहस्पति स्वगत (अपने मन में) कहते हैं – प्रारम्भिक स्थिति में पदार्थों का नाम रखकर जो अभिव्यक्ति की जाती है, वह ज्ञान का सर्वप्रथम सोपान हैं। इनका जो शुद्ध और दोषों से रहित ज्ञान (पदार्थों को गुण धर्म आदि) है, वह गुफा (अनुभूति) में छिपा हुआ है । वह अन्त: प्रेरणा से ही प्रादुर्भूत होता है॥१॥

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥२॥

सूप से सत्तुओं को स्वच्छ करने के समान मेधावीजन जिस समय अपनी बुद्धि, ज्ञान की सामर्थ्य से भाषा को सुसंस्कृत करते हैं, तब मित्र, आत्मीयजन मित्रता के भावों को समझते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी वाणी में मंगलकारी लक्ष्मी (समृद्धि बढ़ाने वाली शक्ति) का निवास होता है॥२॥

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥३॥

ज्ञानी लोग श्रेष्ठ वाणी के अभिप्राय को यज्ञीय (परमार्थ परक) प्रवृत्तियों के माध्यम से ही प्राप्त (स्वीकार) करते हैं। उन्होंने तत्त्वज्ञानी अषयों के अन्त: करण प्रविष्ट हुई वाणी (भाषा) को उपलब्ध किया। तत्पश्चात् उस भाषा (ज्ञान) को उपलब्ध करके उन्होंने उसे प्रसारित किया, इस प्रकार की उस वाणी (भाषा) को उन्होंने (गायत्र्यादि सात छन्दों में) स्तुतियों के रूप में प्रस्तुत किया॥३॥

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥४॥

(प्रकृति में अवस्थित ज्ञानगम्य गूढ़ तथ्यों को) कोई-कोई तो (स्थूल दृष्टि से देखकर भी उनका दर्शन नहीं कर पाते (तत्त्वज्ञान नहीं जान पाते) । अन्य लोग (ऋषियों द्वारा प्रकट सूत्रों को सुनकर भी नहीं

समझ पाते; परन्तु जैसे पति के सामने पत्नी अपना रूप नहीं छिपाती , उसी प्रकार यह वाग्देवी सुपात्र के सामने अपना स्वरूप खोल देती है॥४॥

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥५॥

विद्वानों में किसी-किसी ज्ञानी को यह प्रतिष्ठा है कि वही श्रेष्ठ-शाब्दिक भावों को ग्रहण करने में सक्षम है, वाणी (वेद-ज्ञान) को प्रकट-फलित करने में उनकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। उनमें कुछ तो भाषा के फल (अर्थ) और फूल (अभिप्राय) से रहित, मात्र सुनने-अध्ययन तक उसे सीमित मान बैठते हैं, वे दूधरहित बाँझ गौ के समान ही वाणी (भाषा) से मात्र प्रपञ्च करते हैं॥५॥

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥६॥

जो व्यक्ति दिव्यज्ञान की धारा के साथ मित्र भाव (आत्मीय स्नेही त्याग देते हैं, उन्हें दिव्य वाणी में कोई उल्लेखनीय भागीदारी नहीं मिल पाती । वह जो कुछ भी सुनता है, उसके लिए सब निरर्थक होता है तथा उससे उसे सत्कर्म का मार्ग भी प्राप्त नहीं होता॥६॥

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥७॥

दर्शनशक्ति-सम्पन्न, श्रोत्रशक्ति युक्त, समान ज्ञान से युक्त मित्र भी मन से अनुभव जन्य ज्ञान में उसी प्रकार एक समान नहीं होते, जिस प्रकार कुछ जलाशय मुख तक गहरे जल वाले, कुछ कटि तक जल वाले तथा कुछ स्नान करने के लिए उपयुक्त होते हैं॥७॥

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद्ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥८॥

जब समान योग्यता युक्त वेदज्ञ विद्वान्, हृदय से जानने योग्य (अनुभव) निरूपण के लिए एकत्रित होते हैं, उस समय किसी व्यक्ति को तो ज्ञान में अल्पज्ञ जानकर छोड़ दिया जाता है तथा कुछ स्तोत्रविद् मर्मज्ञ विद्वान् बनकर विचरण करते हैं॥८॥

इमे ये नार्वाङ्न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥९॥

जो विद्वत्ता से रहित अज्ञानी मनुष्य इस लोक में वेदज्ञ विद्वानों और परलोक में देवताओं के साथ यज्ञादि सत्कर्मों से रहित हैं, जो न तो ऋत्विज् (स्तोता) हैं, न सोम यज्ञकर्ता हैं, वे ज्ञाननिष्ठ नहीं हो सकते ।

अपितु वे पापबुद्धि से (अनुभूतिरहित ज्ञान अपनाकर) वाणी से प्रपञ्च रचते हैं अथवा हल आदि (कृषि कर्म) द्वारा स्थूल श्रम के कार्यों का ताना-बाना बुनते हैं॥९॥

सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः ।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥१०॥

सभी समान विचारधारा वाले मित्र, सभा में प्रमुखता प्रदान करने वाले यशस्वी सोम (दिव्य प्रवाह) से आनन्दित होते हैं । अन्नों को देने वाले तथा पापकर्मों को इनके बीच समाप्त करने वाले सोमदेव इन मनुष्यों को शक्ति प्रदान करने के लिए सक्षम हैं॥१०॥

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्करीषु ।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥११॥

एक स्तोता वेदमन्त्रों के यज्ञीय अनुष्ठान में विधि-विधान के प्रयोग सहित विराजमान होता है । दूसरा शक्करी, ऋचाओं में गायत्री आदि छन्दों का सामगान करता है , तीसरा ब्रह्मानामक विद्वान् प्रायश्चित्त आदि विधान की व्याख्या करता है तथा चौथा अध्वर्यु-पुरोहित यज्ञकर्म के नानाविध कार्यों का विशेष रूप से निर्वाह करता है॥११॥

सूक्त ७२

ऋषि: लौक्यो बृहस्पति:, बृहस्पतिरांगिरस, दाक्षायणी आदितिर्वा
देवता – देवा: । छंद - अनुष्टुप

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया ।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥१॥

हम देवों के प्रादुर्भाव का वर्णन उत्तम वाणी से करते हैं। इन उक्थों (स्तोत्रों) के प्रकट होने से बाद में आने वाले युगों का दर्शन प्राप्त होगा॥१॥

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ॥२॥

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्मणस्पति (परब्रह्म अथवा आद्य सत्ता अदिति) ने कर्मकार के समान ही इन्हें पकाया-परिपक्व किया। देवों के पूर्व

अर्थात् आदि सृष्टि में अव्यक्त ब्रह्म से व्यक्त हुए नामरूपात्मक देवशक्तियों की उत्पत्ति हुई॥२॥

देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत ।
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥३॥

देवों के युग से पूर्व (आदि काल में) असत् (अव्यक्त) से सत् (अस्तित्ववान्) की उत्पत्ति हुई। इसके बाद आशा (संकल्पशील मनस्तत्वों का विकास हुआ। तब ऊपर की ओर बढ़ने वाले अथवा अपने चरणों का विस्तार करने वाले (ऊर्जा कणों) का जन्म हुआ॥३॥

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥४॥

भूः (आदि प्रवाह) से ऊर्ध्वगतिशील (सूक्ष्म ऊर्जाकणों) की संरचना हुई तथा भुवः(होने की) आशा (संकल्प शक्ति) का विकास हुआ । अदिति (अखण्ड आदि सत्ता) से दक्ष (सृजन की कुशलता युक्त प्रवाह) उत्पन्न हुए। पुनः दक्ष से अदिति (अखण्ड पृथ्वी या प्रकृति) का जन्म हुआ॥४॥

अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव ।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥५॥

हे दक्ष ! आपकी दुहिता (कन्या या दक्ष की क्षमता का दोहन करने वाली प्रकृति) उत्पन्न हुई, उसी प्रक्रिया से अमृत बन्धन से बँधे देवों या अन्य नक्षत्रादि का जन्म हुआ है॥५॥

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।
अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥६॥

हे देवो ! जब आप इस विस्तृत सलिल (व्योम अथवा मूल अप्तत्व में प्रतिष्ठित हुए , तब वहाँ आपके नर्तन से तीव्र रेणु (पदार्थकण) प्रकट हुए॥६॥

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ।
अत्रा समुद्र आ गूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ॥७॥

जब देवों ने गतिशील होकर भुवनों (बने हुए पदार्थों या लोकों) को पुष्ट किया; तब इस समुद्र (सूक्ष्मकणों के समुद्र अथवा व्योम) में गुह्य सूर्य स्वाभाविक ढंग से धारण किया गया॥७॥

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि ।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥८॥

अदित (अखण्ड आदि सत्ता) के शरीर से आठ पुत्र उत्पन्न हुए। वह अदिति मार्तण्ड (सूर्य) को परे (दूर आकाश में) स्थापित करके सात के साथ देवों के पास गयी॥८॥

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम् ।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्ताण्डमाभरत् ॥९॥

पूर्व (प्रारम्भिक) युग में अदिति सात पुत्रों के साथ आती हैं। हे अदिति (अखण्ड प्रकृति) ! प्रजा के सृजन तथा विनाश के क्रम में मार्तण्ड (सूर्य या महासूर्य) आपको ही परिपूर्ण करता रहता है॥९॥

सूक्त ७३

ऋषि: गौरिवीति: शाक्त्य:
देवता – इन्द्र । छंद - त्रिष्टुप

जनिष्ठा उग्रः सहसे तुराय मन्द्र ओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रं मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरं दधनद्धनिष्ठा ॥१॥

जब धारण करने वाली माता ने वीर इन्द्र को जन्म दिया, तब मरुतों ने भी उनकी प्रशंसा करते हुए कहा-आप वन्दनीय, ओजवान् तथा महास्वाभिमानी हैं। आप पराक्रम के लिए तथा शत्रु विनाश के लिए प्रचण्ड शक्ति-सम्पन्न होकर जन्मे हैं॥१॥

द्रुहो निषत्ता पृशनी चिदेवैः पुरू शंसेन वावृधुष्ट इन्द्रम् ।
अभीवृतेव ता महापदेन ध्वान्तात्प्रपित्वादुदरन्त गर्भाः ॥२॥

शत्रु विध्वंसक इन्द्रदेव के समीप अनुशासित सैन्यदल बैठा हुआ है। गतिशील मरुद्गणों ने इन्द्रदेव को अनेक स्तोत्रों से उत्साहित किया। जिस प्रकार गोष्ठ में गौएँ घिरी रहती हैं और आच्छादन के हटते ही

बाहर आ जाती हैं, उसी प्रकार गर्भ अर्थात् वृष्टि-जल, व्यापक बादलों के अधिकार के बीच से स्वयमेव बाहर आ गया॥२॥

ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिदत्र ।
त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन्दधिषे अश्विना ववृत्याः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपके दोनों चरण महिमामय हैं । जिस समय आप आगे जाते हैं, तो ऋभु लोग अति उत्साहित होते हैं तथा जो देवगण आपके साथ हैं, वे भी प्रोत्साहित होते हैं । है इन्द्रदेव ! आप सहस्रों वृकों को मुख में धारण करते हैं तथा अश्विनीकुमारों को भी स्फूर्तिवान् बनाते हैं॥३॥

समना तूर्णिरुप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि ।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्राश्विना शूर ददतुर्मघानि ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! संग्राम क्षेत्र में पहुँचने की शीघ्रता की स्थिति में भी आप यज्ञ में पहुँचते हैं, उस समय आप अश्विनीकुमारों के साथ मैत्री करते हैं। हमारे लिए आप असंख्य सम्पदाओं को धारण करते हैं। हे पराक्रमी वीर ! आपके सेवक अश्विनीकुमार भी हमें धन-सम्पदा प्रदान करें॥४॥

मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम् ।

आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत्तमांसि ॥५॥

इन्द्रदेव यज्ञ में आनन्दित होकर गतिशील मित्रस्वरूप मरुद्गणों के साथ यजमान को ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करते हैं। इन्द्रदेव ने यजमान के निमित्त दुष्ट दस्यु की छलपूर्ण माया को विनष्ट किया, उन्होंने जल वृष्टि की तथा अन्धकार को दूर किया॥५॥

सनामाना चिद्ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथानः ।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥६॥

इन्द्रदेव सभी रिपुओं को समानरूप से विनष्ट करते हैं। जिस प्रकार उन्होंने उषा के शकट को विनष्ट किया, उसी प्रकार वृत्रासुर का वध किया । हे इन्द्रदेव ! आप अपने देदीप्यमान और पराक्रमी मरुद्गणों के सहयोग से वृत्र का संहार करते हैं । शत्रुओं के हृष्ट-पुष्ट शरीरों को भी अपने नष्ट किया॥६॥

त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषये विमायम् ।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आपने अषियों के यज्ञ में विघ्न उत्पन्न करने वाले अथवा आपके धन को चाहने वाले नमुचि असुर को विनष्ट किया। ऋषियों के कल्याणार्थ आपने विध्वंसक नमुचि के छल-प्रपंचों को समाप्त

किया। आपने देवों के मध्य जनसाधारण के लिए सुखदायी और सहज गमन योग्य पथ-प्रशस्त किया॥७॥

त्वमेतानि पप्रिषे वि नामेशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ ।
अनु त्वा देवाः शवसा मदन्त्युपरिबुध्नान्वनिनश्चकर्थ ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस संसार को जल अथवा तेज से संव्याप्त करते हैं। आप सम्पूर्ण विश्व के अधिपति हैं। आप अपने हाथ में वज्रास्त्र को धारण किये रहते हैं। सभी देवता आप शक्तिशाली देव की अर्चना करते हैं। आपने ही जल से भरपूर बादलों के मुख को (बरसने के लिए) अधोगामी बनाया॥८॥

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९॥

अन्तरिक्ष में देदीप्यमान वज्रधारी इन्द्रदेव का वज्र उपासकों के लिए मधुर जल (पोषकरस) प्रेरित करता है। पृथ्वी पर अवमान वहीं जल गौओं में दूध के रूप में और वनस्पतियों में पोषक रस के रूप में विद्यमान हैं॥९॥

अश्वादियायेति यद्वदन्त्योजसो जातमुत मन्य एनम् ।
मन्योरियाय हर्म्येषु तस्थौ यतः प्रजज्ञ इन्द्रो अस्य वेद ॥१०॥

वसा मदन्त्युपरिब्याप्त करते हैं। आप सबकी अर्चना कर कुछ विद्वानों का कथन है कि इन्द्र की उत्पत्ति का कारण अश्व (आदित्य) है, तथापि हम तो इन्हें शक्ति से उत्पादित ही मानते हैं अथवा ये क्रोधाग्नि से उत्पन्न हुए हैं, ऐसी मान्यता है । इसीलिए वे (शत्रुओं से) संघर्ष करने के लिए तत्पर रहते हैं। इन्द्रदेव किससे उत्पन्न हुए, वस्तुत: इस तथ्य को तो वे ही जानते हैं॥१०॥

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः ।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान्निधयेव बद्धान् ॥११॥

संचरणशील सूर्य-किरणें बलशाली इन्द्रदेव के समीप जाती हैं। प्रियमेध अथवा यज्ञप्रेमी अषि (इन्द्रदेव के प्रति) याचनात हैं, ये देव बँधे हुओं को मुक्ति दें, अन्धकार को दूर करें तथा हमारी आँखों को दिव्य प्रकाशयुक्त बनाएँ॥११॥

सूक्त ७४

ऋषि: गौरिवीति: शाक्त्य:
देवता – इन्द्र । छंद - त्रिष्टुप

वसूनां वा चर्कृष इयक्षन्धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।
अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः ॥१॥

ऐश्वर्य दान के निमित्त इन्द्रदेव को यज्ञों द्वारा प्रेरित किया जाता है। वे द्युलोक और पृथ्वी निवासी देवताओं और मनुष्यों द्वारा आकर्षित किये जाते हैं। संग्राम क्षेत्र में धन को जीतने के लिए जो गतिशील (अश्व सदृश) हैं, उनको आकृष्ट करते हैं तथा शत्रुओं के संहार में जो सुप्रसिद्ध हैं, वे भी इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं॥१॥

हव एषामसुरो नक्षत द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम् ।
चक्षाणा यत्र सुविताय देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः ॥२॥

इन अङ्गिराओं के आवाहन की पुकार ने आकाश को गुंजायमान कर दिया । इन्द्रदेव और अन्न के अभिलाषी देवताओं ने इच्छाशक्ति से

पृथ्वी को प्राप्त किया। पृथ्वी पर पणियों द्वारा चुराई गई गौओं को देखते हुए देवताओं ने अपने कल्याणार्थ अन्तरिक्ष में सूर्य के समान ही अपने उत्तम तेज को प्रकाशित किया॥२॥

इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।
धियं च यज्ञं च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्यमसामि ॥३॥

जो देवगण सबके कल्याणार्थ यज्ञों में श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, उन्हीं अविनाशी देवों की प्रार्थनाएँ की जाती हैं। वे देवगण हमारी प्रार्थनाओं और यज्ञ को सिद्ध करते हुए हमें प्रचुर मात्रा में विशिष्ट ऐश्वर्य-सम्पदा प्रदान करें॥३॥

आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! जो शत्रुओं का गोधन जीत लेना चाहते हैं, वे आपकी वन्दना करते हैं । यह विस्तृत भूमि एक बार उत्पन्न हुई, किन्तु बार-बार (हरीतिमा-अन्नादि) उत्पन्न करती है । जो इस महान् भूमि को सहस्र धाराओं से दुहना चाहते हैं, वे भी इन्द्रदेव की अर्चना करते हैं॥४॥

शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।

ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ॥५॥

हे सत्कर्मनिष्ठ याजको ! किसी के समक्ष शीश को न झुकाने वाले, युद्धेच्छुक, शत्रुओं के पराभवकर्ता , महिमामय, ऐश्वर्यशाली, शोभन स्तुतियों से युक्त , विभिन्न युद्ध विद्याओं के ज्ञाता तथा मनुष्यों के कल्याणार्थ वज्रधारी इन्द्रदेव को अपने संरक्षणार्थ आवाहित करो॥५॥

यद्वावान पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत् ॥६॥

शत्रुओं की नगरियों के विध्वंसक इन्द्रदेव ने जिस समय अति सामर्थ्यशाली शत्रु का वध किया, उसी समय वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ने जल से पृथ्वी को परिपूर्ण किया, तब सभी लोग इस विचारधारा से युक्त हुए कि इन्द्रदेव ही अति सामर्थ्यवान् और सबके अधिपति हैं । वे हमारी सभी कामनाओं को पूर्ण करते हैं॥६॥

सूक्त ७५

ऋषिः सिन्धुक्षित् प्रैयमेधः
देवता – नद्य । छंद - जगती

प्र सु व आपो महिमानमुत्तमं कारुर्वोचाति सदने विवस्वतः ।
प्र सप्तसप्त त्रेधा हि चक्रमुः प्र सृत्वरीणामति सिन्धुरोजसा ॥१॥

हे जलदेव ! हम सेवाभावी यजमानों के घरों (यज्ञों) में आपकी श्रेष्ठ महिमा का कथन करते हैं। ये सरिताएँ सात-सात करके तीन स्थानों (पृथ्वी, आकाश, धुलोक) से प्रवाहित होती हैं। इन प्रवाहों में सिन्धु ही सबसे ओज- सम्पन्न है ॥१॥

प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥२॥

हे सिन्धु ! जब आप हरियाली से परिपूर्ण प्रदेश की ओर प्रवाहित हुईं, उस समय वरुणदेव ने आपके गमनार्थ मार्ग को विस्तारित किया ।

आप पृथ्वी के ऊपर श्रेष्ठ मार्ग से प्रवाहित होती हैं तथा आप ही इन जीवधारी प्राणियों के जीवन की प्रमुख आधाररूपा हैं॥२॥

दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥३॥

भूमि के ऊपर गर्जनशील आपके स्वर आकाश को गुंजायमान करते हैं। आप अपनी (प्रचण्ड) लहरों से प्रवाहित होती हैं। जिस समय सिन्धु महानदी वृषभ के समान प्रचण्ड शब्द करती हुई आगमन करती है, उस समय ऐसा आभास होता है कि मानो आकाश (मेघ) से घनघोर गर्ज-तर्जन के साथ जल वर्षा हो रहीं हो॥३॥

अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥४॥

जिस प्रकार माताएँ अपने शिशु के पास जाती हैं और दुधारू गौएँ बछड़े के समीप जाती हैं। उसी प्रकार अन्य नदियाँ शब्द करती हुई सिन्धु की ओर गमन करती हैं। युद्धकर्ता राजा के समान ही आप सहगामिनी (सिञ्चन करने वाली) दो धाराओं को लेकर अग्रगमन करती हैं॥४॥

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।

असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥५॥

हे गंगा, यमुना, सरस्वतीं, शुतुद्री (सतलज), परुष्णी (राव), असिमी (चिनाव) के साथ मरुवृधा (चिनाव और झेलम के मध्य में अथवा चिनाव की पश्चिम दिशा वाली मरुवर्दवन नामक सहायक नदी), वितस्ता (झेलम), सुषमा (सोहान) और आर्जीकीया (व्यास) आदि नदियो ! आप सभी हमारे इन स्तोत्रों को सुनें॥५॥

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहल्वा सरथं याभिरीयसे ॥६॥

हे सिन्धु महानदी ! आप पहले तुष्टामा (सिन्धु की सहायक नदी) के साथ प्रवाहित हुई । पुनः सुस, रसा और येत्या (ये तीनों सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदियाँ हैं) से सम्मिलित हुई । आप क्रमु (कुर्रम), गोमती को कुभा (काबुल नदी) और मेहलु (सिन्धु की पश्चिमी सहायक नदी) को अपने साथ सम्मिलित करती हैं। इन सभी नदियों के साथ एक ही रथ पर सवार होकर चलती हैं॥६॥

ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि ।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ॥७॥

सिन्धु महानदी सरलगामिनी, श्वेतवर्णा और प्रदीप्तमती हैं, जो अति तीव्रगति से जल के साथ प्रवाहित होती हैं। अगाध महानदी सिन्धु, नदियों में सबसे वेगवती हैं। यह अद्भुत वेगशील घोड़ी के सदृश हैं तथा सुन्दर स्त्री के समान देखने में सुन्दर हैं॥७॥

स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥८॥

सिन्धु महानदी श्रेष्ठ अश्वों, उत्तम रथ, सुन्दर वस्त्र (परिधान), सुवर्णमय आभूषण, पुण्यवती, अन्नवती तथा पशुलोमवाली है। सिन्धु नित्य तरुणी और अनेक तन्तुओं वाली है । वह श्रेष्ठ ऐश्वर्यशालिनी (सौभाग्यवती) सिन्धु मधुवर्धक पुष्पों से आच्छादित है॥८॥

सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ ।
महान्ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ॥९॥

सिन्धु महानदी सुखद और अश्वयुक्त रथ को जोतती हैं । उस रथ से वे हमें अन्नादि प्रदान करें । इस यज्ञ में सिन्धु के रथ की महान् महिमा का गान किया गया है । सिन्धु का रथ हिंसारहित, यशस्वी और महानता युक्त है ॥९॥

सूक्त ७६

ऋषि: सर्प ऐरावतो जरत् कर्ण:
देवता – ग्रावाण । छंद - जगती

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा सदःसदो वरिवस्यात उद्भिदा ॥१॥

हे मावा ! हम अन्नप्रदात्री उषा के आते ही आपको प्रयोगार्थ सज्जित करते हैं । आप सोम देकर इन्द्र, मरुद्गण और द्यावा-पृथिवी को अनुकूल बनाएँ। दोनों कालों (रात-दिन) में संयुक्त रहने वाली ये द्यावा-पृथिवीं प्रत्येक आवास में आतिथ्य स्वीकार कर सभी क्षेत्रों को श्रेष्ठ अन्न-धनादि से परिपूर्ण करें॥१॥

तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनात्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।
विदद्ध्यर्यो अभिभूति पौंस्यं महो राये चित्तरुते यदर्वतः ॥२॥

हे ग्रावा ! आप सोम को शोधित करके प्रस्तुत करें । हे अद्रि (भेदनशील) ! आप हाथों से धारण किये जाने वाले (सधे हुए) घोड़े के

समान अनुशासित हो जाते हैं। सोम अभिषव क्रिया में संलग्न यजमान शत्रु जय की सामर्थ्य उपलब्ध करते हैं। इस सोम से अश्व (शक्ति) एवं प्रचुर ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है॥२॥

तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ॥३॥

जिस प्रकार पुरातन काल में 'ऋषि मनु' के यज्ञ में सोमरस प्रस्तुत किया गया था, उसी प्रकार इस सवन (यज्ञ) में अभिषुत सोम, जल अथवा कर्म में समाविष्ट हो । गौओं (किरणों या शरीर के पोषक प्रवाहों) एवं अश्वों (इन्द्रियों अथवा शक्ति संस्थानों) को शुद्ध करने तथा त्वष्टा-पुत्रों (सृजन-सामर्थ्यों) के कार्य में इसी अविनाशी सोमरस का उपयोग किया जाता है॥३॥

अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ॥४॥

हे ग्रावा ! आप अनिष्टकारी असुरों का संहार करें । पाष देवता 'निति' का निवारण करें । दुर्मति को दूर हटाएँ। आप हमें सुसन्तति युक्त ऐश्वर्य प्रदान करें । देवों के लिए हर्ष प्रदायक यशस्विता से हमें सम्पन्न बनाएँ॥४॥

दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्योऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ॥५॥

जो दिव्यलोक से भी अधिक तेजस्वी, सुधन्वा के पुत्र विभु से भी अधिक क्रियाशील, वायु से भी अधिक सोमरस अभिषवण क्रिया में कुशल तथा अग्नि से भी अधिक अन्न (पोषण) प्रदाता हैं,(हे स्तोता !) देवताओं की तुष्टि के लिए, ऐसे मावा (सोम अभिषवण तंत्र) की अर्चना करें॥५॥

भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वाघोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ॥६॥

यज्ञ प्रयोग में ऋत्विग्गण सभी ओर से स्तोत्र ध्यान करते हुए शीघ्रतापूर्वक इच्छित सोमरस को निकालते हैं, उसमें यशस्वी झावा हमारे लिए सोम को उपलब्ध करायें। इस दिव्य कर्म में मंत्रों के माध्यम से हमें दिव्यता-सम्पन्न बनाएँ॥६॥

सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते ।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥७॥

ये अद्रि (पाषाण, पर्वत या मेघ) सोमरस को क्षरित करते हैं। वे सोम के रस का दोहन करते हैं। वे स्तोत्र की कामना से प्रेरित होकर अग्नि-

सेचन के लिए सोमरस को निकालते हैं। अभिषव कर्त्ता ऋत्विग्गण अपने मुख से अवशिष्ट सोम का पान करके पवित्रता धारण करते हैं॥७॥

एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ॥८॥

हे ऋत्विजो ! हे अद्रि ! आप श्रेष्ठ अभिषव क्रिया सम्पन्न करने वाले हैं। आप इन्द्रदेव के निमित्त सोम के रस को अभिषवित करते हैं। देवलोक की प्राप्ति के लिए आप हमें सर्वश्रेष्ठ विभूतियों को प्रदान करें। हर आवास तथा पार्थिव देहधारी के लिए योग्य सम्पदाएँ उत्पन्न करें॥८॥

सूक्त ७७

ऋषि: स्यूमररश्मिभार्गव
देवता – मरुत: । छंद - त्रिष्टुप, ५ जगती

अभ्रप्रुषो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः ।
सुमारुतं न ब्रह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे ॥१॥

बादलों से झरने वाले जल के बिन्दुओं के समान ही स्तुतियों से प्रशंसित मरुद्गण धन-सम्पदा प्रदान करते हैं। हविष्यान्न युक्त यज्ञ के सदृश ही सृष्टि रचना के माध्यम मरुद्गण हैं। इन महान् शोभायुक्त मरुतों की अर्चना यथार्थ में हम नहीं कर पाये हैं, उनको शोभा देने वाले स्तोत्र भी हमें नहीं रच सके हैं॥१॥

श्रिये मर्यासो अञ्जीँरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।
दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः ॥२॥

ये मरुत् मरणशील थे, इन्होंने श्रेयस्कर कार्यों द्वारा स्वयं को दिव्य विभूतियों से सज्जित किया। एकत्रित अनेक सी सेनाएँ भी मरुतों को पराभूत नहीं कर सकतीं। (मत्रों द्वारा प्रेरित न किये जाने के कारण) ये दिव्यलोक के गतिशील पुत्र, आगे नहीं बढ़ते। ये अदिति पुत्र आक्रामक क्षमता होने पर भी बढ़ते नहीं हैं॥२॥

प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिच्रे अभ्रान्न सूर्यः ।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो न मर्या अभिद्यवः ॥३॥

ये मरुद्गण अपनी महान् सामर्थ्य से द्युलोक और पृथ्वी से भी अति सामर्थ्यशाली हैं। इसी प्रकार सूर्यदेव भी अन्तरिक्ष से महिमामय हैं, वे शक्तिशाली वीरों के समान स्तोत्रों की कामना करते हैं। दुष्टों के विनाशक मनुष्यों के समान ये पराक्रमी हैं॥३॥

युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ॥४॥

हे मरुद्गण ! आप जब आपसी प्रतिघात करने वाले जल के बहने के समान शीघ्रता से जाते हैं, तब पृथ्वी कम्पित (व्यथित) नहीं होती और न ही क्षीण होती है। यह विश्वरूप यज्ञीय हविष्यान्न आपके निमित्त ही प्रस्तुत किया जाता हैं। आप अन्नदाता मनुष्यों के समान ही हमारे लिए सुखदायक बनकर, संगठित होकर आएँ॥४॥

यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः ॥५॥

हे मरुद्गण ! आप सभी रश्मियों (रस्सियों या किरणों) से योजित या गतिशील बने तथा सूर्यादि के आलोक के समान तेजस्वी, गरुड़ पक्षी के समान स्वयमेव अपनी यशस्विता को विस्तारित करने वाले, पराक्रम शाली और शत्रुओं के प्रति उग्र हों । पथिकों के समान आप सभी ओर गतिशील होकर जल वर्षा करते हैं॥५॥

प्र यद्वहध्वे मरुतः पराकाद्यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो वसवो राध्यस्याराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोत ॥६॥

हे मरुद्गण ! जिस समय आप अतिदूरस्थ देश (स्थान) से आते हैं, उस समय आप महिमामय, उत्तम, धारण-योग्य ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। हे वसुगण ! आप विद्रोही शत्रुओं को दूर से ही गुप्त रीति से विनष्ट करें॥६॥

य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत्स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥७॥

जो लोग अनुष्ठान सम्पन्न करके मरुद्गणों की भाँति सार्थक दान देते हैं, वे श्रेष्ठ धन, वीर सन्ताने, अन्न तथा आयुष्य प्राप्त करते हैं। ऐसे व्यक्ति वीरों के समान ही यज्ञ में स्थान पाते हैं॥७॥

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शम्भविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥८॥

वे मरुद्गण यज्ञमय हैं और यज्ञों के संरक्षक हैं। वे सबके लिए कल्याणकारी भावनाओं से युक्त होकर आदित्य नाम से सम्बोधित हैं, वे हमें संरक्षण प्रदान करें । यज्ञ स्थल में रथ द्वारा शीघ्रता से गमन की इच्छा युक्त वे मरुद्गण हमारी स्तुतियों को संरक्षित करें। यज्ञ में वे अभीष्ट हविष्यान्न की अभिलाषा करते हैं॥८॥

ऋग्वेद – दशम मंडल

सूक्त ७८

ऋषि: स्यूमररश्मिभार्गव
देवता – मरुत: । छंद - त्रिष्टुप, २,५ -७ जगती

विप्रासो न मन्मभिः स्वाध्यो देवाव्यो न यज्ञैः स्वप्नसः ।
राजानो न चित्राः सुसंदृशः क्षितीनां न मर्या अरेपसः ॥१॥

वे मरुद्गण, ज्ञानी स्तोताओं के समान स्तुतियों से प्रशंसित होकर हमारी प्रार्थना पर ध्यान दें। देवताओं को हर्षित करने वाले यज्ञीय कार्यों में रत रहें । वे मरुद्गण राजाओं के समान पूजनीय, दर्शनीय तथा गृहपति मनुष्यों के समान पापरहित और शोभायमान हैं॥१॥

अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः ।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते ॥२॥

जो मरुद्गण अग्नि के समान तेजस्वितायुक्त, स्वर्णिम वक्ष वाले, वायु के सदृश, दूसरों के सहायक, शीघ्र गतिशील, श्रेष्ठ ज्ञाता, ज्ञानियों के समान वन्दनीय, शोभन नेत्रों से युक्त, श्रेष्ठ सुखों के सम्पादक तथा सोम के समान ही शोभायुक्त मुख वाले हैं, ऐसे गुणों से सम्पन्न वे देव मरुद्गण यज्ञ में उपस्थित हों॥२॥

वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः ।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ॥३॥

जो मरुदेव वायु के समान ही रिपुओं को प्रकम्पित करने वाले और वेगशील हैं, जो अग्नियों की ज्वालाओं के समान तेजस्वी और कान्तियुक्त हैं। कवचधारी शूरवीरों के समान शौर्य-सम्पन्न तथा पितरगणों (माता-पिता) की वाणियों के समान उदारदानी हैं, वे मरुद्गण हमारे यज्ञ में पधारें॥३॥

रथानां न येऽराः सनाभयो जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः ।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ॥४॥

मरुद्गण रथचक्र के अरों के समान एक नाभि (धुरी) में बँधे हुए हैं। वे विजयशील शूरों के समान तेजस्वितायुक्त हैं, जो दानी मनुष्यों के समान जल सेचक हैं तथा सुन्दर स्तोत्रों के गान कर्ताओं के समान श्रेष्ठ शब्दावली से युक्त हैं, वे मरुद्गण हमारे यज्ञ में पधारें॥४॥

अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो दिधिषवो न रथ्यः सुदानवः ।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः ॥५॥

जो मरुद्गण अश्वों के समान श्रेष्ठ, वेगशील और ऐश्वर्यशालियों के समान रथों के स्वामी तथा उदार दान हैं, वे नदियों के जल के समान नीचे की ओर प्रवाहित होने वाले तथा नाना रूपों से युक्त हैं और अंगिराओं के समान सामगान कर्ता हैं । वे मरुद्गण हमारे यज्ञ में पदार्पण करें॥५॥

ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।
शिशूला न क्रीळयः सुमातरो महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ॥६॥

वे मरुद्गण जल उत्पादनकर्ता मेघों के समान जल-प्रवाहों के निर्माता हैं, वे सभी प्रकार के शत्रुओं के विध्वंसक, शस्त्रों के सदृश सदैव आदरणीय हैं। वे मरुद्गण श्रेष्ठ स्नेहयुक्त माताओं के समान क्रीड़ा परायण हैं। तथा विशाल जनसमूह के समान गतिमान् एवं तेजस्वी हैं; वे मरुद्गण हमारे यज्ञों में पधारें॥६॥

उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥७॥

उषाकाल की रश्मियों के सदृश वे मरुद्गण यज्ञाश्रयी हैं, मंगलकामी, श्रेष्ठ जनों के समान वे अलंकृत हैं। नदियों के समान निरन्तर गतिशील, तेजस्वी आयुधों के धारणकर्ता तथा दूरगामी मार्गों के जाने वाले पथिकों के तुल्य वेगपूर्वक दूरस्थ देशों को लाँघते हुए जाते हैं। वे मरुद्गण हमारे यज्ञों में पधारें॥७॥

सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन्मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥८॥

हे देवस्वरूप मरुद्गण ! आप हमारी स्तुतियों से आनन्दित होकर हमें श्रेष्ठ ऐश्वर्य और श्रेष्ठ रत्नों के स्वामी बनायें। आप हमारे, मैत्रीभावनाओं से युक्त स्तोत्रपाठ को स्वीकार करें । आप सदैव रत्नों का दान करते रहे हैं॥८॥

सूक्त ७९

ऋषि: सौचीकोऽग्निवैश्वानरो, सप्तिर्वाजंभरो
देवता – अग्नि: । छंद - त्रिष्टुप

अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥१॥

मरणधर्मा मनुष्यों में अविनाशी अग्नि की महान् सामर्थ्य को हम अनुभव करते हैं। देखते हैं) । इनके दोनों जबड़े-ज्वालाएँ नानारूपों में पूर्णता प्राप्त हैं । वे चर्वण क्रिया किये बिना ही काष्ठादि पदार्थों का सेवन करते हैं॥१॥

गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।
अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु ॥२॥

इन अग्निदेव का शीर्ष गुप्त स्थानों में विद्यमान है । इनके नेत्र भिन्न-भिन्न स्थानों में हैं। वे चर्वण क्रिया किये बिना ज्वालाओं से समिधाओं

का सेवन करते हैं । इनके निमित्त विभिन्न पदों-चरणों में हाथ उठाकर नमन करते हुए इन्हें तृप्त करते हैं॥२॥

प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ॥३॥

ये अग्निदेव बालक की भाँति पृथ्वी माता पर चलते हुए लताओं (के भक्षण या पोषण) की कामना करते हैं, वे उनकी जड़ों तक पहुँचते हैं । वे अग्निदेव स्वयं को पृथ्वी की भीतरी सतह में पक्वान्न के समान दीप्तिमान् काष्ठ का सेवन करने की विधि को जानते हैं॥३॥

तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।
नाहं देवस्य मर्त्यश्चिकेताग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः ॥४॥

हे द्युलोक और पृथिवीं लोक ! आपसे हम यथार्थ सम्मत बात कहते हैं कि अरणियों द्वारा उत्पादित यह गर्भस्थ शिशुरूप अग्निदेव अपने माता-पिता रूप दोनों अरणियों (लकड़ियों) का सेवन करते हैं। हम मनुष्य, देवस्वरूप अग्नि की विशेषताओं से अनभिज्ञ हैं। हे वैश्वानर ! आप नानाविध ज्ञान सम्पन्न, प्रकृष्ट ज्ञानयुक्त हैं॥४॥

यो अस्मा अन्नं तृष्वादधात्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति ।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षेऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् ॥५॥

जो याज्ञिक इस अग्नि के निमित्त शीघ्रतापूर्वक हविष्यान्न समर्पित करते हैं, गोघृत अथवा सोमरस से अग्नि में यज्ञ करते हैं तथा समिधाओं से अग्नि को प्रज्वलित करते हैं। इसे अग्निदेव अपनी हजारों प्रकार की असीम ज्वालाओं से देखते हैं। हे अग्निदेव ! आप हमारे लिए सभी ओर से अनुकूल हों॥५॥

किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन्क्रीळन्हरिरत्तवेऽदन्वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः ॥६॥

हे अग्निदेव ! क्या आपने कभी देवताओं के प्रति क्रोध किया है? जिस प्रकार चर्म अथवा लता को शस्त्र से खण्ड-खण्ड़ किया जाता है, उसी प्रकार कहीं क्रीड़ा करते हुए और कहीं न करते हुए हरणशील अग्निदेव खाद्य सामग्री का सेवन करते समय इनके खण्ड-खण्ड कर डालते हैं॥६॥

विषूचो अश्वान्युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।
चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः ॥७॥

जंगल में वर्द्धित ये अग्निदेव सर्वत्र गतिमान् , सरल मार्गगामी भोगाकांक्षी अश्वों (इन्द्रियों अथवा गतिमानों) को वश में करके सुनियोजित करते हैं। हमारे मित्ररूप अग्निदेव वसुओं (प्राणों) से

प्रदीप्त होकर प्रस्फुटित होते हैं । वे पर्वो (दिनों, कालखण्डों अथवा काष्ठादि) से सम्पन्न होकर प्रवर्द्धित होते हैं॥७॥

सूक्त ८०

ऋषि: सौचीकोऽग्निवैश्वानरो, सप्तिर्वाजंभरो
देवता – अग्नि: । छंद - त्रिष्टुप

अग्निः सप्तिं वाजम्भरं ददात्यग्निर्वीरं श्रुत्यं कर्मनिःष्ठाम् ।
अग्नी रोदसी वि चरत्समञ्जन्नग्निर्नारीं वीरकुक्षिं पुरंधिम् ॥१॥

अग्निदेव वेगशील और संग्राम में शत्रुओं को जीतने वाले अन्नप्रदाता अश्व (शक्ति-प्रवाह) प्रदान करते हैं। वे शक्तिशाली, वेदज्ञ और यज्ञरूप सत्कर्म-प्रेमी पुत्र प्रदान करते हैं। अग्निदेव द्युलोक और भूलोक दोनों को प्रकाशित करते हुए संचरित होते हैं । ये अग्निदेव स्त्री को वीर सन्तानों की जन्मदात्री बनाते हैं॥१॥

अग्नेरप्नसः समिदस्तु भद्राग्निर्मही रोदसी आ विवेश ।
अग्निरेकं चोदयत्समत्स्वग्निर्वृत्राणि दयते पुरूणि ॥२॥

अग्नि प्रज्वलन क्रिया के लिए उपयोगी समिधा (काष्ठ) कल्याणकारी हो । अग्निदेव अपने तेज से द्युलोक और पृथ्वी में सभी जगह

संव्याप्त हैं । अग्निदेव युद्ध-क्षेत्र में अपने साधक के सहायक बनकर उसे विजयी बनाते हैं तथा अनेक रिपुओं को विनष्ट करते हैं॥२॥

अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम् ।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत्सम् ॥३॥

अग्निदेव ने वास्तव में ही उन प्रख्यात ऋषि जरत्कर्ण की सुरक्षा की। उन्होंने उन्हें जल से बाहर करके जरूथ नामक राक्षस को भस्मीभूत किया था । अग्निदेव ने प्रतप्त कुण्ड में गिरे हुए ऋषि अत्रि को उबारा था। अग्निदेव ने ही नृमेध ऋषि को सन्तति प्रदान की थीं॥३॥

अग्निर्दाद्द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति ।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥४॥

अग्निदेव श्रेष्ठ, ज्योतिष्मान् ऐश्वर्य प्रदान करते हैं । अग्निदेव मन्त्रद्रष्टा ऋषि के लिए सहस्रों गौएँ देते हैं । यजमानों द्वारा प्रदत्त आहुतियों को अग्निदेव दिव्यलोक में ले जाते हैं, इससे उनका ज्वालारूपी शरीर अनेक लोकों में विस्तृत होता है॥४॥

अग्निमुक्थैर्ऋषयो वि ह्वयन्तेऽग्निं नरो यामनि बाधितासः ।
अग्निं वयो अन्तरिक्षे पतन्तोऽग्निः सहस्रा परि याति गोनाम् ॥५॥

सर्वप्रथम श्रेषगण अग्निदेव की वेदमन्त्रों द्वारा प्रार्थना करते हैं। मनुष्यगण समरक्षेत्र में शत्रुओं से पीड़ित अवस्था में विजय पाने के लिए अग्निदेव का ही आवाहन करते हैं। आकाश में उड़ते हुए पक्षी रात्रि में अग्नि को देखते हैं । अग्निदेव हजारों गौओं (किरणों) से युक्त होकर चतुर्दिक् विचरण करते हैं॥५॥

अग्निं विश ईळते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो वि जाताः ।
अग्निर्गान्धर्वीं पथ्यामृतस्याग्नेर्गव्यूतिर्घृत आ निषत्ता ॥६॥

मनुष्यों में जन साधारण भी अग्निदेव की अर्चना करते हैं। राजा नहुष के प्रजाजन अग्निदेव की अनेक तरह से प्रार्थना करते हैं। अग्निदेव यज्ञीय मार्ग के निमित्त कल्याणकारी वेदवाणी का श्रवण करते हैं। अग्नि का मार्ग घृत (तेजस्) में सन्निहित है॥६॥

अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुरग्निं महामवोचामा सुवृक्तिम् ।
अग्ने प्राव जरितारं यविष्ठाग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥७॥

ऋभुओं (विद्वानों) ने अग्निदेव के निमित्त ही स्तो-रचना की । हम सभी महिमामय अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं । हे तरुण अग्ने ! आप स्तोताओं को संरक्षण प्रदान करें । हे अग्ने ! आप हमें महान् ऐश्वर्य प्रदान करें॥७॥

सूक्त ८१

ऋषि: विश्वकर्मा भौवन:
देवता – विश्वकर्मा । छंद – त्रिष्टुप, २ विराड् रूपा

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ॥१॥

ये ऋषि (द्रष्टा-विश्वकर्मा पिता की तरह स्थित रहकर समस्त लोकों के निमित्त (अथवा लोकों की) आहुतियाँ समर्पित करते हैं । वे संकल्प मात्र से विभिन्न सम्पदाओं को इच्छित रूप देते हुए प्रथम उत्पन्न जगत् को संव्याप्त करते हैं तथा अन्य (नवसृजित लोकों) में भी प्रविष्ट होते हैं॥१॥

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥२॥

सृष्टिनिर्माण के पूर्व परमात्मा किस आश्रय पर अधिष्ठित थे ? सृष्टि के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला मूल द्रव्य क्या था? कैसा था? उन सर्वद्रष्टा विश्वकर्मा-परमात्मा ने इस सुविस्तृत पृथिवी और महान् द्युलोक का सृजन अपनी महान् सामर्थ्य से कहाँ रहकर किया ? (अगले मंत्र में इस प्रश्न का उत्तर हैं)॥२॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥३॥

सर्वत्र आँख वाले, सब ओर मुख वाले, सब ओर भुजाओं वाले और सब ओर चरणों वाले उस अद्वितीय परमात्मा ने अपनी भुजाओं (सामर्थ्यो) से गतिशील पृथिवी और द्युलोक को बिना आश्रय के निर्मित किया तथा उन्हें सम्यक् रूप से संचालित करने वाला वह अकेला ही है ॥३॥

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥४॥

वह 'वन' कौन-सा है? वह वृक्ष कौन-सा है? जिससे (निर्माण सामग्री लेकर) विश्वकर्मा ईश्वर ने द्युलोक और पृथिवीलोक को सृजन किया । हे विवेकवान् पुरुषो ! अपनी मनः शक्ति से यह पूछो (जानने का

प्रयास करो) कि समस्त भुवनों को धारण करते हुए वे विश्वकर्मा देव किस स्थान पर अधिष्ठित हैं ?॥४॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥५॥

हे विश्व के रचयिता परमात्मा ! हे सबके धारक-पोषक ईश्वर ! जो आपके उच्चतम, मध्य वाले या नीचे वाले धाम (लोक या शरीर) हैं, उन सबके बारे में हमें आप मित्र भाव से शिक्षित करें । आप हम सब जीवों को वृद्धि प्रदान करते हुए स्वयं ही उत्तम हविष्यान्न द्वारा यजन करें॥५॥

विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥६॥

हे विश्व के कर्ता परमात्मा ! हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न द्वारा प्रसन्न होकर आप हमारे यज्ञ में पृथ्वी के सब आश्रितों के हितार्थ स्वयं यजन करें, आप सब शत्रुओं को अपने बल से मोहग्रस्त करें । इस (महान् प्रकृति) यज्ञ में ऐश्वर्य-सम्पन्न देव हमारे लिए श्रेष्ठ फल प्रदाता हों॥६॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥७॥

आज हम जीवन यज्ञ में अपनी रक्षा के लिए ज्ञान के अधिपति सृष्टि के रचयिता परमेश्वर का आवाहन करते हैं। सत्कर्म की प्रेरणा देकर कल्याण करने वाले वे विश्वकर्मा हमारे द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को हमारी रक्षा के निमित्त प्रेमपूर्वक ग्रहण करें॥७॥

सूक्त ८२

ऋषि: विश्वकर्मा भौवन:
देवता – विश्वकर्मा । छंद – त्रिष्टुप

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अदद्दहन्त पूर्व आदिद्द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥१॥

जब पूर्व समय में द्यावा-पृथिवी का विस्तार हुआ और उसके अन्दर-बाहर के भाग दृढ़ होकर प्रतिष्ठित हो गये, तब चक्षु-सम्पन्न (सर्वद्रष्टा) पिता (विश्वकर्मा प्रभु) ने नमनशील (निर्देशों अथवा अनुशासनों को स्वीकार करने वाले) घृत (मूलद्रव, प्राण अथवा ओजस्) को सृजन किया ॥१॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ॥२॥

वे विश्वकर्मा देव विशिष्ट महाशक्ति सम्पन्न व्यापक विश्व के निर्माता, धारणकर्ता, महान् तथा सर्वद्रष्टा हैं । उन्हें सप्तऋषियों अथवा (प्राण

की सप्तधाराओं) से भी परे कहा गया है। उनके अभीष्ट की पूर्ति उन्हीं की पोषण शक्ति से होती है। वे एक ही – अद्वितीय हैं॥२॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥३॥

जो परमेश्वर हम सबके पालन करने वाले और उत्पन्न करने वाले हैं, जो सबके धारणकर्ता हैं, जो सम्पूर्ण स्थानों और लोकों के ज्ञाता हैं, जो एक होकर भी विविध देवों के विविध नामों को धारण करते हैं। सभी लोकों के प्राणी अन्ततः उनको ही प्राप्त होते हैं॥३॥

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥४॥

अन्तरिक्ष में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से निवास करने वाले जिस परमेश्वर ने समस्त प्राणियों की रचना की है , उस स्रष्टा के लिए (हमारे) पूर्वज ऋषिगण स्तुति करते हुए यज्ञ में महान् वैभव समर्पित करते हैं॥४॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥५॥

हृदयस्थ जो वह ईश्वरीय तत्त्व है, वह द्युलोक से दूर है, इस पृथ्वी से दूर है, देवों और असुरों से भी परे है। अप् तत्त्व (सृजन के मूल पदार्थ

अथवा जल) ने सर्वप्रथम किस गर्भ को धारण किया ? वह गर्भ कैसा विलक्षण था ? जहाँ पूर्वकालीन देवगण (ऋषिगण) उसे परमतत्त्व का सम्यक् दर्शन पाते एवं देवत्व के परमपद को प्राप्त करते हैं॥५॥

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥६॥

सृष्टि के आदि से ही विद्यमान उस परमतत्त्व ने अप् तत्त्व के गर्भ को धारण किया है, जहाँ सम्पूर्ण देवशक्तियों का आश्रय स्थल है । इस अजन्मा ईश्वर के नाभिकेन्द्र में एक ही परमतत्त्व अधिष्ठित है, जिसमें समस्त भुवन आरक्षित होकर स्थिर हैं ॥६॥

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥७॥

हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की हैं, उसे आप लोग नहीं जानते हैं। वह परमतत्त्व सबसे भिन्न होकर भी सभी के भीतर प्रतिष्ठित हैं । अज्ञान के व्यापक अन्धकार से घिरे हुए, केवल वत या विवाद में लगे हुए मात्र प्राण रक्षा या पोषण की चिन्ता में संतप्त लोग उस परमेश्वर के सम्बन्ध में व्यर्थ विवाद करते हुए विचरण करते हैं । उसका साक्षात्कार नहीं कर पाते॥७॥

सूक्त ८३

ऋषिः मन्युस्तापसः
देवता – मन्यु । छंद – त्रिष्टुप, १ जगती

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

हे वज्रवत् तीक्ष्ण बाण तुल्य और क्रोधाभिमानी देव मन्यु ! जो साधक आपको ग्रहण करते हैं, वे सभी प्रकार की शक्ति और सामर्थ्य को निरन्तर परिपुष्ट करते हैं । बलवर्द्धक और विजयदाता आपके सहयोग से हम (विरोधी) दासों और आर्यों को अपने आधिपत्य में करेंगे॥१॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२॥

मन्यु ही इन्द्र देव हैं, यज्ञसंचालक वरुण और जातवेदा अग्नि हैं । (यह सभी देवता मन्युयुक्त हैं) सम्पूर्ण मानवी प्रजाएँ मन्यु की प्रशंसा

करती हैं । हे मन्यु ! स्नेहयुक्त होकर आप तप से हमारा संरक्षण करें॥२॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥३॥

हे मन्यु ! आप महान् सामर्थ्यशाली हैं, आप यहाँ पधारें। अपनी तप-सामर्थ्य से युक्त होकर शत्रुओं का विध्वंस करें। आप शत्रु विनाशक वृत्रहन्ता और दस्युओं के दलनकर्ता हैं। हमें सभी प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करें ॥३॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयम्भूर्भामो अभिमातिषाहः ।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥४॥

हे मन्यु ! आप विजयी शक्ति से सम्पन्न, स्व सामर्थ्य से बढ़ने वाले, तेजयुक्त, शत्रुओं के पराभवकर्ता, सबके निरीक्षण में सक्षम तथा बलशाली हैं । संग्राम क्षेत्र में आप हमारे अन्दर ओज की स्थापना करें॥४॥

अभागः सन्नप परेतो अस्मि तव क्रत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥५॥

हे श्रेष्ठ ज्ञानसम्पन्न मन्यु ! आपके साथ भागीदार न हो पाने के कारण हम विलग होकर दूर चले गये हैं। महिमामय आपसे विमुख होकर हम कर्महीन हो गये हैं, संकल्पहीन होकर (लज्जित स्थिति में) आपके पास आएँ । हैं। हमारे शरीरों में बल का संचार करते हुए आप पधारें॥५॥

अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ्प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥६॥

हे मन्यु ! हम आपके समीप उपस्थित हुए हैं। आप अपनी अनुकूलतापूर्वक हमारे समीप आघातों को सहने तथा सबको धारण करने में समर्थ हैं । हे वज्रधारी मन्यु ! आप हमारे पास आएँ, हमें मित्र समझें, ताकि हम दुष्टों को मार सकें॥६॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥७॥

है मन्यु ! आप हमारे समीप आएँ । हमारे दाहिने (हमारे अनुकूल) होकर रहें । हम दोनों मिलकर शत्रुओं का संहार करने में समर्थ होंगे । हम आपके लिए मधुर और श्रेष्ठ धारक (सोम) का हवन करते हैं। हम दोनों एकान्त में सर्वप्रथम इस रस का पान करें॥७॥

सूक्त ८४

ऋषिः मन्युस्तापसः
देवता – मन्यु । छंद – जगती, १-३ त्रिष्टुप

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥१॥

हे मन्यु ! आपके सहयोग से रथारूढ़ होकर आनंदित और प्रसन्नचित्त होकर अपने आयुधों को तीक्ष्ण करके, अग्नि के सदृश तीक्ष्ण दाह उत्पन्न करने वाले मरुद्गण आदि युद्धनायक हमारी सहायतार्थ युद्ध क्षेत्र में गमन करें॥१॥

अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व सेनानीर्नः सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून्वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२॥

हे मन्यु ! आप अग्नि सदृश प्रदीप्त होकर शत्रुओं को पराभूत करें । हे सहनशक्ति युक्त मन्यु ! आपका आवाहन किया गया है । आप

हमारे संग्राम में नायक बने । शत्रुओं का संहार करके उनकी सम्पदा हमें दें । हमें बल प्रदान करके शत्रुओं को दूर भगाएँ॥२॥

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन्मृणन्प्रमृणन्प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥३॥

हे मन्यु ! हमारे विरुद्ध सक्रिय शत्रुओं को आप पराभूत करें । आप शत्रुओं को तोड़ते हुए और कुचलते हुए शत्रुओं पर आक्रमण करें। आपकी प्रभावपूर्ण क्षमताओं को रोकने में कौन सक्षम हो सकता है ? हे अद्वितीय मन्यु ! आप स्वयं संयमशील होकर शत्रुओं को नियन्त्रण में करते हैं॥३॥

एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशंविशं युधये सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ॥४॥

हे मन्यु ! आप अकेले ही अनेकों द्वारा सत्कार के योग्य हैं। आप युद्ध के निमित्त प्रत्येक मनुष्य को तीक्ष्ण (तेजस्वी) बनाएँ । हे अक्षय प्रकाशयुक्त ! आपकी मित्रता के सहयोग से हम हर्षित होकर विजय-प्राप्ति के लिए सिंहनाद करते हैं॥४॥

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५॥

हे मन्यु ! इन्द्र के सदृश विजेता, असन्तुलित न बोलने वाले आप हमारे अधिपति हों । हे सहिष्णु मन्यु ! आपके निमित्त प्रिय स्तोत्र का उच्चारण करते हैं । हम उस स्रोत (विधा) के ज्ञाता हैं, जिससे आप प्रकट होते हैं॥५॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६॥

हे वज्र सदृश शत्रुसंहारक मन्यु ! शत्रुओं को विनष्ट करना आपके सहज स्वभाव में है । हे रिपु पराभवकर्ता मन्यु ! आप श्रेष्ठ तेजस्विता को ग्रहण करते हैं। कर्मशक्ति के साथ युद्धक्षेत्र में आप हमारे लिए सहायक हों । आपका आवाहन असंख्य वीरों द्वारा किया जाता है॥६॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥७॥

हे वरुण और मन्यु (अथवा वरणीय मन्यु) ! आप उत्पादित और संगृहीत ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । भयभीत हृदय वाले शत्रु पराभूत होकर दूर चले जाएँ॥७॥

सूक्त ८५

ऋषि: सावित्री सूर्या ऋषिका
देवता – १-५ सोम, ६-१६ सूर्या विवाह, १७ देवा, १८ सोमार्कौ, १९ चंद्रमा, २०-२८ नृणां विवाहमंत्रा आशी प्राय:, २९-३० वधूवायस संस्पर्शनिन्दा, ३१ दम्पत्योयकक्षयनाशनं, ३२-४९ सूर्या सावित्री ।
छंद – अनुष्टुप, १८, १९-२१, २३-२४, २६, ३६-३७, ४४ त्रिष्टुप, १८,२७ ४३ जगतीं ३४ उरोवृहती

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१॥

देवों में सत्यस्वरूप ब्रह्मा ने पृथ्वी को आकाश में स्थापित किया हुआ हैं । सूर्यदेव द्युलोक को स्तम्भित किए हुए हैं। यज्ञाहुति के आश्रय में देवशक्तियाँ रहती हैं। सोम द्युलोक के ऊपर स्थित है ॥१॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२॥

आदित्यादि देव सोम के कारण ही बलशाली हैं। सोम द्वारा ही पृथ्वी महिमामय होती हैं । इन नक्षत्रों के बीच भी सोम को स्थापित किया गया है॥२॥

सोमं मन्यते पपिवान्यत्सम्पिंषन्त्योषधिम् ।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥३॥

जिस समय सोमलतादि वनस्पतियों-औषधियों की पिसाई की जाती है, उसी समय मुख से पीने योग्य सोम को मान्यता प्राप्त होती है; परन्तु जिस सोम को ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानीजन जानते हैं, उसे कोई भी व्यक्ति मुख से पीने की सामर्थ्य नहीं रखता॥३॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥४॥

हे दिव्यसोम ! आप बृहती विद्या के जानकारों को विदित, गुह्य विधियों द्वारा सुरक्षित हैं (संकीर्ण मानस वाले कुपात्र इसे नहीं पा सकते)। आप मावा (सोम निष्पादक यंत्र या गरिमामय वाणी) की ध्वनि को सुनते हैं। आपको पृथ्वी के प्राणी सेवन करने में सक्षम नहीं हैं॥४॥

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥५॥

हे सोमदेव ! जिस समय लोग ओषधि रूप में आपको ग्रहण करते हैं, उस समय बार-बार आपका सेवन किया जाता है । वायुदेव सोम की उसी प्रकार सुरक्षा करते हैं, जिस प्रकार महीने, वर्ष को सुरक्षित करते हैं॥५॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥६॥

सूर्य कन्या के पाणिग्रहण के समय भी' नामक ऋचाएँ (अथवा ज्ञानयुक्त वाणियाँ) उसकी सखी रूपा हुई थीं। नाराशंसी नामक ऋचाएँ (अथवा नरों द्वारा प्रशंसित उक्तियाँ उसकी सेविकाएँ हुई थीं । सूर्या का परिधान अतिशोभायमान था, जो कल्याणकारी गाथाओं मन्त्रादि से विशेष परिष्कृत हुआ॥६॥

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥७॥

जिस समय सूर्यपुत्री ने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया, उस समय श्रेष्ठ विचार उसके आच्छादन (वस्त्र) थे। वहीं नेत्रों (दृष्टि) के लिए श्रेष्ठ अंजन थे। द्युलोक और पृथ्वी ही उसके कोषागार थे॥७॥

स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः ॥८॥

स्तवन ही सूर्या के रथचक्र के डण्ड़े थे, कुरीर नामक छन्द रथ का भीतरी भाग था । सूर्या के वर अश्विनी कुमार थे तथा अग्नि अग्रगामी दूतरूप थे॥८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादधात् ॥९॥

सूर्यपुत्री हृदय से पति की कामना करती थी, जब सूर्य ने अपनी पुत्री सूर्या को अश्विनीकुमारों को प्रदान किया, तब सोम भी उसके साथ विवाह के इच्छुक थे, परन्तु अश्विनीकुमार ही उसके वर रूप में स्वीकृत किये गये॥९॥

मनो अस्या अन आसीद्द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥१०॥

जिस समय सूर्या अपने पतिगृह में गई, उस समय मन ही उसका रथ (वाहन) था और आकाश ही रथ के ऊपर की छतरी थी। दो शुक्र (प्रकाशवान् सूर्य-चन्द्र) उसके रथवाहक थे॥१०॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचारः ॥११॥

हे सूर्या देवि ! ऋक् और साम स्तवनों (ज्ञान) को सुनने वाले-धारण करने वाले, एक दूसरे के साथ साम्य रखने वाले दो श्रोत्र आपके मनरूपी रथ के चक्र हुए। रथ के गमन का मार्ग आकाश निश्चित हुआ॥११॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ॥१२॥

जाने के समय आपके रथ के दोनों पहिए पवित्र अथवा अति उज्ज्वल हुए। उस रथ की धुरी वायु थे। पतिगृह को जाने वाली सूर्या मनरूपी रथ पर आरूढ़ हुई॥१२॥

सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥१३॥

सूर्या के पतिगृह-गमनकाल में सूर्य ने पुत्री के प्रति स्नेहरूप जो धन स्रवित किया (दिया), उसे पहले ही भेज दिया था। मघा नक्षत्र में विदाई के समय दी गई गौओं को हाँका गया तथा अर्जुनी अर्थात्

पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में कन्या को पति के गृह भेजा गया॥१३॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः ।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितराववृणीत पूषा ॥१४॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस समय आप सूर्या के साथ विवाह सम्बन्धी बात पूछने पहुँचे, उस समय सभी देवों ने आपका अनुमोदन किया तथा आपके पुत्र पूषा ने आप दोनों को स्वीकार किया॥१४॥

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥

हे शुभस्पति (अश्विनीकुमारो) ! जिस समय आप लोग सूर्या के वरण हेतु गये, उस समय आपके रथ का एक चक्र कहाँ था? मार्ग को जानने की जिज्ञासा से आप दोनों कहाँ स्थित थे?॥१५॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥१६॥

हे सूर्य ! ब्राह्मण (ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति इस बात से परिचित हैं कि आपके रथ के दो (कर्मशील) चक्र ऋतुओं के अनुसार गतिशील होने में

प्रसिद्ध हैं। तीसरा (ज्ञान-विज्ञान परक) चक्र जो गोपनीय थी, उसे विद्वान् जानते हैं ॥१६॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥१७॥

सूर्या, देवगण, मित्र और वरुणादि देवों तथा सभी प्राणियों के वे श्रेष्ठ कल्याणकारी हितचिन्तक हैं। हम उन्हें प्रणाम करते हैं॥१७॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१८॥

ये दोनों शिशु (सूर्य और चन्द्र) अपने तेज से पूर्व और पश्चिम में विचरते हैं। ये दोनों क्रीड़ा करते हुए यज्ञ में पहुँचते हैं। उन दोनों में से एक, सूर्य सभी लोकों को देखते हैं तथा दूसरे, चन्द्र ऋतुओं का निर्धारण करते हुए बार-बार उदित-अस्त होते हैं॥१८॥

नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥१९॥

ये चन्द्रदेव नित्य उदित होकर नवीनतम होते हैं । दिवस के सूचक सूर्यदेव प्रतिदिन नवीन रूप में प्रात: काल सभी के समक्ष आते हैं। वे सूर्यदेव आकर देवों के निमित्त यज्ञ का हविभाग देने की व्यवस्था

करते हैं । चन्द्रदेव आकर आनंदित जीवन एवं चिरायु प्रदान करते हैं॥१९॥

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२०॥

हे सूर्य पुत्री ! आप अपने पतिगृह की ओर जाते हुए सुन्दर प्रकाशयुक्त पलाश वृक्ष से बने तथा शाल्मलि वृक्ष या मलरहित (कोष्ठ) से विनिर्मित नाना रूप, स्वर्णिम वर्ण, श्रेष्ठ और सुन्दर चक्र युक्त रथ पर आरूढ़ हों। आप पति के निमित्त, अमृत स्वरूप लोक को सुखकारी बनाएँ॥२०॥

उदीर्ष्वातः पतिवती ह्येषा विश्वावसुं नमसा गीर्भिरीळे ।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२१॥

हे विश्वावसु (विश्व व्यापक) ! आप इस स्थान से उठें, क्योंकि इस कन्या का पाणिग्रहण हो चुका है । हम नमस्कार और स्तोत्रों द्वारा आपकी अर्चना करते हैं। पितृगृह में रहने वाली दूसरी विवाह योग्य कन्या की कामना करें । वही आपको सौभाग्य प्रदान करने वाली है, इस अभिप्राय को उचित रीति से समझें॥२१॥

उदीर्ष्वातो विश्वावसो नमसेळा महे त्वा ।

अन्यामिच्छ प्रफर्व्यं सं जायां पत्या सृज ॥२२॥

हे विश्वावसो ! आप इस स्थान का परित्याग करें, हम नमस्कारपूर्वक आपकी स्तुति करते हैं। आप दूसरी यौवना की कामना करें तथा उस स्त्री को पति के साथ संयुक्त करें॥२२॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम् ।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात्सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥२३॥

हे देवगण ! वे सम्पूर्ण मार्ग कंटकों (कष्टों) से रहित और सरल हों, जिनसे हमारे मित्र कन्या के पिता के पास जाते हैं। अर्यमा और भगदेव हमें वहाँ भली प्रकार ले जाएँ। ये पत्नी और पति आदर्श दम्पती सिद्ध हों॥२३॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः ।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥२४॥

हे कन्ये ! आपको हम वरुण के बन्धनों से छुड़ाते हैं। सवितादेव ने सेवाकार्य के लिए आपको बन्धनयुक्त किया था, जो सत्य का आधार और सत्कर्मों का निवास है, उसी स्थान पर आपको अनिष्टरहित पति के साथ विराजमान करते हैं॥२४॥

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥२५॥

हे कन्ये ! इस पितृकुल से आपको मुक्त करते हैं, लेकिन पतिकुल से नहीं । उस (पतिकुल) से आपको भली प्रकार सम्बद्ध करते हैं । हे कामनावर्षक इन्द्रदेव ! यह वधू सुसन्ततियुक्त और सौभाग्यवती हो॥२५॥

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२६॥

पूषादेव आपको यहाँ से हाथ पकड़कर ले जाएँ। आगे अश्विनीकुमार आपको रथ में विराजित करके ले चले । आप अपने पतिगृह की ओर प्रस्थान करें । वहाँ आप गृहस्वामिनी और सबको अपने नियंत्रण (अनुशासन) में रखने वाली बनें । वहाँ आप विवेकपूर्ण वाणी का प्रयोग करें॥२६॥

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥२७॥

पतिगृह में सुसन्ततियुक्त होकर आपके स्नेह की वृद्धि हो और इस घर में आप गृहस्थधर्म के कर्तव्यों के निर्वाह के लिए सदैव जागरूक

रहें । स्वामी के साथ आप संयुक्त(एक प्राण-एक मन वाली) होकर रहें । वृद्धावस्था में आप दोनों (दम्पती) श्रेष्ठ उपदेश (अपनी सन्तानों के लिए करें॥२७॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२८॥

(सूर्या या वधू) जब नील-लोहित (क्रुद्ध या रजस्वला) होती है, तब उस पर कृत्या शक्ति अभिव्यक्त होती है, उसी (कृत्या के अनुकूल तत्त्व वर्धित होते हैं। पति उसके प्रभाव से बन्धन में बँध (मर्यादित हो) जाता है॥२८॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥२९॥

शामुल्य (शरीरस्थ मल-विकारों अथवा मन पर छाए मलिन आवरणों) का परित्याग करें । ब्राह्मणों या ब्रह्म विचार को धन या आवास प्रदान करें । (इस प्रयोग से) कृत्या शक्ति (शमित होकर) जाया (जन्म देने वाली) होकर पति के साथ सहगामिनी बन जाती है॥२९॥

अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥३०॥

उक्त (कृत्या जन्य) विकारों की स्थिति में स्त्री पीड़ादायक होती है। ऐसी स्थिति में वधू से संयुक्त होने से पति का शरीर भी कान्तिरहित तथा रोगादि से दूषित हो जाता हैं॥३०॥

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥३१॥

चन्द्रमा की तरह शोभन वधू को जो (शारीरिक-मानसिक) रोग जन्मदाता माता-पिता से स्वभावत: आते हैं, यजनीय देवगण उन्हें उनके पिछले स्थान पर लौटाएँ, जहाँ से वे बार-बार आते हैं॥३१॥

मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ॥३२॥

जो रोगरूपी शत्रु, दम्पती के समीप आते हैं, वे विनष्ट हों । वे सुगम मार्गों से दुर्गम स्थानों में चले जाएँ। शत्रु लोग हमारे यहाँ से दूर चले जाएँ॥३२॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं वि परेतन ॥३३॥

यह नववधू मंगल चिह्नों से सुसज्जित है । सभी आशीर्वाद देने वाले आएँ और इसका दर्शन करें। इस विवाहिता को उत्तम सौभाग्यवती होने का शुभाशीष देने के बाद सभी अपने घरों को चले जाएँ॥३३॥

तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे ।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति ॥३४॥

यह स्थिति दोषपूर्ण, अग्रहणीय, दूर रखने योग्य एवं विश्व के समान घातक (पीड़ाजनक) है । यह व्यवहार के योग्य नहीं हैं, जो मेधावी विद्वान् सूर्या को भली प्रकार जानते हैं, वे ही वधू के साथ हितकारी सम्बन्ध स्थापित करने योग्य होते हैं॥३४॥

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम् ।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥३५॥

सूर्या का स्वरूप कैसा है, इसे देखें । इसका वस्त्र कहीं एक जगह फटा हुआ है, कहीं बीच में से, तो कहीं चारों ओर से कटा हुआ है, सृष्टि निर्माण कर्ता ब्रह्मा ही इसे सुशोभित करते हैं॥३५॥

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरंधिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥३६॥

हे वधू ! आप के हाथ को सौभाग्य वृद्धि के लिए मैं ग्रहण करता हूँ। मुझे पतिरूप में स्वीकार करके, आप वृद्धावस्था पर्यन्त (मेरे) साथ रहना यही मेरी प्रार्थना (निवेदन) है । भग, अर्यमा, सविता और पूषादेवों ने आपको मेरे निमित्त गृहस्थ-धर्म का पालन करने के लिए प्रदान किया है॥३६॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ॥३७॥

हे पूषा (पोषण में समर्थ) देव ! आप शिवतम(सबसे अधिक कल्याणप्रदा) उस (उर्वरा शक्ति) को प्रेरित करें, जिसमें मनुष्य बीज को स्थापित करते हैं । जो हम (मनुष्यों के प्रति उल्लसित होती हुई , अपने ऊरु प्रदेश को विस्तारित करती हैं। जिसके गर्भ में उत्साहपूर्वक (फलित होने के विश्वास से) बीज स्थापित किया जा सके॥३७॥

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३८॥

हे अग्निदेव ! दहेज (कन्याधन) के रूप में सूर्या को सर्वप्रथम आपके ही समीप ले जाया जाता है। अर्थात् विवाह के समय,यज्ञ समय तथा परिक्रमा इत्यादि में वर-वधू अग्नि के समीप रहते हैं) आप पति को

श्रेष्ठ सुसन्तति प्रदान करने वाली स्त्री प्रदान करें अर्थात् विवाहितों को सुसन्तति से सम्पन्न बनाएँ॥३८॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥३९॥

अग्नि ने पुनः दीर्घायु, तेजस्वी और कान्तियुक्त पत्नी को प्रदान किया। इसके जो पति हैं, वे चिरंजीवी होकर शतायु तक जीवित रहें॥३९॥

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥४०॥

हे सूर्या ! सोम ने सर्वप्रथम पत्नी रूप में आपको प्राप्त किया । तदनन्तर गन्धर्व आपके पति हुए, आपके तीसरे पति अग्निदेव हैं। मनुष्य वंशज आपके चौथे पति हैं॥४०॥

सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये ।
रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ॥४१॥

सोम ने उस स्त्री को गन्धर्व को दिया । गन्धर्व ने अग्नि को दिया, तदनन्तर अग्नि, (भूमि से उत्पन्न) ऐश्वर्य और (नारी से उत्पन्न) सन्तान सहित मुझे (मनुष्य को) प्रदान करते हैं॥४१॥

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

हे वर और वधू ! आप दोनों यहीं रहें । कभी भी परस्पर पृथक् न हों । सम्पूर्ण आयु (शतायु) का विशेष रीति से उपभोग करें। अपने गृहस्थ धर्म का निर्वाह करते हुए पुत्र-पौत्रादि सन्तानों के साथ आमोद-प्रमोदपूर्वक जीवन व्यतीत करें॥४२॥

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३॥

प्रजापति ब्रह्मा हमें सुसन्तति प्रदान करें । अर्यमादेव वृद्धावस्था तक हमें साथ-साथ रखें । हे वधू! आप मङ्गलमयी होकर पतिगृह में प्रविष्ट हों । आप हमारे सम्माननीय बन्धुओं और पशुओं के लिए मंगलकारिणी हों॥४३॥

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४॥

हे वधू ! आप शान्तदृष्टियुक्त और पति के निमित्त दुःखों से रहित मंगलमयी हों । आप पशुओं के लिए हितप्रद, सुविचारों से युक्त , तेजस्वी, वीर प्रसविनी और देवों की उपासिका रूप होकर

कल्याणकारी हों। हमारे परिवार, परिजनों तथा उपयोगी पशुओं के लिए कल्याणकारी हों॥४४॥

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥४५॥

हे इन्द्रदेव ! आप इस स्त्री को सुसन्ततियुक्त एवं सौभाग्यशाली बनाएँ। इसे दस पुत्रवती बनाएँ तथा पति सहित इस स्त्री को ग्यारह परिवार सदस्यों से युक्त करें॥४५॥

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६॥

हे वधू ! आप सास, श्वसुर , ननद और देवरों की सम्राज्ञी (महारानी) के समान हों , आप सबके ऊपर स्वामिनी स्वरूपा हों॥४६॥

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७॥

सम्पूर्ण देवगण हम दोनों के हृदयों को परस्पर संयुक्त करें । जल, वायु, धाता और सरस्वती हम दोनों को परस्पर सम्मिलित करें॥४७॥

सूक्त ८६

ऋषि: सावित्री सूर्या इन्द्र, ७,१३,२३ ऐन्द्रो वृषाकपि , २-६, ९-१०,१५-१८ इंद्राणी
देवता – इन्द्र । छंद – पंक्ति

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१॥

इन्द्रदेव ने स्तोताओं को सोम अभिषवे या अन्य कार्य के लिए प्रेरित किया था, उन्होंने इन्द्रदेव की प्रार्थना नही की (अपितु वृषाकपि वय की प्रार्थना की) जहाँ सोमप्रवृद्ध यज्ञ में आर्य वृषाकपि (इन्द्रदेव पुत्र) हमारे मित्र होकर सोमपान से हर्षित हुए, वहाँ भी इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ हैं॥१॥

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२॥

(इन्द्राणी का कथन) हे इन्द्रदेव ! आप व्यथित होकर वृषाकपि के समीप दौड़ जाते हैं। आप दूसरे स्थान पर सोमपान हेतु नहीं जाते । निश्चय ही इन्द्रदेव सर्वश्रेष्ठ हैं॥२॥

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! इस हरित (हरे या हरणशील) मृग (भूमिगामी) वृषाकपि ने आपका क्या हित किया है, जिसके कारण आप उदारता के साथ उन्हें पुष्टिकर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं? इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं॥३॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४॥

(इन्द्राणी का कथन –) हे इन्द्रदेव ! आप जिस प्रिय वृषाकपि को सुरक्षित करते हैं, वाराह पर आक्रमण करने वाला श्वान उसका कान काट ले। इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं॥४॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥

मुझे तुष्ट करने वाले पदार्थों को वृषाकपि ने दूषित कर दिया । मेरी अभिलाषा है कि इसके मस्तक को काट डालें। इस दुष्कर्म में संलग्न (वृषाकपि) को कभी हितैषी नहीं बनूंगी । इन्द्रदेव सबसे श्रेष्ठ और महान् हैं॥५॥

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥

कोई दूसरी स्त्री मुझसे बढ़कर सौभाग्यशालिनी नहीं और न कोई दूसरी अतिसुखी और सुसन्तति युक्त है। मझसे अधिक कोई भी स्त्री अपने पति को सुख देने में सक्षम भी नहीं होगी । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वश्रेष्ठ॥६॥

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥७॥

(कृयादपि का कथन) हे इन्द्राणी म ! आप सभी सुखों क सभा करने की हैं। आपके अंग, अंबा, मस्तक आदि आवश्यकतानुसार स्वरूप धारण करने या कार्य करने में सक्षम हैं। आप पिता इन्द्रदेव के लिए स्नेह द्वारा सुख प्रदात्री हों । इन्द्रदेव ही सर्वोत्तम हैं॥७॥

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।

किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥

(इन्द्र का कथन) हे वीर पत्नी इन्द्राणी ! आप श्रेष्ठ भुजाओं से युक्त, सुन्दर अँगुलियों वाली, श्रेष्ठ केशवती तथा विशाल जंघाओं से युक्त हैं। आप क्यों वृषाकपि पर क्रोधित हो रही हैं? इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं॥८॥

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९॥

(इन्द्राणी का कथन) यह घातक वृषाकपि मुझे पनि-पुत्रादि से रहित के समान ही मानता है; परन्तु इन्द्र पनी तो पति और सन्तानादि से सम्पन्न हैं तथा मरुद्गण हमारे सहायक हैं। इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं॥९॥

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥

सत्यविधात्री, सत्यप्रतिपादनशीला और पुत्रवती इन्द्रपत्नी (इन्द्राणी) यज्ञ में (संग्राम में) पहले ही वहाँ पाँचती हैं, अतएव उनकी स्तुति सभी जगह होती है । इन्द्रदेव मेरे पति रूप में सर्वश्रेष्ठ हैं॥१०॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥

सभी स्त्रियों में इन्द्राणी को मैं सर्वाधिक सौभाग्यशालिनी मानता हूँ। दूसरी स्त्रियों के पनि के समान इन्द्राणी के पति इन्द्र, वृद्धावस्था में मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, (अपितु इन्द्र अमर हैं) इन्द्र ही वस्तुतः सर्वोत्तम हैं॥११॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२॥

हे इन्द्राणी ! हमारे भित्र (मरुद्गण) वृषाकपि के बिना हर्षित नहीं रहते । वृषाकपि का ही अति प्रीतियुक्त द्रव्य (हव्यादि) देवों के समीप पहुँचता है, इन्द्रदेव ही सर्वोत्तम हैं॥१२॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३॥

हे वृषाकपायि !(वृषाकपि की माता या पत्नी) आप धनवती, श्रेष्ठ पुत्रवती और सुन्दर पुत्रवधू वाली हैं। आपके उक्षाओं का सेवन

इन्द्रदेव शीघ्र करें । आपके प्रिय और सुखप्रद हविष्यान्न का वे सेवन करें। इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं॥१३॥

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४॥

(इन्द्र का कथन) मेरे लिए शची द्वारा प्रेरित पन्द्रह-बीस उक्षा (सेचन सामथ्र्यो, इन्द्रियों तथा प्राण-उपप्राण आदि) एक साथ परिपक्व होते हैं, उनका सेवन करके मैं पुष्ट होता हैं । मेरे दोनों पार्श्व उससे भर जाते हैं। विश्व में इन्द्रदेव ही सर्वोपरि हैं॥१४॥

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५॥

तीखे सींगों से युक्त वृषभ जिस प्रकार गोसमूह में गर्जनशील (भाते हुए) विचरते हैं, उसी प्रकार आप भी हमारे साथ रमण करें । हे इन्द्रदेव ! आपके हृदय का भावमंथन कल्याणप्रद हो । आपके निमित्त भावना से आकांक्षी इन्द्राणी जिस सोम का अभिषवे करती हैं, वह भी कल्याणकारी हो । इन्द्रदेव विश्व में सर्वोत्तम हैं॥१५॥

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६॥

(प्राणि-संदर्भ में इन्द्राणी कहती हैं) जिसके सक्थ (भारवाहक दो अवयवों) के बीच कुख्याति प्रदायक (विकार) शब्द कर (अपनी अभिव्यक्ति करती) हैं । वे शासन करने में समर्थ नहीं होते ।(वह विकार) जिसके रोमों से (किरणों से) क्षरण का यत्न करते हैं, वह (विकारयुक्त होकर) शासन करने में समर्थ होता है। वास्तव में इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ॥१६॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७॥

(प्रकृति-संदर्भ में इन्द्र कहते हैं) जिसके कुरूष-विस्तार वाले (मेघादि) दो धारक(आकाश एवं पृथ्वी के बीच) अंतरिक्ष में शब्दायमान होते हैं, वहीं शासन करता है। जिसके विकिरणयुक्त अंग (अथवा अंकुरों) से विकार प्रकट होते हैं, वह शासन नहीं करता । इन्द्रदेव हीं सर्वश्रेष्ठ हैं॥१७॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८॥

हे इन्द्रदेव ! वृषाकपि दूरवर्ती, अलभ्य पदार्थ भी प्राप्त करें। यह खड्ग (विकार नाशक), पाकस्थल नये चरु और काष्ठों से परिपूर्ण शकट ग्रहण करें । इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वोत्तम हैं॥१८॥

अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९॥

मैं (इन्द्र) यजमानों का निरीक्षण करते हुए , शत्रुओं को दूर करते हुए तथा आर्यों का अन्वेषण करते हुए यज्ञ में उपस्थित होता हैं। सोम अभिषवणकर्ता और हविष्यान्न तैयार करने वालों द्वारा समर्पित किए गये सोम का सेवन करता हूँ । बुद्धिमान् यजमान की श्रेष्ठ रीति से रक्षा करता हूँ । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ॥१९॥

धन्व च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०॥

जल रहित मरुस्थल (उर्वरता रहित क्षेत्र) और काटने योग्य वन (जहाँ आवश्यकता से अधिक उत्पादन हो रहा हो) में कितना अन्तर है ? (दोनों को ठीक करना होगा) अतएव हे वृषाकपि ! आप समीप ही स्थित हमारे घर में आश्रय ग्रहण करें । इन्द्रदेव सर्वश्रेष्ठ हैं॥२०॥

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।

य एष स्वप्नंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१॥

हे वृषाकपि ! आप पुनः वापस आएँ । आपके निमित्त हम (इन्द्र, इन्द्राणी) सुखदायी श्रेष्ठ कर्मों को सम्पादित करते हैं। आप निद्रा एवं स्वपनाशक सूर्य के समान सुगम मार्ग से हमारे घर में पुन: आएँ । इन्द्र ही सर्वोत्तम हैं॥२१॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२॥

हे वृषाकपि और इन्द्रदेव ! आप ऊपर को घूमकर हमारे घर में प्रविष्ट हों । बहुभोक्ता और लोगों के लिए आनन्ददायक विचरणशील आप कहाँ गये थे? इन्द्रदेव ही वास्तव में सर्वश्रेष्ठ हैं॥२२॥

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३॥

मनु की पुत्री पशु (स्पर्श) नाम वाली हैं, जिनने बीस पुत्रों को एक साथ जन्म दिया। जिन पशु का उदर विशाल हुआ था, उनका सदैव कल्याण हो । इन्द्रदेव ही सर्वश्रेष्ठ॥२३॥

सूक्त ८७

ऋषि: पायुभारद्वाज:
देवता – रक्षोहाग्नि । छंद – त्रिष्टुप, २२-२५ अनुष्टुप

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥१॥

हम राक्षस विध्वंसक, बलवान् , याजकों के, मित्र और प्रतिष्ठित अग्नि को मृत से प्रज्वलित करते हुए अत्यन्त सुख अनुभव करते हैं । ये अग्निदेव अपनी ज्वालाओं को तेज करते हुए यज्ञकर्म सम्पादक यजमानों द्वारा प्रदीप्त होते हैं। हिंसक राक्षसों से ये अग्निदेव हमारी अहोरात्र रक्षा करें॥१॥

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान्रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन् ॥२॥

हे ज्ञानस्वरूप अग्निदेव ! आप अतितेजस्वी और लौहदन्त (वेधक सामर्थ्य वाले) होकर अपनी जिह्वा (ज्वालाओं) से सिके राक्षसों को नष्ट करें । मांसभक्षी राक्षसों को काटकर अपने ज्वालारूपी मुख़ में धारण करें॥२॥

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याहि राजञ्जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप अपने दोनों दाँतों (वेधक ज्वालाओं) को तीक्ष्ण करें, उन्हें असुरों में प्रविष्ट करा दें। दोनों प्रकार से आप उनका संहार करें तथा निकट एवं दूर की प्रजाओं की रक्षा करें । हे दीप्तिमान् बलशाली अग्निदेव ! आप अन्तरिक्षस्थ असुरों के समीप जाएँ और उन दुष्ट-असुरों को अपनी दाढ़ों (मारक शक्ति) से पीस डालें॥३॥

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान्प्रतीचो बाहून्प्रति भङ्ध्येषाम् ॥४॥

हे अग्निदेव ! आप सामर्थ्यवर्द्धक यज्ञों और हमारी प्रार्थना से संतुष्ट होकर अपने बाणों का संधान करते हुए, उनके अग्रभागों को वज्र से युक्त करते हुए, असुरों के हृदयों को भेद डालें । इसके पश्चात् युद्ध के लिए प्रेरित उनके सहयोगियों की भुजाओं को तोड़ डालें॥४॥

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि चिनोतु वृक्णम् ॥५॥

हे सर्वज्ञ अग्निदेव ! आप असुरों की त्वचा को छिन्न-भिन्न कर डालें । इन्हें आपका हिंसक वज्रास्त्र अपनी तेजस्विता से नष्ट करे , असुरों के अङ्गों को भग्न करे । खण्ड-खण्ड़ पड़े असुरों के अंग-अवयवों को मांसभक्षी वृक आदि हिंसक पशु भक्षण करें॥५॥

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥६॥

हे ज्ञानवान् बलशाली अग्निदेव ! आप राक्षसों को स्थिर स्थिति में, इधर-उधर विचरण की स्थिति में, आकाश में अथवा मार्ग में जहाँ भी उन्हें देखें, वहीं उन पर शर-संधान करके, तेज बाण फेंककर , उनका संहार करें॥६॥

उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! आप आक्रान्ता असुर के हाथों से आक्रान्त यजमान व्यक्ति को प्रष्ट (दो धारों वाले खड्ग) से सुरक्षित करें । सर्वप्रथम आप प्रदीप्त होकर कच्चे मांस का भक्षण करने वाले असुरों का

संहार करें। शब्द करते हुए वेग से उड़ने वाले पक्षी इस राक्षस को खाएँ॥७॥

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८॥

हे युवा अग्निदेव ! कौन राक्षस इस यज्ञ के विध्वंसक हैं, यह हमें बताएँ? समिधाओं द्वारा प्रज्वलित होकर आप उन असुरों का संहार करें । मनुष्यों के ऊपर आपकी कृपामयी दृष्टि रहती है, उसी कल्याणकारी दृष्टि के अन्तर्गत अपने तेज से असुरों का विनाश करें॥८॥

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः ॥९॥

हे अग्निदेव ! आप अपने तीक्ष्ण तेज से हमारे यज्ञ का संरक्षण करें । हे श्रेष्ठ ज्ञान-सम्पन्न अग्निदेव ! आप इस सर्वोत्तम यज्ञ को धन-सम्पन्न बनाएँ । हे मनुष्यों के द्रष्टा अग्निदेव ! आप असुरों के संहारक तथा अति प्रज्वलित हैं, दुष्ट असुरता आपको विनष्ट न करे॥९॥

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०॥

हे मनुष्य के निरीक्षक अग्निदेव ! आप मनुष्यों के घातक असुरों को भी देखें । उस राक्षस के तीन आगे के मस्तकों का उच्छेदन करें । उसके समीपस्थ राक्षसों को भी शीघ्रता से समाप्त करें। इस प्रकार तीनों ओर से राक्षस के मूल को काट डालें॥१०॥

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि ॥११॥

हे ज्ञानसम्पन्न अग्निदेव ! आपकी ज्वालाओं की चपेट में राक्षस तीन बार आएँ । जो राक्षस सत्य को असत्य वाणी से विनष्ट करते हैं, उन्हें अपनी तेजस्विता से भस्मीभूत कर डाले । स्तोता के समक्ष ही इन्हें विनष्ट कर दें॥११॥

तदग्ने चक्षुः प्रति धेहि रेभे शफारुजं येन पश्यसि यातुधानम् ।
अथर्ववज्ज्योतिषा दैव्येन सत्यं धूर्वन्तमचितं न्योष ॥१२॥

हे ज्ञानसम्पन्न , बलशाली अग्निदेव ! गर्जना करने वाले अहंकारी असुरों पर उस तेज को फेकें, जिसके प्रकाश में आप, खुर के समान नाखूनों से ऋषियों के उत्पीड़क असुरों को देखते हैं । सत्य को असत्य से विनष्ट करने वाले अज्ञानी असुर को अपनी दिव्य तेजस्विता से अथर्वा अष के समान भस्मीभूत कर डालें॥१२॥

यदग्ने अद्य मिथुना शपातो यद्वाचस्तृष्टं जनयन्त रेभाः ।
मन्योर्मनसः शरव्या जायते या तया विध्य हृदये यातुधानान् ॥१३॥

हे अग्निदेव ! आज जब स्त्री-पुरुष आपसी झगड़ा करते हैं तथा स्तोतागण परस्पर कटु-वाणी का प्रयोग करते हैं, ऐसे समय में मन्यु द्वारा मन. शक्ति से छोड़े गये बाणों के समान (सूक्ष्म प्रहार द्वारा) राक्षसों के हृदय (राक्षसी प्रवृत्तियों) को वेध डालें॥९३॥

परा शृणीहि तपसा यातुधानान्पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपो अभि शोशुचानः ॥१४॥

हे अग्निदेव ! आप असुरों को अपनी तेजस्विता से भस्म करें, उन्हें अपनी तप शक्ति से विनष्ट करें । हिंसक असुरों को अपनी तीक्ष्ण ज्वाला से विनष्ट करें । अति प्रदीप्तावस्था में मनुष्यों के प्राणों को हरण करने वाले असुरों को भस्मीभूत कर दें॥१४॥

पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु तृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन्विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१५॥

अग्नि आदि देवगण प्राणघाती असुरों (अवांछनीय शाक्तयों) का संहार करें, उनके समीप हमारे शाप युक्त वचन जाएँ। असत्यवादी

असुरों के मर्मस्थल के पास बाण जाएँ। सर्वव्यापक अग्निदेव के बन्धन में असुरों का पतन हो॥१५॥

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१६॥

हे अग्ने ! जो राक्षस मनुष्य के मांस से (मनुष्य को मारकर) स्वयं को संतुष्ट करते हैं। जो अश्वादि पशुओं से मांस को एकत्र करते हैं तथा जो हिंसारहित गौ ते दृभ को चुराते हैं, ऐसे दुष्टों के मस्तकों को अपनी सामर्थ्य से छिन्न-भिन्न कर डालें॥१६॥

संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन् ॥१७॥

हे मनुष्यों के निरीक्षक अग्निदेव ! वर्ष भर में रंगृहीत होने वाले गाय के दूध को दुष्ट राक्षस पान न करने पाएँ । जो राक्षस इस अमृतवत् दूध को पीने की अभिलाषा करते हैं, आपके समक्ष आने पर आप उन्हें ज्वाला रूपी तेज से छिन्न-भिन्न करें॥१७॥

विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः ।
परैनान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१८॥

राक्षसी शक्तियाँ गौओं के जिसे दूध का पान करें, वह उनके निमित्त विप के समान हो जाए। देवमाता अदिति की संतुष्टि के लिए इन राक्षसों को आप अपने ज्वाला रूपी शखों से काट डालें । सविता देव इन राक्षसों को , हिंसक पशुओं को प्रदान करें । ओषधियों के भक्षण योग्य अंश इन्हें प्राप्त न हों॥१८॥

सनादग्ने मृणसि यातुधानान्न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः ।
अनु दह सहमूरान्क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥१९॥

हे ज्ञानवान्, बलशाली अग्निदेव ! आपने सदा से राक्षसों (आसुरी शक्तियों) का दलन किया है, उन्हें युद्ध में पराभूत किया है। आप क्रूर प्रकृति वाले, अभक्ष्य आहार करने वाले दुष्टों को नष्ट करें। वे आपकी तेजस्विता से बच न सकें॥१९॥

त्वं नो अग्ने अधरादुदक्तात्त्वं पश्चादुत रक्षा पुरस्तात् ।
प्रति ते ते अजरासस्तपिष्ठा अघशंसं शोशुचतो दहन्तु ॥२०॥

हे अग्निदेव ! आप हमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण चारों ओर से संरक्षित करें। आपकी अति उज्ज्वल, अविनाशी और अतितापयुक्त ज्वालाएँ दुष्कर्मी राक्षसों को शीघ्र भस्म करें॥२०॥

पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात्कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।

सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः ॥२१॥

हे दीप्तिमान् अनिदेव ! आप क्रान्तदर्शी हैं, अतएव अपने दृष्टि-कौशल से उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम से हमारी भली प्रकार रक्षा करें । हे मित्र और अग्निदेव ! आप जोता रहित हैं, हम आपके मित्र आपकी कृपादृष्टि से दीर्घजीवी हों। आप अविनाशी हैं, हम मरणधर्मा मनुष्यों को चिरंजीवी बनाएँ॥२१॥

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥२२॥

हे शक्तिशाली अग्निदेव ! आप पूर्णता प्रदान करने वाले विज्ञ संघर्षशील असुरों का नित्यप्रति संहार करने वाले हैं। हम (आपके गुणों का अनुगमन करने के लिए) आपका ध्यान करते हैं॥२२॥

विषेण भङ्गुरावतः प्रति ष्म रक्षसो दह ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः ॥२३॥

है अग्निदेव ! आप विध्वंसक कर्मों में संलग्न राक्षसों को अपनी विस्तृत , तीक्ष्ण तेजस्विता से जलाएँ तथा तपते हुए प्रष्ट (दुधारे) अस्त्रों से भी उन्हें नष्ट करें॥२३॥

प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ।
सं त्वा शिशामि जागृह्यदब्धं विप्र मन्मभिः ॥२४॥

हे बलशाली अग्निदेव ! स्त्री-पुरुष में कहाँ क्या (विशेषता) हैं, इस बात को कहते और देखते हुए विचरणशील राक्षसों को भस्म कर डालें । हे ज्ञाननिष्ठ अग्निदेव ! आप अदम्य हैं, हम आपका स्तवन करते हैं, आप जाग्रत् रहें॥२४॥

प्रत्यग्ने हरसा हरः शृणीहि विश्वतः प्रति ।
यातुधानस्य रक्षसो बलं वि रुज वीर्यम् ॥२५॥

अपने तेज़ (पराक्रम) से आततायी असुरों (दुष्टों) को नष्ट करने वाले हे अग्ने ! इन असुरों के बल एवं पराक्रम को आप पूर्णतया विनष्ट कर दें॥२५॥

ऋग्वेद – दशम मंडल

सूक्त ८८

ऋषि: अंगिरसो मूर्धन्वान्, वामदेवयोवा
देवता – सूर्य वैश्वरानरोऽग्नि । छंद – त्रिष्टुप

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ॥१॥

जो पान योग्य (अथवा पालक), अविनाशी और देवताओं द्वारा सेवनीय सोमरस, दिव्यलोक का स्पर्श करने वाले, स्वर्ग (देव आवास) को जानने वाले अग्निदेव को आहुतिरूप में समर्पित किया गया है, उसके सर्वपोषण, उत्पादन और धारण करने के लिए देवगणों ने सुखप्रद अग्नि को संवर्द्धित किया है॥१॥

गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य ॥२॥

जब सम्पूर्ण भुवन अन्धकारग्रस्त होकर (प्रलयकाल या रात्रि में) तम से आच्छादित हो जाते हैं, तब (सृष्टि अथवा प्रभात के समय) अग्नि के प्रादुर्भूत होने पर यह सम्पूर्ण विश्व पुन: स्पष्ट रूप से प्रकट होता है । उस जगत् का विलय करने वाले इन महिमामय अग्निदेव के मैत्रीभाव में ही इन्द्रादि देव, पृथ्वी, आकाश, जल, अन्तरिक्ष तथा ओषधियाँ रमण करती हैं॥२॥

देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम् ।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम् ॥३॥

यज्ञीय (सृजन एवं पोषण की } प्रक्रिया के संचालक देवों ने हमें प्रेरणा प्रदान की है , अतएव हम उन अविनाशी (विश्वसृजेता) और विस्तृत अग्निदेव की प्रार्थना करते हैं, जो अग्निदेव अपने समर्थ तेज से द्यावा-पृथिवी तथा अन्तरिक्ष को विस्तारित करते हैं॥३॥

यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ॥४॥

जो वैश्वानर अग्निदेव, देवों द्वारा सेवित और सर्वप्रथम होता (आहुति देने वाले) हुए थे, जिन्हें वरणकर्ता देवगण, याजक आदि घृत से भली प्रकार प्रज्वलित करते हैं, उन्हीं अग्निदेव द्वारा उड़ने वाले पक्षियों,

गतिशील सर्पादि तथा स्थावर जङ्गमात्मक जगत् को शीघ्रता से उत्पादित किया गया है॥४॥

यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ॥५॥

हे ज्ञानी अग्निदेव ! जो आप सम्पूर्ण विश्व के मूर्धन्य स्थान पर प्रकाश रूप में रहते हैं, ऐसे आपके मानसिक चित्र , स्तुतियों तथा सुन्दर गायनों से हम आपको उपलब्ध करते हैं। आप यज्ञीय क्रम से आकाश, पृथ्वी के परिपूर्ण- कर्ता हैं॥५॥

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥६॥

रात्रिकाल (अथवा प्रलयरात्रि) में अग्निदेव इस जगत् के सम्पूर्ण प्राणियों के मस्तकरूप मूलाश्रय होते हैं, प्रातःकाल (सृष्टिकाल) में सूर्य के रूप में उत्पन्न होते हैं । इन अग्निदेव को यज्ञ-सम्पादक देवताओं की माया (कुशलता) कहा जाता है । वे ही सर्वज्ञाता होकर (विभिन्न रूपों में) शीघ्रता से अन्तरिक्ष में संचरित होते हैं॥६॥

दृशेन्यो यो महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ॥७॥

जो अग्निदेव अपनी महिमा से सर्वदर्शनीय, प्रज्वलनशील, दिव्यलोक में विराजमान, विशिष्ट रूप से तेजस्वी होकर सुशोभित होते हैं, उन्हों अग्निदेव को शरीर रक्षक सम्पूर्ण देवताओं ने सूक्त पाठ करते हुए हविष्यान्न की आहुतियाँ समर्पित कीं॥७॥

सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत्तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ॥८॥

सर्वप्रथम देवगणों ने पहले वाक् रूप में सूक्तों (श्रेष्ठ उक्ति अथवा दिव्य योजना) को बनाया। इसके पश्चात् अग्निदेव ने ऊर्जा प्रवाह को प्रकट किया, तब हविष्य (मूल पदार्थ) बनाया । इस प्रकार यह दिव्य यज्ञ सम्पन्न हुआ । यह यज्ञ काया (प्राणियों एवं लोकों) का संरक्षक भी हैं। इसे द्युलोक, पृथ्वी और अन्तरिक्ष जानते हैं॥८॥

यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा ॥९॥

जिस अग्नि का उत्पादन देवशक्तियों ने किया, जिस अग्नि में सम्पूर्ण लोक अपनी-अपनी आहुतियाँ समर्पित करते हैं, उसी अग्नि ने सरल मार्ग से पृथ्वी, द्युलोक और अन्तरिक्ष को ताप प्रदान किया॥९॥

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तमू अकृण्वन्त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ॥१०॥

द्युलोक और पृथ्वी को संव्याप्त करने वाले अग्निदेव को देवताओं ने देवलोक में स्तुति-प्रार्थनाओं द्वारा प्रकट किया। उसी सुखप्रदायक अग्नि को उन्होंने तीन भावो (पृथ्वी , अन्तरिक्ष और द्युलोक) में बनाया, वही अग्निदेव पृथ्वी पर सर्वव्यापी ओषधियों को परिपक्व अवस्था प्रदान करते हैं॥१०॥

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा ॥११॥

देवों ने जिस समय यज्ञीय क्रम में इन अग्निदेव को आदित्य (अखण्ड मूल ऊर्जा) तथा सूर्य रूप में आकाश में प्रतिष्ठित किया, तब विचरणशील युग्मों (धन एवं ऋण विभवयुक्त कणों) की रचना हुई। इसके बाद ही वे सम्पूर्ण लोकों को देखते हैं अर्थात् उसी समय इस सम्पूर्ण जगत् की रचना हुई॥११॥

विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् ॥१२॥

जो अग्निदेव विशेष दीप्ति से युक्त उधाओं के निर्माता हैं और गमनशील होकर अन्धकार को अपनी तेजस्विता से नष्ट करते हैं; विश्व-कल्याणकारी उन अग्निदेव को सम्पूर्ण देवताओं ने दिन का प्रकाशक बनाया॥१२॥

वैश्वानरं कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् ॥१३॥

क्रान्तदर्शी और यज्ञार्थी देवताओं ने अजर वैश्वानर अग्निदेव को प्रकट किया। जिस समय अग्निदेव विस्तृत और महिमामय होते हैं, उस समय वे अन्तरिक्ष में प्राचीनकाल से विहार करने वाले नक्षत्रों को देवताओं के समक्ष ही निष्प्रभावी बना देते हैं॥१३॥

वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् ॥१४॥

सदैव दीप्तिमान्, क्रान्तदशी और विश्व मंगलकारी अग्निदेव की हम मन्त्रों द्वारा प्रार्थना करते हैं । जो अग्निदेव अपनी महत्त्वपूर्ण उपयोगिता से द्यावा-पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं, वे अग्निदेव ऊपर और नीचे दोनों ओर से प्रकाशित होते हैं – तपते हैं॥१४॥

द्वे स्रुती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।

ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥१५॥

पितरों, देवों और मनुष्यों के दो मार्गों (देवयान और पितृयान) से हम परिचित हैं । यह जगत् माता-पिता रूप द्यावा-पृथिवी के बीच प्रकट हुआ है। यह संसार अग्रसर होते हुए (देवलोक और पितृलोक को जाते हुए) उन दोनों (देवयान और पितृयान) मार्गों को प्राप्त करता है॥१५॥

द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम् ।
स प्रत्यङ्विश्वा भुवनानि तस्थावप्रयुच्छन्तरणिर्भ्राजमानः ॥१६॥

परस्पर संयुक्त रूप से गतिशील रहने वाले द्यावा-पृथिवी, सूर्य से उत्पादित, मस्तक (ऊर्ध्व) स्थान पर विद्यमान, मननीय स्तुतियों से परिशोधित होकर अग्निदेव को धारण करते हैं। सबको तारने वाले वे देदीप्यमान अग्निदेव व्यतिक्रम रहित होकर अपने कार्य को करते हुए सम्पूर्ण लोकों के सम्मुख विद्यमान रहते हैं॥१६॥

यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित्सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् ॥१७॥

जिस समय नीचे के लोकों में व्याप्त और उच्च लोकों में संचरित अग्नि या वायु में विवाद होता है कि हम दोनों में यज्ञ से भली प्रकार कौन

परिचित है ? उस समय मित्रवत् ऋत्विग्गण यज्ञ सम्पादित करते हैं, परन्तु उनमें कोई भी इस विवादास्पद निर्णय को (स्पष्ट) करने में सक्षम नहीं (दोनों ही अपने-अपने अद्भुत यज्ञ रचाते हैं)॥१७॥

कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् ॥१८॥

हे पितरों ! हम आपसे स्पर्धाभाव से इन प्रश्नों को नहीं पूछते; ज्ञान प्राप्ति के लिए ही इन प्रश्नों को पूछने के इच्छुक हैं कि अग्नि कितने प्रकार की हैं? सूर्य कितने हैं ? उषाएँ कितनी हैं तथा जलदेवता कितने प्रकार के हैं ?॥१८॥

यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो वसते मातरिश्वः ।
तावद्दधात्युप यज्ञमायन्ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् ॥१९॥

हे वायुदेव ! जिस समय तक रात्रियाँ प्रभातवेला के तेज रूपी मुख का आवरण नहीं हटा देती हैं, तब तक वेदज्ञ ज्ञानियों में निम्नस्थ होता , अग्नि के समीप विराजमान होकर , यज्ञ के समीप बैठकर स्तोत्रों सहित उनकी उपासना करते हैं॥१९॥

सूक्त ८९

ऋषि: रेणुवैश्वामित्र:
देवता – इन्द्र, ५ इन्द्र सोमौ । छंद – त्रिष्टुप

इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्य मह्ना विबबाधे रोचना वि ज्मो अन्तान् ।
आ यः पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभिः प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा ॥१॥

जो इन्द्रदेव अपनी महानता से प्रकाश को भी बाधित कर देते हैं और पृथ्वी के अंतरंग भागों को भी अभिभूत करते हैं; मनुष्यों के धारणकर्ता जिनकी सामर्थ्य समुद्रों से भी अधिक है, वे विश्व को अन्धकारनाशक तेजस्तिता से द्यावा-पृथिवी को संव्याप्त करते हैं । हे वजो । उन इन्द्रदेव की स्तुति करो॥१॥

स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
अतिष्ठन्तमपस्यं न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥२॥

सामर्थ्यशाली इन्द्रदेव अपने तेज से अनेक लोकों को चारों ओर उसी प्रकार घुमाते हैं, जिस प्रकार सारथी चक्र को घुमाते हैं । निरन्तर

गतिशील और सदा कर्मरत अश्वों के समान इस सृष्टि के चतुर्दिक फेले, काले अन्धकार को इन्द्रदेव अपने प्रखर-तेज से विनष्ट करते हैं॥२॥

समानमस्मा अनपावृदर्च क्ष्मया दिवो असमं ब्रह्म नव्यम् ।
वि यः पृष्ठेव जनिमान्यर्य इन्द्रश्चिकाय न सखायमीषे ॥३॥

हे ऋत्विजो ! हमारे साथ संयुक्त होकर उन इन्द्रदेव के निमित्त उत्कृष्ट नूतन स्तोत्रों का उच्चारण करो, जो पृथ्वी और आकाश में अनुपम हैं। जो इन्द्रदेव यज्ञ में कहे गए पृष्ठनामक (या पोषक) स्तोत्र को पाने के लिए जिस प्रकार अभिलाषी हैं, वैसे हीं शत्रुओं के निरक्षण तथा मित्रों के संरक्षण के लिए भी तत्पर रहते हैं॥३॥

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥४॥

इन्द्रदेवता अपनी क्षमता से द्युलोक और पृथिवीलोक को वैसे ही सँभाले हैं, जैसे चक्र को धुरा । उन इन्द्रदेव के लिए उच्चस्वर से उच्चारण की जाने वाली स्तुतियाँ अन्तरिक्ष से जल प्रवाहित करने में सक्षम होती हैं॥४॥

आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी ।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ॥५॥

तेजस्विता के उत्पन्नकर्ता, शीघ्रता से अतिवेगपूर्ण प्रहारक, शत्रुओं को पराक्रम से कम्पायमान करने वाले, अनेक कर्मों के निर्वाहक, अस्त्र-शस्त्रधारी, सरल और धर्ममार्ग के प्रेरक सोमदेव सम्पूर्ण विस्तृत वनों में संव्याप्त होकर उन्हें (इन्द्रदेव को) संवर्धित करते हैं। कोई भी प्रतिमान इन्द्रदेव की समानता नहीं कर सकते॥५॥

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि ॥६॥

द्युलोक-पृथिवी, मरुस्थल, अन्तरिक्ष और पर्वत जिन इन्द्रदेव की समानता नहीं कर सकते, उन इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस क्षरित होता है । जिस समय दुष्ट रिपुओं पर उनका क्रोध बरसता है, उस समय वे दृढ़ता से उन्हें विनष्ट करते हैं तथा स्थिर पदार्थों को भी तोड़ डालते हैं॥६॥

जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ॥७॥

कुल्हाड़ी जैसे वनों को काट देती है, वैसे इन्द्रदेव ने असुरता का विनाश किया, शत्रुनगरियों को विनष्ट किया तथा कच्चे घड़े के समान मेघ को भग्न किया । इन्द्रदेव ने सहयोगी मरुद्गणों के साथ हमें जल प्रदान किया॥७॥

त्वं ह त्यदृणया इन्द्र धीरोऽसिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! आप धीर होकर स्तोताओं को उऋण करते हैं। जैसे खड्ग गाँठों को काटते हैं, उसी प्रकार आप साधकों के दुःखों को विनष्ट करते हैं । जो अज्ञानग्रस्त मनुष्य वरुण और मित्र के बन्धु के समान धारक कर्म में बाधक होते हैं, इन्द्रदेव उन्हें विनष्ट करते हैं॥८॥

प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः प्र संगिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
न्यमित्रेषु वधमिन्द्र तुम्रं वृषन्वृषाणमरुषं शिशीहि ॥९॥

जो दुष्कर्मी लोग मित्र, अर्यमा, प्रशंसनीय मरुद्गण और वरुण को पीड़ित करते हैं, हे कामनावर्षक इन्द्रदेव ! उन शत्रुओं का संहार करने के लिए आप अपने वेगवान्, सामर्थ्यशाली और प्रदीप्त वज्रास्त्र को धारण करें॥९॥

इन्द्रो दिव इन्द्र ईशे पृथिव्या इन्द्रो अपामिन्द्र इत्पर्वतानाम् ।
इन्द्रो वृधामिन्द्र इन्मेधिराणामिन्द्रः क्षेमे योगे हव्य इन्द्रः ॥१०॥

द्युलोक, पृथ्वी, जल और पर्वतों आदि सबमें इन्द्र का आधिपत्य है। अनुभवशील वृद्धों और ज्ञानी मनुष्यों पर उनका ही स्वामित्व है। नवीन पदार्थों के पाने और प्राप्त पदार्थों के संरक्षण के लिए इन्द्रकी स्तुति करनी चाहिए॥१०॥

प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः प्रान्तरिक्षात्प्र समुद्रस्य धासेः ।
प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात्प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः ॥११॥

रात्रि, दिवस, अन्तरिक्ष, जलधारणकर्ता समुद्र, वायु के विस्तृत स्थान, पृथ्वी की सीमा, नदियों और मनुष्यों आदि सभी से इन्द्रदेव की शक्ति महिमामय है। इन्द्रदेव सबका अतिक्रमण कर जाते हैं॥११॥

प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः ।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥१२॥

हे इन्द्रदेव ! आपका शत्रुहननकर्ता अक्षय वास, ज्योतिर्मयी उषा की ध्वजा किरण के समान हीं शत्रुओं को ध्वस्त करे । आप सन्तापकारी, भयंकर गर्जनकारी, आकाश से बिजली की तरह पड़ने वाले वज्र से विरोधी शत्रुओं का संहार करें॥१२॥

अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥१३॥

प्रकट होने के साथ इन्द्रदेव के पीछे-पीछे मास, वन, ओषधियाँ और पर्वत अनुगमन करते हैं। कान्तिमान् आकाश, पृथ्वी तथा जल ये सभी इन्द्रदेव का अनुगमन करते हैं॥१३॥

कर्हि स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ॥१४॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रख्यात अस्त्र (या बाण) से, युद्ध करने वाले पापकर्मी राक्षसों को नष्ट करते हैं; वह कब उत्पन्न होगा ? जिससे शिवद्रोही राक्षस, वध-स्थल पर पशुओं के समान मृत्यु को प्राप्त करके धराशायी हों॥१४॥

शत्रूयन्तो अभि ये नस्ततस्रे महि व्राधन्त ओगणास इन्द्र ।
अन्धेनामित्रास्तमसा सचन्तां सुज्योतिषो अक्तवस्ताँ अभि ष्युः ॥१५॥

हे इन्द्रदेव ! जिन असुरों ने शत्रुतापूर्वक पीड़ा पहुँचाने की दृष्टि से हमें सभी ओर से घेर लिया है, वे शत्रु गहन अन्धकार में गिरें और प्रकाशमयी रात्रि भी उनके लिए अन्धकारमयी रात्रि सिद्ध हो॥१५॥

पुरूणि हि त्वा सवना जनानां ब्रह्माणि मन्दन्गृणतामृषीणाम् ।
इमामाघोषन्नवसा सहूतिं तिरो विश्वाँ अर्चतो याह्यर्वाङ् ॥१६॥

हे इन्द्रदेव ! यजमान आपके निमित्त यज्ञादि अनुष्ठान करते हैं। स्तोताओं द्वारा संयुक्तरूप से की जाने वाली प्रार्थनाओं द्वारा हम भी आपको हर्षित करते हैं, अत: प्रसन्न होकर आप संरक्षण के लिए हमारे निकट आएँ॥१६॥

एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् ॥१७॥

हे इन्द्रदेव ! हम कृपापूर्वक संरक्षण करने वाले आपके अनुग्रह को ही उपलब्ध करें । इस हेतु हम बारम्बार आपकी नवीन स्तुतियाँ करते हैं। हम विश्वामि-वंशज निश्चित ही आपके अनुमह से श्रेष्ठ दिनों को प्राप्त करें॥१७॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१८॥

इस संग्राम में हम अतिपावन, ऐश्वर्याभिषति, यजमानों के अनुग्रहकर्ता, उग्र, युद्धेच्छुक शत्रुविनाशक, सम्पूर्ण धन-ऐश्वर्यों के विजेता तथा पुरुष श्रेष्ठ इन्द्रदेव को अन्न प्राप्ति के निमित्त तथा संरक्षणार्थ आवाहित करते हैं॥१८॥

सूक्त ९०

ऋषिः नारायणः
देवता – पुरुष । छंद – अनुष्टुप १६ त्रिष्टुप

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

सहस्रों शिर वाले , सहस्रों नेत्र वाले और सहस्रों चरण वाले जो विराट् पुरुष हैं, वे सारे ब्रह्माण्ड का अतिक्रमण करके उसे दस अँगुलियों (निर्माण करने वाले अवयवों) में आवृत किये हुए हैं॥१॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

जो सृष्टि बन चुकी है और जो बनने वाली है, यह सब विराट् पुरुष ही हैं। इनके एक चरण में ये सभी प्राणी हैं और तीन चरण अनन्त दिव्यलोक में स्थित हैं॥२॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

इस जगत् का जितना भी विस्तार हैं, उससे भी बड़ा वह विराट पुरुष है । इस अमर जीव जगत् का भी वही स्वामी है । जो अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त करते हैं, उनके भी वही स्वामी हैं॥३॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥४॥

ऊपर (दिव्यलोक में) जिसके तीन चरण हैं, उस विराट् पुरुष के एक भाग में यह पुन: प्रकट हुआ। तब अन्न खाने वाले प्राणियों) तथा अन्न न खाने वाले (वनस्पति आदि) को संव्याप्त किया॥४॥

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

अधिष्ठाता परम पुरुष-परमात्मा से उस विराट् (प्रकाशित मूल सृष्टि तत्त्व) की उत्पत्ति हुई। वह निराट् (मूल तत्त्व) प्रकट होने पर विभाजित होने लगा, उससे भूमि आदि पिण्डों तथा फिर प्राणियों की उत्पत्ति हुई॥५॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥६॥

जब देवों ने उस विराट् पुरुष को हवि बनाकर यज्ञ (सृष्टि सृजन यज्ञ) करना प्रारम्भ किया, तो उसमें वसन्त ऋतु घृत की तरह, ग्रीष्म ऋतु समिधाओं (ईधन) की तरह तथा शरद् ऋतु हविष्य की तरह प्रयुक्त हुई॥६॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥

जो देव और ऋषि (विशिष्ट प्राण-प्रवाह) उस यज्ञ के साध्य (साधनकर्ता) बने, उन्होंने उस पहले प्रकट यज्ञ पुरुष को ही यज्ञ में प्रोक्षित करके यजन कार्य किया॥७॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँन्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥८॥

उस सर्वहुत यज्ञ से तृप्तिकारक आज्य (पोषक सार तत्व) उत्पन्न हुआ। उससे वायु में गमनशील, पदों तथा ग्रामों में रहने वाले प्राणियों की उत्पत्ति हुई॥८॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥९॥

उस विराट् यज्ञ पुरुष से ऋग्वेद एवं सामगान का प्रकटीकरण हुआ। उसी से यजुर्वेद एवं अथर्ववेद की ऋचाओं को प्रकटीकरण हुआ॥९॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

उस विराट् यज्ञ पुरुष से दोनों तरफ दाँत वाले पशु, घोड़े, गौएँ, बकरी और भेड़े आदि उत्पन्न हुए॥१०॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

संकल्प द्वारा प्रकट हुए जिस विराट् पुरुष को, ज्ञानीजन विविध प्रकार से वर्णन करते हैं । वे उसकी कितने प्रकार से कल्पना करते हैं? उसका मुख क्या है ? भुजाएँ, जाँचें और पाँव कौन से हैं? शरीर संरचना में वह पुरुष किस प्रकार पूर्ण बना?॥११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

इस विराट् पुरुष के मुख से ब्रह्मविद की , बाहुओं से शौर्यवान् क्षत्रिय, ऊरु प्रदेश से वैश्य (वितरण कर्ता) तथा पैरों से शूद्र (श्रमशील) वर्गों या प्रवृत्तियों की उत्पत्ति हुई॥१२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥

विराट् पुरुष परमात्मा के मन से चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, कर्ण से वायु एवं प्राण तथा मुख से अग्नि का प्रकटीकरण हुआ॥१३॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४॥

विराट् पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष , सिर से घुलोक, पैरों से भूमि, कानों से दिशाएँ प्रकट हुईं, इसी प्रकार लोकों को निर्मित किया गया है॥१४॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥

देवगण जब इस सृष्टियज्ञ का टाना-बाना फैला रहे थे, तो उन्होंने इसकी सात परिधियाँ बनायीं, तीन गुणित सात उसकी समिधाएँ हुईं । उसमें इस (स्वाधीन) पुरुष को, पशु(बन्धन युक्त चेतना) को आबद्ध किया गया॥१५॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

देवों ने यज्ञ पुरुष (यज्ञीय संकल्प) से ही यज्ञ (सृष्टिकर्म) का यजन कार्य किया। इस प्रकार के यजन को धर्म कार्यों में प्रथम स्थान प्राप्त है। इस प्रकार यज्ञीय संकल्प के अनुशासन में (यज्ञ रूप कर्म करने वाले) महिमा सम्पन्न लोग भी उन स्वर्गादि स्थानों में वास करने लगे, जहाँ इस प्रक्रिया के पूर्व साधन देवगण रहते थे॥१६॥

सूक्त ९१

ऋषि: अरुणौ वैतद्रव्य
देवता – अग्नि । छंद – जगती १५ त्रिष्टुप

सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निळस्पदे ।
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते ॥१॥

जाग्रत् (ज्ञानवान्) पुरुषों से स्तुत्य अग्निदेव प्रज्वलित होते हैं। समस्त वियों के होता, उदार, दानशील अग्निदेव अन्न की कामना करते हैं। वे श्रेष्ठ, सर्वव्यापी, प्रकाशवान हैं तथा मित्र भाव रखने वाले के मित्र हैं॥१॥

स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव ।
जनंजनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्यो विशंविशम् ॥२॥

सुशोभित और अतिथिरूप पूजनीय अग्निदेव यजमानों के प्रत्येक गृहों और वनों में रहते हैं। जन-हितैषी अग्निदेव प्रत्येक प्राणी में संव्याप्त

होकर किसी की उपेक्षा नहीं करते, वे प्रजाजनों के लिए कल्याणकारी हैं तथा सभी मनुष्यों के गृह में वास करते हैं॥२॥

सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुरग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित् ।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद्द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप कुशलता से उत्पन्न अति कुशल हैं। आप कर्मों में श्रेष्ठ कर्म हैं और काव्य (वेद मन्त्रों) से उत्पन्न क्रान्तदर्शी हैं। आप सर्वज्ञ और वैभव के स्थापक हैं । द्यावा और पृथिवी जिस धन के संवर्द्धक हैं,उस सबके आप ही अद्वितीय स्वामी हैं॥३॥

प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासदः ।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयोऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः ॥४॥

हे अग्ने !यज्ञस्थल के ऊपर यथासमय जो घृतयुक्त आवास बनाया गया है, आप वहाँ पहुँचकर विराजमान हों। आपकी ज्वालाएँ उषाकाल की दीप्ति के समान विमल और सूर्य की किरणों के समान निर्दोष हैं॥४॥

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये ॥५॥

हे अग्निदेव ! जब आप मुख में डाले गये अन्न (आहार) के रूप में ओषधियों, वृक्ष-वनस्पतियों को जलाते हैं, तव आपकी रश्मियाँ वर्षाकाल की विद्‌युत् अथवा उषाकाल के प्रकाश की भाँति प्रतीत होती हैं ॥५॥

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः ।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥६॥

ऋतु के अनुरूप उत्पन्न उस अग्नि (ऊर्जा) को ओषधियाँ गर्भ में धारण करती हैं । जल धाराएँ माता की तरह उसे पैदा करती हैं। वनस्पतियों और ओषधियाँ उसे गर्भरूप में धारण करके प्रकट करती हैं॥६॥

वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे ।
आ ते यतन्ते रथ्यो यथा पृथक्छर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥७॥

हे अग्ने ! वायु के द्वारा प्रकम्पित आप अपने प्रिय आहार वनस्पतियों की ओर प्रेरित होकर जब उसे लपटों द्वारा चारों ओर से घेर लेते हैं, उस समय आपका अदम्य तेज सब कुछ भस्म कर देने की इच्छा से, सभी दिशाओं में उसी प्रकार बढ़ता है, जैसे कोई रथ पर सवार शूरवीर हो॥७॥

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या समानमित्तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् ॥८॥

विवेक बुद्धि को बढ़ाने वाले, शत्रुओं का विनाश करने वाले, यज्ञ एवं देवताओं के होतारूप अग्निदेव की हम वन्दना करते हैं । हे अग्निदेव! (थोड़ी अथवा बहुत) हविष्यान्न ग्रहण करने के लिए हम आपका समवेत स्वर में आवाहन करते हैं। आपके अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं पुकारते॥८॥

त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद्देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः ॥९॥

हे अग्ने ! यज्ञ काल में आपको प्रतिष्ठित करने की आकांक्षा करके होतारूप में आपका ही वरण करते हैं। सुखदायी देवों के अभिलाषी याजक, कुशाओं का छेदन करके आपके लिए ही आहुतियों को धारण करते हैं॥९॥

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥१०॥

हे अग्निदेव ! यथाकाल आपको ही होता और पोता के कार्य का निर्वाह करना पड़ता है । यज्ञकर्ता यजमान के लिए आप ही नेष्टा और आग्नीध हैं। आप ही प्रशास्ता और अध्वर्यु के कार्यों को निभाते हैं। आप ही ब्रह्मा और घर में गृहपति हैं॥१०॥

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।
तस्य होता भवसि यासि दूत्यमुप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि ॥११॥

हे अग्निदेव ! जो मनुष्य आपको अमृतस्वरूप जानकर समिधा और हविष्यान्न समर्पित करते हैं, उनके लिए आप होता रूप होते हैं । उन्हीं के निमित्त आप देवों के पास दूतकर्म करते हैं । ब्रह्मा के समान आप उपदेश करते हैं; यजमान रूप में हवि समर्पित करते हैं तथा यज्ञ में अध्वर्यु का कार्य करते हैं॥११॥

इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद्वर्धनो यासु चाकनत् ॥१२॥

अग्निदेव के निमित्त ही ये सभी वेदवाक्य एवं स्तोत्र एकाग्रतापूर्वक कहे जाते हैं। सर्वज्ञ और आश्रयभूत अग्निदेव में अर्थ की कामना से युक्त ये सभी स्तोत्र समाहित होते हैं । श्री बढ़ाने वाले अग्निदेव इन स्तवनों के विस्तार से हर्षित होते हैं॥१२॥

इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः ।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥१३॥

स्तोत्र के अभिलाषी उन प्राचीन अग्निदेव के निमित्त सर्वोत्तम, नवीन और सुन्दर स्तोत्र कहते हैं। वे अग्निदेव हमारी प्रार्थना सुनें । सौभाग्यकांक्षिणी नारी की भाँति शोभनीय वस्त्रों एवं अलंकारों से सुसज्जित अग्निदेव को हम हृदय के मध्य धारण करते हैं॥१३॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।

कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ॥१४॥

अन्न-रस का पान करने वाले, सोम की आहुति ग्रहण करने वाले, श्रेष्ठमति वाले अग्निदेव के लिए मन और बुद्धि को शुद्ध करो; इससे ही अश्व, सेचन में समर्थ वृषभ, गौ और मेष, सज्जित होकर भेट में प्राप्त होते हैं॥१४॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥१५॥

हे अग्ने ! हम आपको ज्वालाओं में हवि का हुवन करते हैं, जैसे स्रुवा में घृत और अभिषव के लिए प्रयुक्त पात्र में सोम रहता है, वैसे ही आप हमें अन्न, वीर पुत्रादि, प्रशंसनीय, श्रेष्ठ धन और सब लोकों में यशस्वी अपार वैभव प्रदान कर सुखी करें॥१५॥

सूक्त ९२

ऋषि: अरुणौ शार्याती मानव:
देवता – विश्वे देवा । छंद – जगती

यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम् ।
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद्वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत ॥१॥

हे देवगण ! आप यज्ञ के नायक, मनुष्यों के संरक्षक, होतो, रात्रि के अतिथि और विविध ऐश्वर्यवान् अग्निदेव की अर्चना करें । सूखे काष्ठों को जलाने वाले और हरित काष्ठों में टेढ़े जाने वाले, सुखवर्षक यज्ञ के ध्वजरूप और 'यजनीय अग्निदेव आकाश में शयन करते हैं॥१॥

इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते ॥२॥

देवताओं और मनुष्यों ने सर्वोपरि संरक्षक और धर्मधारक अग्निदेव को यज्ञ का साधक बनाया। वे तेजस् सम्पन्न वायु के पुत्र और महान् पुरोधा हैं । उषाएँ उन्हें सूर्यदेव के समान ही स्पर्श करती हैं॥२॥

बळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे ।
यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ॥३॥

स्तुत्य अग्निदेव से सम्बन्धित हमारा ज्ञान सदैव सत्य हो, ऐसी हमारी अभिलाषा है । इस यज्ञाग्नि में प्रदत्त की गई हमारी आहतियाँ अग्निदेव सेवन करें, ऐसी हम कामना करते हैं । जिस समय यज्ञाग्नि की प्रचण्ड ज्वालाएँ देदीप्यमान होती हैं, तभी हम अग्निदेव के निमित्त आहुतियाँ समर्पित करते हैं॥३॥

ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्यरमतिः पनीयसी ।
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः ॥४॥

विस्तृत द्युलोक, व्यापक अन्तरिक्ष, अतिस्तुत्य और अनन्त पृथ्वी यज्ञाग्नि को प्रणाम करते हैं। इन्द्र, मित्र, वरुण, भग, सविता आदि पवित्र सामर्थ्ययुक्त देवगण उन्हीं को सम्मानित करते हैं॥४॥

प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे ।
येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते ॥५॥

नदियाँ गतिशील मरुद्गणों का सहयोग प्राप्त करके तीव्रता से प्रवाहित होती हैं और असीम भूक्षेत्र को आच्छादित करती हैं। सभी जगह विचरणशील इन्द्रदेव चारों ओर जाकर मरुतों की सहायता से आकाश में गरजते हैं और महावेगशील होकर सम्पूर्ण विश्व में जल बरसाते हैं ॥५॥

क्राणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः ।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमेन्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ॥६॥

जिस समय मरुद्गण अपने कार्य को प्रारम्भ करते हैं, उस समय वे सभी मनुष्यों में संव्याप्त होते हैं। वे अन्तरिक्ष के श्येन पक्षी और मेघ के आश्रयभूत हैं । वरुण, मित्र, अर्यमा और अश्वारोही इन्द्रदेव वेगशील मरुद्गणों के साथ इन सभी प्रकरणों को देखते हैं॥६॥

इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
प्र ये न्वस्यार्हणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ॥७॥

स्तोतागण इन्द्रदेव से संरक्षण एवं बल-पौरुष तथा सूर्यदेव से दृष्टि-सामर्थ्य प्राप्त करते हैं । जो स्तोता इन्द्रदेव की उचित रीति से स्तुति करते हैं, वे यज्ञकाल में इन्द्रदेव के वज्र को सहायक रूप में प्राप्त करते हैं॥७॥

सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरमदिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः ।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ॥८॥

इन्द्रदेव के भय से सूर्य भी अपने अश्वों को प्रेरित करते और मार्ग में चलते हुए सबको प्रसन्न करते हैं। जो इन्द्रदेव भयानक और जलवर्षक हैं, उनसे कौन भयभीत नहीं होता ? वे आकाश में गर्जना

करते हैं । शत्रुओं का पराभव करने वाली वज्रध्वनि उन्हीं के प्रभाव से नित्य उत्पन्न होती रहती है॥८॥

स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्कसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन ।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ॥९॥

अश्वारूढ़ और उत्साहप्रद मरुद्गणों के सहयोग को प्राप्त कर आत्मशक्ति सम्पन्न, अपनी सामर्थ्य से स्वयं कीर्तिवान्, सुखप्रद, जो देव दिव्यलोक से साधकों की आकांक्षा को पूर्ण करते हैं । हे ऋत्विजो आप निष्काम मरुद्गणों के साथ रहने वाले वीर शत्रुओं के हन्ता, सामर्थ्यशाली उन रुद्रदेव को नमन करें, स्तोत्र समर्पित करें॥९॥

ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः ।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारयद्देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे ॥१०॥

कामवर्षक बृहस्पति और सोमाभिलाषी देवों ने प्रजा के लिए अन्नादि का संग्रह किया ।सर्वप्रथम अथर्वा ऋषि ने यज्ञ द्वारा देवों को आनन्दित किया, देवगण और भृगुकुलोत्पन्न ऋषि यज्ञ में गये और उसे समझा॥१०॥

ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे ॥११॥

नराशंस यज्ञ में चार प्रकार की अग्नियाँ स्थापित की गईं। अतिवर्षक द्यावा-पृथिवी, यम, अदिति, धनदाता अग्निदेव, ऋभुक्षण, रुद्रपत्नी, मरुद्गण और विष्णु आदि सभी देव, यज्ञ में स्तोत्रों से स्तवित होते हैं॥११॥

उत स्य न उशिजामुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्न्यो हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् ॥१२॥

श्रेष्ठ आकांक्षा से हम लोग जिन विस्तृत स्तोत्रों का पाठ करते हैं, यज्ञकाल में अन्तरिक्षवासी अहिर्बुध्न्य अग्निदेव इन सभी स्तोत्रों को सुनें । आकाश में भ्रमण करने वाले सूर्य और चन्द्र भी आकाश में स्थित होकर अन्त:करण से इन स्तोत्रों को श्रवण करें॥१२॥

प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु वायुरिष्टये ।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम् ॥१३॥

सम्पूर्ण देवताओं के कल्याणकारी और जल के वंशज पूषादेव, हमारे पशुओं आदि का संरक्षण करें । यज्ञ के निमित्त वायुदेव भी हमारे संरक्षक हो । आत्मरूप में स्थित वायुदेव की अन्न, धन के निमित्त इर्शना करें । हे। स्तुत्य अश्विनीकुमारो ! मार्ग में गमन करने के लिए आप इन स्तोत्रों का श्रवण करें॥१३॥

विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि ।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वणमक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम् ॥१४॥

अन्तःकरण में जो प्रजाजनों के अभयदाता स्वामी हैं, जो अपनी यशस्वी कीर्ति स्वयं उत्पादित करते हैं , उनकी हम प्रार्थना करते हैं। देव पत्नियों के साथ स्वतन्त्र (स्थिर) देवमाता अदिति और निशापति चन्द्रमा की हम प्रार्थना करते हैं। सभी मनुष्यों के अनुग्रहकर्ता आदित्य और सर्वजगत् पालक इद्रदेव की भी हम प्रार्थना करते हैं॥१४॥

रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम् ।
येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति ॥१५॥

इस यज्ञ में सुजन्मा अंगिरा ऋषि देवताओं की प्रार्थना करते हैं । जो (सोमवल्ली) पीसने के लिए पत्थरों को ऊपर उठाते हैं, वे अभिषवकर्ता भी यज्ञीय सोम को देखते और प्राप्त करते हैं । सर्वद्रष्टा इन्द्रदेव जिस सोमरस को पीकर हर्षित हुए, उन इन्द्रदेव का वज्रास्त्र आकाशमार्ग से अन्न उत्पादक जल को प्रकट करे॥१५॥

सूक्त ९३

ऋषिः तान्वः पार्थ्य
देवता – विश्वे देवा । प्रस्तार पंक्ति, २,३,१३ अनुष्टुप, ९ अक्षरैः पंक्ति, ११ नयंकुसारिणी, १५ पुरस्ताद्वृहती

महि द्यावापृथिवी भूतमुर्वी नारी यह्वी न रोदसी सदं नः ।
तेभिर्नः पातं सह्यस एभिर्नः पातं शूषणि ॥१॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप दोनों महान् विस्तार पाएँ । आप दोनों नारी (स्त्री या नेतृत्व में सक्षम) की भाँति हमारे लिए सदैव सहयोगी हों । इस प्रकार आप हमें शत्रुओं से बचाएँ । उनसे हमें हर प्रकार से संरक्षित करें॥१॥

यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति ।
यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासत्येनान् ॥२॥

जो मनुष्य सम्पूर्ण यज्ञीय कार्यों में देवताओं की अर्चना करते हैं तथा जो विभिन्न शास्त्रों के श्रोता, सुखप्रद हवियों द्वारा देवों की अर्चना करते हैं। वे हीं सच्चे सेवक हैं)॥२॥

विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः ।
विश्वे हि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ॥३॥

हे सर्वेश्वर ! देवताओं का महिमामय धारण योग्य ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । आप निश्चय ही सम्पूर्ण तेजस्विता के धारणकर्ता और यज्ञों में अपना भाग पाने वाले हैं॥३॥

ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा ।
कद्रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भगः ॥४॥

अर्यमा, मित्र, सर्वज्ञ वरुण, लोगों के स्तवनीय रुद्र, सर्वपोषक मरुद्गण और भगदेव ये सभी देवगण स्तुति योग्य हैं । ये मनुष्यों के सुखदाता तथा अमृत के समान हविर्द्रव्यों के अधिपति हैं॥४॥

उत नो नक्तमपां वृषण्वसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या ।
सचा यत्साद्येषामहिर्बुध्नेषु बुध्न्यः ॥५॥

हे वृषण्वसू (अश्विनीकुमारो) ! अहिर्बुध्य अग्निदेव जल (मेघों) के बीच उपस्थित रहते हैं। सूर्य और चन्द्र भी जल के संसाधन हैं। उनके साथ आप भी रात-दिन हमारे आवासों के लिए (रसों का संचार करें॥५॥

उत नो देवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुणा उरुष्यताम् ।
महः स राय एषतेऽति धन्वेव दुरिता ॥६॥

कल्याणकारी कर्मों के पालक अश्विनीकुमार , मित्र और वरुणदेव अपने शारीरिक तेज़ से हमारा संरक्षण करें। जिन यजमानों का ये देव संरक्षण करते हैं, वे महान् ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं तथा वे मरुस्थल के समान (कष्टदायी स्थितियों से) पार हो जाते हैं॥६॥

उत नो रुद्रा चिन्मृळतामश्विना विश्वे देवासो रथस्पतिर्भगः ।
ऋभुर्वाज ऋभुक्षणः परिज्मा विश्ववेदसः ॥७॥

रुद्रपुत्र मरुत्, अश्विनीकुमार, रथारूढ़ पूषा, ऋभु, अन्नवान् भग, सर्वगामी इन्द्र और सर्वज्ञ ऋभुक्षण आदि सभी देवगण हमें सुख प्रदान करें। हम सभी देवताओं की प्रार्थना करते हैं॥७॥

ऋभुर्ऋभुक्षा ऋभुर्विधतो मद आ ते हरी जूजुवानस्य वाजिना ।
दुष्टरं यस्य साम चिदृधग्यज्ञो न मानुषः ॥८॥

महान् इन्द्रदेव यज्ञ द्वारा कान्तिमान होते हैं । हे इन्द्रदेव ! आपके सेवक यजमान भी यज्ञ द्वारा आनन्दित होते हैं । यज्ञ की ओर अतिशीघ्रता से आने वाले आपके रथ के घोड़े अति सामर्थ्यवान् हैं। उनके यज्ञानुष्ठान मनुष्य के लिए साध्य नहीं हैं, वे सभी दिव्यतायुक्त हैं ॥८॥

कृधी नो अह्रयो देव सवितः स च स्तुषे मघोनाम् ।
सहो न इन्द्रो वह्निभिर्न्येषां चर्षणीनां चक्रं रश्मिं न योयुवे ॥९॥

हे सवितादेव !आप हमें कभी लज्जित न होने दें ।आप स्तोतओं से स्तुत्य हैं । मरुतों के साथ निवास करने वाले इन्द्रदेव, रथचक्र और रश्मियों (लगामों या किरणों) के समान इन लोकों को हमारे लिए नियंत्रित करते हैं॥९॥

ऐषु द्यावापृथिवी धातं महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः ।
पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षं रायोत तुर्वणे ॥१०॥

हे द्यावा-पृथिवि ! आप हमारे इन वीरपुत्रों को जीवनोपयोगी महान् यश प्रदान करें ।आप शक्ति को उपार्जित करने के लिए पौष्टिक अन्नादि प्रदान करें तथा शत्रु के संहार और विपत्तियों से परित्राण के लिए धन प्रदान करें॥१०॥

एतं शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित्सन्तं सहसावन्नभिष्टये ।
सदा पाह्यभिष्टये मेदतां वेदता वसो ॥११॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे समीप आगमन के लिए इच्छुक , आप कहीं भी स्थित स्तोताओं की अभीष्ट सिद्धि के लिए उनकी सदैव सुरक्षा करें। आपके प्रति जो स्तोता स्तुतिगान करते हैं, उनके अभिप्राय को आप सुनें॥११॥

एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम् ।
संवननं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् ॥१२॥

जिस प्रकार सूर्यदेव की तेजस्वी रश्मियाँ व्यापक दीप्तिमान् ज्योति को फैलाती हैं, उसी प्रकार हमारे ये स्तोत्रगान मनुष्यों की श्री-सम्पदा को बढ़ाएँ । जैसे शिल्पकार अक्षय, शीघ्र गतिशील अश्वों से वहन योग्य सुदृढ़ रथ को बनाते हैं, उसी प्रकार हमने इन स्तोत्रों की रचना की हैं॥१२॥

वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी ।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ॥१३॥

जिनसे हम ऐश्वर्य की कामना करते हैं, उनके निमित्त हम अतिश्रेष्ठ स्तोत्रों का बार-बार उच्चारण करते हैं। जिस प्रकार युद्ध में क्रमबद्ध पराक्रम किये जाते हैं अथवा जैसे घटींचक्र क्रमबद्ध होकर आगे-पीछे चलता है, वैसे ही हमारे स्तोत्र भी हों॥१३॥

प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥१४॥

जो देव पाँच सौ रथों में घोड़े जोतकर हमारे लिए यज्ञमार्ग में गमन करते हैं, उनके लिए प्रशंसनीय स्तोत्रों को उच्चारण हमने दुःशीम, पृथवान्, वेन और शक्तिशाली राम आदि ऐश्वर्यशाली नरेशों के समीप किया है॥१४॥

अधीन्न्वत्र सप्ततिं च सप्त च ।
सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः सद्यो दिदिष्ट मायवः ॥१५॥

उन नरेशों से तान्व, पार्थ्य और मायव आदि ऋषियों ने शीघ्र ही सतहत्तर गौओं की याचना (कामना) कीं॥१५॥

सूक्त ९४

ऋषि: अर्बुद: काद्रवेय: सर्प:
देवता – ग्रावाण: । जगती: प्रस्तार पंक्ति, ५,७,१४ त्रिष्टुप

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ॥१॥

ये ग्रावा (पाषाण) अभिषव क्रिया करें । हम याजक उन ध्वनि करने वाले पाषाणों की प्रार्थना करते हैं । हे ऋत्विग्गण ! आप स्तोत्र-पाठ करें । जिस समय आदरणीय और सुदृढ़ यात्रा, इन्द्रदेव के लिए सोमाभिषव की ध्वनि करते हैं, उस समय वे सोमपान करके सन्तुष्ट होते हैं॥१॥

एते वदन्ति शतवत्सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत ॥२॥

ये ग्रावा सैकड़ों और सहस्रों मनुष्यों के समान शब्दायमान, तेजस्वी मुखों से देवों को आवाहित करते हैं। उत्तमकर्मा ये पाषाण यज्ञ को प्राप्त करके देवों के आवाहक अग्निदेव से पहले ही सेवनीय हविष्यान्न को उपलब्ध करते हैं॥२॥

एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि ।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ॥३॥

लाल रंग की वृक्षशाखा का भक्षण करते हुए बैलों के समान ही ये ग्रीवा शब्द करते हैं। मांसाहारी जिस प्रकार मांस के पकने पर आनन्दप्रद शब्द करते हैं, वैसे ही ये सोमाभिषव करते हुए ध्वनि करते हैं॥३॥

बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु ।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ॥४॥

आनन्दप्रद चूसे (निचोड़े) जाते हुए सोम से इन्द्रदेव को आवाहित करते हुए ये प्रावा-भयंकर ध्वनि करते हैं। इन्होंने मुख से (पान करने योग्य) आनन्दप्रद सोमरस को उपलब्ध किया। ये अभिषव कार्य में संलग्न और धीर-गम्भीर होकर अपनी शब्दं गर्जनाओं से पृथ्वी को परिपूर्ण करते हुए भगिनीस्वरूपा अँगुलियों के साथ हर्षित होकर नाचते हैं॥४॥

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥५॥

पत्थरों की ध्वनि से लगता है कि अन्तरिक्ष में पक्षी कलरव कर रहे हैं। मृगभूमि में ये गतिशील कृष्णमृगों के समान गतिमान् होकर नाच रहे हैं। निष्पादित सुखदायी सोमरस को ये पत्थर नीचे गिराते हैं, मानों वे सूर्य के समान वेत वर्णरूप जल को ग्रहण करते हैं॥५॥

उग्रा इव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ॥६॥

जिस प्रकार बलिष्ठ अश्व पारस्परिक सहयोग से रथ के धुरे को धारण करके रथवहन करते हैं, वैसे ही ये कामनापूरक पाषाण यज्ञ के भार को धारण करके सोमरस को बरसाते हैं। जब ये सोम को ग्रहण करते हुए श्वास के साथ ध्वनि करते हैं – तभी अश्वों के समान इनके मुख से निकले हुए शब्दों को हम सुनते हैं॥६॥

दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ॥७॥

दस अँगुलियों से आबद्ध, दस प्रकार के कर्मों के प्रकाशक, दस अश्वों के तुल्य, सोम के साथ संयोजित, इस प्रकार के कर्मों के निर्वाहक, संचालनकर्ता, दस प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न होकर अभिषवण कार्य को वहन करने वाले पत्थरों की महिमा का गुणगान करें॥७॥

ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवस्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।
त ऊ सुतस्य सोम्यस्यान्धसोंऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ॥८॥

ये पाषाण दस अँगुलियों को बन्धनरूप रस्सी के समान समझकर शीघ्रता से कार्य सम्पन्न करते हैं। इन पाषाणों का अभिषवण कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय और गतिशील है । अभिस्रवित श्रेष्ठ सोमरस का भाग सबसे पहले इन्हें ही प्राप्त होता है॥८॥

ते सोमादो हरी इन्द्रस्य निंसतेंऽशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ।
तेभिर्दुग्धं पपिवान्त्सोम्यं मध्विन्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते ॥९॥

ये पाषाण सोम का सेवन करके इन्द्रदेव के दोनों अश्वों को चूमते (सेह करते) हैं। सोमरस अभिषवण क्रिया के समय वे शोधक यन्त्र के ऊपर विराजमान होते हैं। इन पाषाणों द्वारा सोमवल्ली से जिस मधुररस को निकाला जाता है, उसे पीकर इन्द्रदेव बढ़ते, विकसित होते और बलिष्ठ साँड़ के समान पराक्रम करते हैं॥९॥

वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेळावन्तः सदमित्स्थनाशिताः ।

रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् ॥१०॥

हे पाषाणो ! सोमरस आपको यज्ञ में अभिलषित सामर्थ्य प्रदान करेंगे । आप कभी निराश अथवा क्षीण न हों । अन्नादि से सम्पन्नों के समान आप सदैव भोजनादि से सन्तुष्ट रहते हैं । आप जिसके यज्ञ को ग्रहण करते हैं, वे ऐश्वर्यशाली मनुष्यों के समान उज्ज्वल कान्ति से युक्त और कल्याणकारी होकर रहते हैं॥१०॥

तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अश्रृथिता अमृत्यवः ।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ॥११॥

हे पाषाणो ! आपको परिश्रम, शिथिलता, मृत्यु, रुग्णता, जीर्णता, तृष्णा और स्पृहा कभी नहीं घेरते । आप स्वयं निराशा रहित होकर दूसरों (दुष्टों) को निराश करने वाले हों । आप (सार वस्तु को) समेटने तथा(अनुपयोगी को) फेंकने में कुशल हैं॥११॥

ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते ।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः ॥१२॥

हे पाषाणो ! आपके पूर्वज पर्वत चिरकाल से अटल, पूर्ण अभिलाषाओं से युक्त और किसी भी कारण अपने स्थान से हटने को तैयार नहीं हैं । वे.जीर्णता रहित, सोम वल्लियों से युक्त और हरिताभ होकर

आकाश और पृथ्वी को अपने अभिषव शब्द से परिपूर्ण करते हैं॥१२॥

तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पा इव घेदुपब्दिभिः ।
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति बप्सतः ॥१३॥

ये पाषाण उस सोम अभिषव क्रिया-काल में वेगशील रथों के समान ही ध्वनि करते हैं। अभिषव करने वाले पत्थर, धान्य का वपन करने वाले कृषकों के समान ही सोम को फैलाते हैं। ये उसे खाकर विनष्ट नहीं करते॥१३॥

सुते अध्वरे अधि वाचमक्रता क्रीळयो न मातरं तुदन्तः ।
वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्तामद्रयश्चायमानाः ॥१४॥

पूजनीय पाषाण यज्ञ में सोम अभिषवण कार्य करते हुए उसी प्रकार ध्वनि करते हैं, जिस प्रकार क्रीड़ारत शिशु माता को हाथों से मारते हुए खुशी में किलकारी शब्द करते हैं। सोम के अभिषवण कार्य में प्रयुक्त पाषाणों की विभिन्न प्रकार से प्रार्थना करें। अब पाषाण अभिषवण कार्य को स्थगित करें॥१४॥

सूक्त ९५

ऋषि: ऐल: पुरुरवा । उर्वशी देवता। २, ४-५, ७, ११, १३, १५-१६, १८ उर्वशी ऋषिका
देवता – पुरुरवा देवता । छंद : त्रिष्टुप

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन् ॥१॥

(पुरूरवा का कथन है) हे निष्ठुर पनि ! आप भावनापूर्वक कुछ समय के लिए ठहरें । हम दोनों का मिलन शीघ्र ही उपयोगी वार्ता से युक्त हो । वर्तमान समय में हम दोनों द्वारा किये गये पारस्परिक विचार-विमर्श से क्या हमारा भविष्य सुखप्रद नहीं हो सकता ?॥१॥

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि ॥२॥

(उर्वशी की उक्ति) मात्र निरर्थक वार्ता से हमारा क्या भला होगा ? उषा के समान आपके समीप से में चली आ रही हूँ ।अतः हे पुरूरवा

! आप दुबारा अपने घर वापस जाएँ ।मैं आपके लिए वायु के समान ही दुर्लभ॥२॥

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायुं चितयन्त धुनयः ॥३॥

(पुरूरवों की उक्ति) आपके विरह से व्यथित होकर मेरे तरकस से विजयश्री हेतु वाण नहीं छोड़े जाते, शक्तिशाली होते हुए भी मैं असंख्य गौओं (ऐश्वर्यों) को प्राप्त नहीं कर सकता । वीरतारहित होने से हमारे कर्म धूमिल हो गये हैं । युद्ध (जीवन-समर) में शत्रुओं को कम्पायमान करने वाला मैं सिंह गर्जना नहीं कर पाता॥३॥

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात् ।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥४॥

उषाकाल (सृष्टि उद्भव के समय में यदि यह (उर्वशी) श्वसुर (अपने वीर पुरुष अथवा श्वसुर-परमेश्वर) के निमित्त वैभव तथा आयु धारण करतीं, तो अपने घर (देह) में प्रवेश पाती और दिन-रात कामना करती हुई सुखोपभोग प्राप्त करती॥४॥

त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि ।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्वस्तदासीः ॥५॥

(उर्वशी कहती हैं) हे पुरूरवा ! दिन (सृष्टि के प्रारम्भ) के समय आपने मुझे तीन बन्धनों (त्रिगुणों) से बाँधा है। किसी अन्य कान्तिहीन या अप्रजननशील के साथ मेरी प्रतिद्वंद्विता नहीं थी, उसी भाव से मैं आपकी काया के अनुरूप आश्रय प्राप्त करती थी। उस समय शरीर पर मेरा ही शासन चलता था॥५॥

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपिर्ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥६॥

(पुरूरवी कहते हैं – उर्वशी की सखियाँ) सुजूर्णि (उत्तम गतियुक्त), श्रेणि (पंक्तिबद्ध), सुमे आपि (सुखप्रदायक), हृदेचक्षु (जलागार-आकाश चक्षु वाली), चरण्यु (विचरणशील) आदि तेजस्वी अरुणाभ अप्सराएँ तुम्हारे जाने के बाद सज्जित होकर नहीं आतीं । वे सब श्री-सम्पन्न, धारण शक्ति सम्पन्न तथा वाणी या किरण-प्रकाश सम्पन्न देवियाँ अब शब्द (उद्घोष) करती नहीं आती॥६॥

समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन्नद्यः स्वगूर्ताः ।
महे यत्त्वा पुरूरवो रणायावर्धयन्दस्युहत्याय देवाः ॥७॥

(उर्वशी की उक्ति) हे पुरूरवा ! जिस समय आपका जन्म हुआ, उस समय देवशक्तियाँ भी प्रादुर्भूत हुई । प्रवाहवती नदियों ने स्वयं उनका

संवर्द्धन किया। आपको महासंग्राम (जीवन-संग्राम) में रिपुओं के दलन के लिए देवताओं ने सामर्थ्य-शक्ति से सम्पन्न किया ॥७॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे ।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन्रथस्पृशो नाश्वाः ॥८॥

(पुरूरवा का कथन) जब यह मनुष्य देहधारी अपने स्वरूप को छोड़कर (भूलकर) अमानवी (अप्सराओं-प्रकृति की शक्तियों) के उपयोग की लालसा से उनके पास जाता था, तो वे उसी प्रकार भाग (विलुप्त) जाती थीं, जैसे भयभीत हरिणी या रथयुक्त घोड़े॥८॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥९॥

जब इन देवलोकवासिनी अप्सराओं के साथ मनुष्य देहधारी * पुरूरवा' अतिस्नेहपूर्ण सम्वाद और क्रिया-कलापों में सहयोग हेतु गये, तो वे अन्तर्धान हो गईं अर्थात् अपने (शरीरों) को प्रकट नहीं किया । वे दाँतों से लगाम को काटते , क्रीड़ाशील अश्वों के समान भाग गईं॥९॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥१०॥

उस उर्वशी ने अन्तरिक्ष से पतनशील विद्युत् के सदृश शुभज्योति धारण की और मेरी सम्पूर्ण कामनाओं को पूरा किया। उनके गर्भ से क्रियाशील और मनुष्यों का कल्याणकारी सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। उर्वशी उसे दीर्घायुध्य प्रदान करती है॥१०॥

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥११॥

(उर्वशी का कथन) हे पुरूरवी ! पृथ्वी के संरक्षण हेतु आपने पुत्र को जन्म दिया, मुझमें गर्भ की स्थापना की । इस बात से परिचित होकर मैंने बार-बार आपसे (मर्यादा पालन हेतु) कहा था; परन्तु आपने मेरे कथन पर ध्यान नहीं दिया । आपने पारस्परिक स्नेह को भंग किया है, अब शोक करने से कोई लाभ नहीं॥११॥

कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥

(पुरूरवा कहते हैं। ऐसा कब होगा कि जन्म पाकर पुत्र (जीव) आँसू न बहाता हुआ (भोगों में फंसकर दुःखी न होता हुआ } पिता परमेश्वर की इच्छा करेगा ? कौंन श्रेष्ठ समान मन वाले दम्पतियों को

विलग करता हैं ? (हे उर्वशी) तुम्हारे जैसा अग्नि (तेजस्वी पुत्र या चेतन जीव) कब श्वसुर गृह को प्रकाशित करेगा ?॥१२॥

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्न क्रन्ददाध्ये शिवायै ।
प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥१३॥

(उर्वशी का उत्तर) हे पुरूरवा ! मैं आपके लिए बोलती हूँ; आप (या आपका पुत्र) अश्रु बहाते हुए न लौटें, ऐसी कल्याण कामना करती हैं। आपका चाहा हुआ मैं आपके पास प्रेरित (या प्रेषित) कर देंगी । आप अपने अन्दर जो (आसक्ति) है, उसे निकाल दें। मूर्ख व्यक्ति मेरा ठिकाना प्राप्त नहीं कर पाते॥१३॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गन्तवा उ ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥१४॥

(पुरूरवा की उक्ति) आपके साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करने वाला पति ' गुरूरवा' आज पृथ्वी पर गिर पड़े अथवा संरक्षणरहित होकर दूरस्थ जाने के लिए प्रस्थान करे अथवा यहीं पृथ्वी पर शयन करे अर्थात् दुर्गति में मृत्यु को प्राप्त हो जाए अथवा उसे बलिष्ठ जंगल के वृक् आदि भक्षित कर लें॥१४॥

पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन् ।

न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥१५॥

(उर्वशी का कथन है) हे पुरूरवा ! आप मृत्यु को प्राप्त न हों, न यहाँ पृथ्वी पर गिरें तथा अमंगल-सूचक भेड़ियादि भी आपको भक्षित न करें, आपका विनाश न करें । स्त्रियों की मैत्री और स्नेह स्थायी नहीं होते । स्त्रियों और वृकों के हृदय समान होते हैं॥१५॥

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥१६॥

उर्वशी का कथन) मानवीय शरीरों को विभिन्न रूपों में धारण करके मनुष्यों के बीच मैंने भ्रमण किया । आपके साथ मैं चार वर्षों तक रही। घृतादि (तेजस्) का स्वाद दिन में अनेक बार प्राप्त किया। उसी से सन्तुष्ट होकर मैं विचरण कर रही हूँ॥१६॥

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥१७॥

(पुरूरवा का कथन) अन्तरिक्ष को परिपूर्ण करने वाली और तेजस् उत्पन्न करने वाली उर्वशी को मैं वसिष्ठ (पुरूरवा) अपने नियन्त्रण में लेना चाहता हूँ । श्रेष्ठ कर्मयुक्त दाता (जीव) आपके समीप रहे अर्थात्

आपको प्राप्त हो । मेरा हृदय आपके विरह में व्याकुल हो रहा है, इसलिये हे उर्वशी ! आप पुन: वापस लौटें॥१७॥

इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद्भवसि मृत्युबन्धुः ।
प्रजा ते देवान्हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे ॥१८॥

(उर्वशी ने कहा) हे इळापुत्र पुरूरवा ! ये सम्पूर्ण देवगण आपके सम्बन्ध में कह रहे हैं कि आप मृत्यु पर विजय प्राप्त करेंगे, (जीवन को बन्धन न मानें) अर्चना (प्राप्त सम्पदा का यज्ञीय उपयोग) करेंगे और स्वर्ग में जाकर सुख तथा आनन्द प्राप्त करेंगे॥१८॥

सूक्त ९६

ऋषिः वरुरांगिरसः सर्वहरिर्वा ऐन्द्र ।
देवता – हरिः । छंद : जगती, १२-१३ त्रिष्टुप

प्र ते महे विदथे शंसिषं हरी प्र ते वन्वे वनुषो हर्यतं मदम् ।
घृतं न यो हरिभिश्चारु सेचत आ त्वा विशन्तु हरिवर्पसं गिरः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! आपके दोनों घोड़ों कीं, इस महायज्ञ में हम अर्चना करते हैं। आपके सेवनीय, प्रशंसा-योग्य उत्साह की हम कामना करते हैं । जो इन्द्रदेव हरि (हरणशील सूर्यादि) के माध्यम से घृत (तेज अथवा जल) सिंचित करते हैं, ऐसे मनोहारी इन्द्रदेव के समीप हमारे स्तोत्र पहुँचें॥१॥

हरिं हि योनिमभि ये समस्वरन्हिन्वन्तो हरी दिव्यं यथा सदः ।
आ यं पृणन्ति हरिभिर्न धेनव इन्द्राय शूषं हरिवन्तमर्चत ॥२॥

हे ऋत्विग्गण ! जिस प्रकार अश्व द्रुतगति से इन्द्रदेव को दिव्य धामों में पहुँचाते हैं, उसी प्रकार स्तोत्रों से इन्द्रदेव के दोनों अश्वों को यज्ञस्थल की ओर प्रेरित करें। अश्वों सहित इन्द्रदेव की कल्याणप्रद सामर्थ्य की स्तुति करें । जैसे गौएँ दूध देती हैं, उसी प्रकार आप भी हरिताभ सोम एवं स्तुतियों से इन्द्रदेव को तृप्त करें॥२॥

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥

इन्द्रदेव का जो वज्र हरित (हरणशील) और लौह धातु का है, उस शत्रुनाशक वज्र को देनों हाथों से धारण किया जाता है । इन्द्रदेव वैभवशाली, सुन्दर हनुयुक्त हैं और क्रोधित होकर दुष्टजनों को बारों द्वारा विनष्ट करने वाले हैं। हरिताभ सोम द्वारा इन्द्रदेव को अभिषिंचित किया जा रहा है॥३॥

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥४॥

अन्तरिक्ष में सूर्य के सदृश कान्तिमान् वज्र, प्रशंसनीय होकर सबको संव्याप्त करता है , मानो उसने अपनी गति से रथ के वहनकर्ता अश्वों के सदृश ही सम्पूर्ण दिशाओं को संव्याप्त किया है। सुन्दर हनु से

युक्त और सोमरस पानकर्ता इन्द्रदेव, लोहे से विनिर्मित वज्रास्त्र के द्वारा वृत्रासुर के हननकाल में असाधारण आभा युक्त हुए॥४॥

त्वंत्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः ।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्यमसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥

हे हरिकेश इन्द्रदेव ! पुरातन कालीन श्रेषयों द्वारा आपकी ही यज्ञ में प्रार्थना की जाती थी तथा आप यज्ञ में उपस्थित होते थे । आप सबके स्पृहणीय और प्रशंसायोग्य हैं । हे इन्द्रदेव ! आपके सभी प्रकार के अन्न प्रशंसनीय हैं, आप कान्तिमान् और असाधारण विशेषताओं से सम्पन्न हैं॥५॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी ।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥६॥

स्तुतियोग्य और वज्रधारी इन्द्रदेव जब सोमरस के पान हेतु हर्षित होकर सन्नद्ध होते हैं, तो उस समय दो सुन्दर हरितवर्ण घोड़े उनके रथ में जोते जाकर उनको वन करते हैं । वहाँ (हमारे यज्ञस्थल में) इन कामना-योग्य इन्द्रदेव के निमित्त अनेक बार सोमरस का अभिषवण किया जाता हैं॥६॥

अरं कामाय हरयो दधन्विरे स्थिराय हिन्वन्हरयो हरी तुरा ।

अर्वद्भिर्यो हरिभिर्जोषमीयते सो अस्य कामं हरिवन्तमानशे ॥७॥

इन्द्रदेव के निमित्त यथोचित मात्रा में सोमरस रखा गया है, उसी सोमरस द्वारा इन्द्रदेव के अविचल घोड़ों को यज्ञ की ओर वेगशील किया जाता है । गतिशील घोड़े जिस रथ को युद्ध- भूमि की ओर वहन करते हैं, वहीं रथ इन्द्रदेव को कमनीय और सोमरस-सम्पन्न यज्ञ में प्रतिष्ठित करता है॥७॥

हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत ।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥८॥

हरि (किरणों) को श्मश्रु (दाढ़ी-मूंछ) एवं केशों के समान धारणकर्ता, लोहे के समान सुदृढ़ शरीरधारी इन्द्रदेव, तीव्रता से हर्षित करने वाले सोमरस का पान करके उत्साहित होते हैं। वे गतिशील अश्वों से यज्ञों तक पहुँचते हैं। दोनों अश्वों को जोतकर वे हमारे सभी प्रकार के विघ्नों का निवारण करें॥८॥

स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥९॥

इन्द्रदेव के दो हरितवर्ण अथवा दीप्तिमान् नेत्र यज्ञवेदी में दो स्रुवों के समान ही विशिष्ट ढंग से सोमरस पर केन्द्रित रहते हैं। उनके हरित

वर्ण के दोनों जबड़े सोमपान हेतु कम्पायमान होते हैं। शोधित चमस-पात्र में जो अति सुखप्रद, उज्ज्वल सोमरस था, उसे पीकर वे अपने दोनों अश्वों के शरीरों को परिमार्जित करते हैं॥९॥

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्योरत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥१०॥

कान्तिमान् इन्द्रदेव का आवास द्यावा-पृथिवी पर ही है। वे रथारूढ़ होकर घोड़े के समान ही अतिवेग से समर क्षेत्र में गमन करते हैं । हे इन्द्रदेव ! उत्कृष्ट स्तोत्र आपको प्रशंसित करते हैं। आप अपनी सामर्थ्यानुसार विपुल अन्न को धारण करते हैं॥१०॥

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥११॥

हे इन्द्रदेव ! आप अपनी महत्ता से द्यावा-पृथिवी को संव्याप्त करते हैं और नवीन प्रिय स्तोत्रों की कामना करते हैं । हे बल-सम्पन्न इन्द्रदेव ! आप गो (पृथ्वी) को हर्षित करने के लिए प्रेरक सूर्यदेव के लिए घर की तरह आकाश को प्रकट करते हैं॥११॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥१२॥

हे सुन्दर हनुयुक्त इन्द्रदेव ! आपके अश्व, रथ में जोते जाकर मनुष्यों द्वारा सम्पादित यज्ञ में आपको पहुँचाएँ। आपके निमित्त जो प्रेमपूर्वक तैयार किया गया, मधुर सोमरस प्रस्तुत है, उसे आप पिएँ । दस अँगुलियों से अभिषवित सोमरस, जो यज्ञ का साधनरूप हैं, आप युद्ध में विजय हेतु उसे पीने की कामना करें॥१२॥

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥१३॥

हे अश्वयुक्त इन्द्रदेव ! पहले प्रातः सवन में सोमरस दिया गया है, उसको आपने ग्रहण किया। इस समय (माध्यन्दिन सवन में) जो सोम प्रस्तुत हैं, वह मात्र आपके निमित्त ही हैं । आप इस मीठे सोमरस से आनन्द प्राप्त करें । हे विपुल वृष्टिकर्ता इन्द्रदेव ! आप अपने उदर को सोमरस से परिपूर्ण करें॥१३॥

सूक्त ९७

ऋषि: आथर्वणो भिषग्
देवता – औषधय:। छंद: अनुष्टुप

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥१॥

सृष्टि के प्रारम्भ में जो ओषधियाँ देवताओं द्वारा वसन्त, वर्ण, शरद इन तीन ऋतुओं में उत्पन्न हुई हैं, (पककर) पीत वर्ण हुईं उन ओषधियों के एक सौ सात स्थानों का ज्ञान हमें है । ॥१॥

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥२॥

हे मातृवत् पोषणगुण-सम्पन्न ओषधियो ! आप सभी के सैकड़ों नाम हैं और सहस्रों अर्थात् असंख्य अङ्कुर हैं। सैकड़ों कर्मों को सिद्ध करने वाली हे ओषधियो ! आप सभी हमें आरोग्य प्रदान करें ॥२॥

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्ण्वः ॥३॥

हे ओषधियो ! आप वेगवान् घोड़े के समान ही अनेक प्रकार की शत्रुवत् व्याधियों को तेजी से नष्ट करने वाली हों । पुष्पों से युक्त तथा फलोत्पादित गुणों से सम्पन्न आप हमारे लिए आनन्दप्रद सिद्ध हों ॥३॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥४॥

हे औषधियो ! आप माता के समान पालनशक्ति से युक्त, दिव्य गुणों से सम्पन्न हैं, आपके ऐसे गुणों की हम प्रशंसा करते हैं, इसे आप स्वीकार करें । हे पुरुष (यज्ञदेव या चिकित्सक) ! गौ, घोड़े, वस्त्र और स्वयं को मैं आपके निमित्त अर्पित करता हूँ ॥४॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥५॥

अश्वत्थ और पलाश वृक्ष पर निवास करने वाली हे ओषधियो ! आप यजमान को जीवनी-शक्ति प्रदान करके, उस पर अनुग्रह करती हैं, जिसके लिए आप विशिष्ट कृतज्ञता की पात्र हैं ॥५॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥६॥

जैसे राजागण समर में एकत्रित हो जाते हैं, उसी प्रकार जिसके पास ओषधियाँ एकत्र होती हैं, वही ज्ञानवान् व्यक्ति चिकित्सक कहलाता है । वही पीड़ाओं और व्याधियों का निवारण कर पाता है ॥६॥

अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७॥

इस (यजमान के) रोगों को दूर करने के लिये अश्ववती (शक्तिशाली), सोमवती (शान्तिदायक), ऊर्जवन्ती (ऊर्जा प्रदायक), उदोजस् (ओजस्विता की पोषक) आदि समस्त ओषधियों के दिव्य गुणों से हम भलीप्रकार परिचित हैं ॥७॥

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८॥

जैसे गोशाला से गौएँ बाहर की ओर जाती हैं, वैसे ही (यज्ञ के प्रभाव से) ओषधियों की सामर्थ्य विस्तृत वायुमण्डल में फैल जाती है । हे पुरुष ! ये ओषधियाँ आपको स्वास्थ्य तथा सम्पदा प्रदान करेंगी । ॥८॥

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९॥

हे ओषधियो ! आप विकारों को दूर करने वाली माता की भाँति 'निष्कृति' अर्थात् रोगों का निवारण करने वाली हैं। क्षुधाहरण करने वाले अन्न के समान ही आप मनुष्यों में स्थित रोगों को दूर करें ॥९॥

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो रपः ॥१०॥

चोर द्वारा गौओं के बाड़े पर आक्रमण करने के समान ही, अपने गुणों से सर्वत्र व्याप्त ओषधियाँ भी रोग समूह पर आक्रमण करती हैं तथा शरीर के समस्तविकारों को अपनी आरोग्यवर्द्धक सामर्थ्य से दूर करती हैं ॥१०॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११॥

विशेष शक्ति-सम्पन्न इन ओषधियों को सेवन करने के लिए जब हम हाथ में धारण करते हैं, तब राजयक्ष्मा (टी० बी०) जैसे भयानक रोग अपने को उसीप्रकार नष्ट मानते हैं, जैसे वधगृह में पहुँचने से पूर्व ही वध हेतु ले जाया जा रहा प्राणी, अपने को मरा हुआ मानता है ॥११॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२॥

हे औषधियों ! आप रोगी मनुष्य के अंग-प्रत्यङ्ग में जब पूर्ण रूप से समाहित होती हैं, तब वीर पुरुष द्वारा शत्रु के मर्मस्थल को पीड़ित करने के समान यक्ष्मादि शारीरिक रोगों को समूल विनष्ट कर देती हैं ॥१२॥

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥१३॥

हे (शरीराधिष्ठित) यक्ष्म रोग ! तुम शीघ्रगामी चाष (नीलकण्ठ) पक्षी, किकिदीवि (मयूर) पक्षी तथा वायु के समान वेगपूर्वक यहाँ से गमन करो तथा गोधा (गोह-हिंस्र जन्तु) के साथ विनाश को प्राप्त करा ॥१३॥

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥१४॥

हे ओषधियो ! आप परस्पर एक दूसरे के प्रभाव में वृद्धि करो । प्रयोग की गई एक ओषधि दूसरी के निकट आए और वह अन्य ओषधि के साथ निकटता स्थापित करे । सभी ओषधियाँ पारस्परिक सहकार भावना का परिचय देती हुईं हमारे निवेदन को स्वीकार करें ॥१४॥

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५॥

फलों से युक्त, फलों से रहित, पुष्पयुक्त तथा पुष्परहित ऐसी ये सभी ओषधियाँ बृहस्पति (विशेषज्ञ वैद्य) द्वारा प्रयुक्त होकर हमें रोगों से मुक्ति दिलाएँ ॥१५॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्बीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥१६॥

हे ओषधियो ! आप कुपथ्य जनित रोगों अथवा निन्दित कुकृत्यों से उत्पन्न, वरुण के पास एवं यम के बन्धन रूप रोगों, पापकृत्यों तथा

दैवी अनुशासन के न पालने से हुए सभी रोगों-विकारों से हमें विमुक्त करें ॥१६॥

अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥१७॥

दिव्य लोक से प्राण रूप में धरती पर आने वाली ओषधियाँ आश्वासन देती हैं कि जिस प्राणी पर हमारा अनुग्रह होता है, वह आरोग्य लाभ से कृतार्थ होकर समय से पूर्व मृत्यु को प्राप्त नहीं होता ॥१७॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे ॥१८॥

ओषधियों का अधिष्ठाता सोम है । वह सैकड़ों रोगों को नष्ट करने में सक्षम है । उन सबके बीच रहने वाली हे ओषधे !आप श्रेष्ठ गुणों से युक्त हैं । आप अभीष्ट सुख प्राप्ति एवं हृदय को शक्ति देने में पूर्ण सक्षम हैं ॥१८॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥१९॥

विभिन्न रूपों में धरती पर विद्यमान सोम सदृश विशिष्ट गुण-सम्पन्न विविध ओषधियाँ, बृहस्पति (विशेषज्ञ वैद्य) द्वारा तैयार करके सेवनार्थ दिये जाने पर, इस पुरुष को ओजस्वी एवं वीर्यवान् बनाएँ ॥१९॥

मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥२०॥

हे ओषधियो ! (रोगोपचार के लिए आपके मूलभाग को ग्रहण करने की आवश्यकता है अतएव) खदाई करने वाले पुरुष खनन दोष से सर्वथा वंचित रहें एवं जिस रोगी के उपचार हेतु आप का खनन किया जाता है, वह भी दोषमुक्त हो । हमारे स्त्री, पुत्रादि परिजन तथा गवादि पशु सभी आरोग्य-लाभ प्राप्त करें ॥२०॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।
सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥२१॥

जो ओषधियाँ सम्पर्क क्षेत्र में हैं या जो हमारे सम्पर्क क्षेत्र से दूरस्थ (दुर्गम क्षेत्रों में) हैं। ऐसी वृक्ष-लतादि। विभिन्न रूपों में उगी हुईं सभी ओषधियाँ जो हमारी प्रार्थना सुनती हैं, पारस्परिक सहयोग से इस मनुष्य को शक्ति-ओज से परिपूर्ण करें ॥२१॥

ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि ॥२२॥

हे राजन् सोम ! चिकित्सा विशेषज्ञ जिस रोगी के रोग को दूर करने के लिए हमारे मूल, फल, पत्रादि को ग्रहण करते हैं, उसको हम आरोग्य प्रदान करती हैं, ऐसा अपने स्वामी सोम से ओषधियाँ कहती हैं ॥२२॥

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥२३॥

हे ओषधे (सोमवल्ली) ! आप उत्तम हैं। सभी वृक्ष आपसे कनिष्ठ हैं । जो हमारा विनाश करना चाहें, वे भी हमारे वशीभूत रहें ॥२३॥

सूक्त ९८

ऋषि: आर्षटिवेणो देवापि (वृष्टिकाम)
देवता – देवा:। छंद: त्रिष्टुप

बृहस्पते प्रति मे देवतामिहि मित्रो वा यद्वरुणो वासि पूषा ।
आदित्यैर्वा यद्वसुभिर्मरुत्वान्त्स पर्जन्यं शंतनवे वृषाय ॥१॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप हमारे निमित्त प्रत्येक देवता के समीप जाएँ । (उनसे कहें कि) आप मित्र हैं, वरुण हैं, पूषा हैं, वसुगणों एवं मरुद्गणों के साथ आप शन्तनु(राजा अथवा शान्ति के विस्तार) के निमित्त जलवृष्टि करें ॥१॥

आ देवो दूतो अजिरश्चिकित्वान्त्वद्देवापे अभि मामगच्छत् ।
प्रतीचीनः प्रति मामा ववृत्स्व दधामि ते द्युमतीं वाचमासन् ॥२॥

हे देवापि ! आपके समीप से कोई एक ज्ञानवान् और तीव्रगामी देवता दूत बनकर हमारे समीप आए । हे बृहस्पतिदेव ! आप सभी विषयों

से विमुख होकर हमारी ओर आएँ । आपके सेवनार्थ हम तेजस्वी स्तोत्रों को समर्पित करते हैं ॥२॥

अस्मे धेहि द्युमतीं वाचमासन्बृहस्पते अनमीवामिषिराम् ।
यया वृष्टिं शंतनवे वनाव दिवो द्रप्सो मधुमाँ आ विवेश ॥३॥

हे बृहस्पतिदेव ! आप हमारे मुख में ऐसी तेजस्वी स्तोत्रयुक्त वाणी प्रदान करें, जो स्पष्ट एवं ओजस्वी हो। जिसके द्वारा हम शन्तनु (राजा या कल्याण के विस्तार हेतु) जल वृष्टि को प्रेरित करें । आकाश से मधुररस युक्त वृष्टि प्रवेश करे ॥३॥

आ नो द्रप्सा मधुमन्तो विशन्त्विन्द्र देह्यधिरथं सहस्रम् ।
नि षीद होत्रमृतुथा यजस्व देवान्देवापे हविषा सपर्य ॥४॥

हमें मधुरतायुक्त रस (वृष्टि) उपलब्ध हो । हे इन्द्रदेव ! आप रथ के ऊपर स्थापित प्रचुर ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । हे देवापि (देवोन्मुख) ! आप इस यज्ञीय कार्य में आकर विराजमान हों। आप यथासमय देवों की अर्चना करें तथा हविष्यान्न देकर उन्हें सन्तुष्ट करें ॥४॥

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ॥५॥

आर्टिषेण (जितेन्द्रिय) के पुत्र देवापि (देवों को पाने वाले) जो स्तुतिज्ञाता हैं, वे यज्ञकृत्य हेतु विराजमान हैं। वे ऊपरी अन्तरिक्ष समुद्र से नीचे के भूलोक स्थित समुद्र में दिव्यतायुक्त वृष्टि जल प्रदान करें ॥५॥

अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन् ।
ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु ॥६॥

इस भमि स्थित समद्र पर अन्तरिक्षस्थ समद्र प्रदेश को देवों ने आवरण युक्त स्थापित किया है। राष्टिषण देवापि ने उस जल को गतिमान् किया। ऐसे में वे भूमि पर पर्जन्य रूप में बरसने लगते हैं ॥६॥

यद्देवापिः शंतनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।
देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥७॥

जब शन्तनु के ऊपर कृपादृष्टि करके पुरोहित देवापि यज्ञकर्म के लिए समुद्यत हुए और वे देवप्रख्यात तथा जलोत्पादक (जल वर्षक) बृहस्पतिदेव की स्तुति करने लगे; उसी समय प्रशंसित होकर बृहस्पतिदेव ने उनके मन में स्तोत्रों (नये सूत्रों) को उदित किया ॥७॥

यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।

विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥८॥

हे अग्निदेव ! आष्टिषण के पुत्र देवापि नामक मानव ने पवित्रतायुक्त होकर स्तोत्रों से तथा उत्तम विधि से आपको प्रदीप्त किया है । सम्पूर्ण देवों का सहयोम प्राप्त करके आप जलवर्षक बादलों को प्रेरित करें ॥८॥

त्वां पूर्व ऋषयो गीर्भिरायन्त्वामध्वरेषु पुरुहूत विश्वे ।
सहस्राण्यधिरथान्यस्मे आ नो यज्ञं रोहिदश्वोप याहि ॥९॥

हे अग्ने !पूर्वकालीन ऋषिगण स्तोत्रों के साथ आपके समीप प्रस्तुत हुए थे। हे असंख्यों द्वारा आवाहित अग्ने ! सभी यजमान अभी भी यज्ञों में स्तोत्रों द्वारा आपके समीप जाते हैं । रथों से सम्पन्न असंख्य ऐश्वर्य-सम्पदाएँ शन्तन् राजा ने भेंट स्वरूप प्रदान कीं । हे रोहित नामक अश्वयुक्त अग्ने ! आप हमारे यज्ञ में विराजमान हों ॥९॥

एतान्यग्ने नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधिरथा सहस्रा ।
तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि ॥१०॥

वीर अग्निदेव ! रथों (संवाहकों) सहित निन्यानवे हजार पदार्थ आहुतिरूप में आपको समर्पित हुए हैं। उनसे आप अपने विभिन्न

स्वरूपों को संवर्धित करके प्रज्वलित करें । हमारे द्वारा प्रार्थित हुए आप दिव्य लोक से वृष्टि करें ॥१०॥

एतान्यग्ने नवतिं सहस्रा सं प्र यच्छ वृष्ण इन्द्राय भागम् ।
विद्वान्पथ ऋतुशो देवयानानप्यौलानं दिवि देवेषु धेहि ॥११॥

हे अग्निदेव ! नब्बे हजार आहुतियों में से जलवृष्टि करने वाले इन्द्रदेव की तुष्टि हेत उन्हें उनका भाग पा करें । देवयान मार्गों के ज्ञाता आप यथासमय याज्ञिक शन्तनु को देवताओं के बीच विराजमान करें ॥११॥

अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहापामीवामप रक्षांसि सेध ।
अस्मात्समुद्राद्बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुप नः सृजेह ॥१२॥

हे अग्ने ! आप रिपुओं की दुर्गम नगरियों को विनष्ट करें तथा रोगों और राक्षसी शक्तियों का निवारण करें। इस विशाल अन्तरिक्षरूप सागर से और आकाश से इस पृथ्वी पर हमारे निमित्त अथाह जलराशि प्रदान करें ॥१२॥

सूक्त ९९

ऋषि: वम्रो वैखानस:
देवता – इन्द्र:। छंद: त्रिष्टुप

कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान्पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै ।
कत्तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत् ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! आप ज्ञानसम्पन्न बनकर निरन्तर वर्द्धनशील, विलक्षण, प्रशंसनीय और कल्याणकारी सम्पदाएँ हमारी प्रगति के निमित्त देते हैं । इन्द्रदेव की पराक्रमी सामर्थ्य की वृद्धि के लिए हमें क्या करना पड़ेगा ? उनके लिए वृत्रसंहारक वज्रास्त्र की रचना की गयी है; उनके द्वारा संसार को जलवृष्टि से सिञ्चित किया जाता है ॥१॥

स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।
स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ॥२॥

वे इन्द्रदेव दीप्तिमान् विद्युत् नामक आयुध-सम्पन्न होकर यज्ञ में सामगान श्रवण हेतु आते हैं। वे बल-सम्पन्न होकर अनेक स्थानों पर अपना आधिपत्य स्थापित करते हैं । वे विमान में विराजमान मरुद्गणों

के साथ शत्रुओं को पराजित करते हैं। आदित्यगणों के सप्तम भ्राता इन्द्रदेव का परित्याग करके कोई कार्य करना सम्भव नहीं ।॥२॥

स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ॥३॥

वे उत्तम वेग से जाकर समर भूमि में स्थित होते हैं । वे अविचलित रहकर सौ द्वारों से युक्त शत्रुपुरी में जो धन विद्यमान हैं, उसे अपनी सामर्थ्य से लेकर आते हैं तथा इन्द्रिय लिप्साओं में संलिप्त लोगों को विनष्ट करते हैं।॥३॥

स यह्व्योऽवनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्रिः ।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥४॥

वे मेघों की ओर गतिमान् होकर और मेघों में भ्रमण करके उपजाऊ भूमि पर विपुल जलवृष्टि करते हैं। उन सभी जल सम्पन्न स्थानों पर अनेक लघुनदियाँ एकत्रित होकर घृत के समान जल को प्रवाहित करती हैं, जिनके न तो चरण हैं, न रथादि हैं और न ही द्रोणि (डोंगी) हैं ॥४॥

स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारेअवद्य आगात् ।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ॥५॥

वे इन्द्रदेव बिना प्रार्थना के मनोकामनाओं के पूरक, महिमामय और निन्दारहित हैं। वे स्वकीय स्थानों से रुद्रपुत्र मरुद्गणों के साथ यहाँ आगमन करें । 'बम्र' के माता-पिता के कष्टों का निवारण हुआ; क्योंकि मैं (वम्र) ने शत्रुओं (विकारों) के ऐश्वर्य का हरण किया है तथा शत्रुओं को, कष्टपीड़ित किया । ॥५॥

स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन्त्षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ॥६॥

सर्वेश्वर इन्द्रदेव ने अति गर्जनशील दुष्ट दस्यओं का दमन किया था. उन्होंने छ: नेत्रों से यक्त और तीन सिरों से युक्त त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का हनन किया था। इन्द्रदेव की तेजस्विता से तेजस्वी होकर 'त्रित' नामक ग्रंष ने लोहे के समान तीक्ष्ण नाखूनों वाली अँगुलियों से वराह राक्षस का हनन किया था ॥६॥

स द्रुह्वणे मनुष ऊर्ध्वसान आ साविषदर्शसानाय शरुम् ।
स नृतमो नहुषोऽस्मत्सुजातः पुरोऽभिनदर्हन्दस्युहत्ये ॥७॥

(अपने भक्तों पर आक्रमण होने पर) वे (इन्द्रदेव) अभिमान के साथ शरीर को विस्तारित करके शत्रु-संहार के लिए श्रेष्ठ मारक अस्त्र प्रदान करते हैं । वे मनुष्यों के सर्वोत्तम नायक हैं । दुष्टों के संहार के समय श्रेष्ठ कुलोत्पन्न इन्द्रदेव ने अनेक शत्रुनगरियों को ध्वस्त किया था ॥७॥

सो अभ्रियो न यवस उदन्यन्क्षयाय गातुं विदन्नो अस्मे ।
उप यत्सीददिन्दुं शरीरैः श्येनोऽयोपाष्टिर्हन्ति दस्यून् ॥८॥

वे मेघ समूह के समान अन्नादि की पुष्टि के निमित्त भूमि पर जल बरसाने वाले और हमारे गृहों का मार्ग प्रशस्त करने वाले हैं। वे अपने शरीर के सभी अंगों से सोम को गिराकर गरुड़ पक्षी की तरह, लोहे के समान तीक्ष्ण और सुदृढ़ अंगों से रिपुओं का संहार करते हैं ॥८॥

स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।
अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥९॥

वे इन्द्रदेव अपने पराक्रमशाली शस्त्रों से दुर्धर्ष शत्रुओं को दूर भगाते हैं। उन्होंने 'कुत्स' के स्तोत्रों को सुनकर शुष्ण नामक राक्षस का संहार किया। उन्होंने स्तोता और क्रान्तदर्शी उशना के विद्रोहियों को वशीभूत किया था। वे उशना इन्द्रदेव के विस्तृत स्वरूप और इन्द्रदेव के अनुचर मरुद्गणों को जानते थे ॥९॥

अयं दशस्यन्नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।
अयं कनीन ऋतुपा अवेद्यमिमीतारहं यश्चतुष्पात् ॥१०॥

मनुष्यों के हितचिन्तक मरुद्गणों के साथ वास करने वाले इन्द्रदेव, स्तोतागणों के धनदाता हैं और सभी दुष्टों के संहारक हैं। वे वरुण के समान अपने तेज से सुन्दर और बलवान् हैं। ये कान्तिमान् और सदैव

सबके संरक्षक रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने चार पदों से युक्त शत्रु का संहार किया ॥१०॥

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरयद्वृषभेण पिप्रोः ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गीः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥११॥

औशिज (उशिज के पुत्र अथवा सरलमार्ग से आगे बढ़ने वाले), ऋजिश्वा (इन्द्रियजयी), पिषु (गृहस्थ) के वृषभों के बाड़े (पारिवारिक मोह) को इस (प्रभु या इन्द्र) की स्तुतियों से विदीर्ण करता है। शत्रुओं के नगरों (विकार-समूहों) को नष्ट करता है ॥११॥

एवा महो असुर वक्षथाय वम्रकः पड्भिरुप सर्पदिन्द्रम् ।
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१२॥

हे इन्द्रदेव ! मैं वम्र इस प्रकार विपुल हवि देने की कामना से आपके पास आया हूँ । निकट आने वाले इस साधक का मंगल करें। इस उद्देश्य के लिए इस साधक को सभी प्रकार का अन्न, बल और आवास प्रदान करें ॥१२॥

सूक्त १००

ऋषि: दुवस्युर्वान्दन:
देवता – विश्वे देवा:। छंद: जगतीं १२ त्रिष्टुप

इन्द्र दृह्य मघवन्त्वावदिद्भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे ।
देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! आप अपने सदृश शक्तिशाली शत्रुसैनिकों का संहार करें । इस यज्ञ में स्तोत्र पाकर और सोमरस को पीकर आप हमारे संरक्षणार्थ सदैव प्रस्तुत रहें । देवों के साथ हमारे प्रख्यात यज्ञ की सवितादेव सुरक्षा करें । हम, सबकी उत्पादनकर्मी देवी अदिति की स्तुति करते हैं ॥१॥

भराय सु भरत भागमृत्वियं प्र वायवे शुचिपे क्रन्ददिष्टये ।
गौरस्य यः पयसः पीतिमानश आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥२॥

सबके पालन-पोषण कर्ता इन्द्रदेव को ऋतुओं के अनुसार यज्ञ भाग प्रदान करें । जो शुद्ध अन्न (जल) का उपभोग करते हैं और जिनके शीघ्रगमन के समय ध्वनि होती है, उन वायुदेव के निमित्त यज्ञीय भाग

प्रदान करें, जो शुद्ध, पावन, पौष्टिक गौ के दूध का पान करते हैं। हम सर्वोत्पादनकर्वी अदिति की प्रार्थना करते हैं ॥२॥

आ नो देवः सविता साविषद्वय ऋजूयते यजमानाय सुन्वते ।
यथा देवान्प्रतिभूषेम पाकवदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥३॥

सर्वप्रेरक सवितादेवता हमारे सरल मार्ग के प्रेरणादायक और अभिषवकर्ता यजमान को परिपक्वतायुक्त अन्न प्रदान करें, जिससे हम देवताओं को संतुष्टि देकर उन्हें विभूषित कर सकें। सबकी कल्याणकर्नी देवी अदिति की हम स्तुति करते हैं । ॥३॥

इन्द्रो अस्मे सुमना अस्तु विश्वहा राजा सोमः सुवितस्याध्येतु नः ।
यथायथा मित्रधितानि संदधुरा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥४॥

इन्द्रदेव हमसे नित्य ही प्रसन्न रहें । हमारे यज्ञ में राजा सोम हमारा स्तोत्रपाठ श्रवण करें, जिससे सबके मित्र स्वरूप इन्द्रदेव का प्रदत्त प्रियधन हमें उपलब्ध हो । सर्वप्रेरक देवी अदिति की हम प्रार्थना करते हैं ॥४॥

इन्द्र उक्थेन शवसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यायुषः ।
यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि कमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥५॥

इन्द्रदेव स्तुत्य सामर्थ्य से हमारे यज्ञरक्षक हैं। हे बृहस्पते !आप आयुष्य को बढ़ाने वाले हैं । वे श्रेष्ठ विचार शील, बुद्धिमान् यज्ञपालक

हैं, वे हमें सुख प्रदान करें । उत्पादनक देवी अदिति की हम प्रार्थना करते हैं ॥५॥

इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहोऽग्निर्गृहे जरिता मेधिरः कविः ।
यज्ञश्च भूद्विदथे चारुरन्तम आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥६॥

देवताओं की शक्ति को इन्द्रदेव ने ही विनिर्मित किया है । गृहों में विद्यमान अग्निदेव, देवताओं की प्रार्थना करते हैं और यज्ञ सम्पन्न करते हुए कार्यों को सम्पादित करते हैं। वे देवों के स्तुत्य, ज्ञानवान् , क्रान्तदशा और पूज्य हैं । वे यजनीय और रमणीय अग्निदेव हमारे अति समीप हैं । हम सर्वप्रेरक अदिति की प्रार्थना करते हैं ॥६॥

न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृतं नाविष्ट्यं वसवो देवहेळनम् ।
माकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥७॥

हे वसुदेवगण ! आपकी परोक्ष दृष्टि में भी हमारे द्वारा कोई पाप नहीं बन पाया है । आपके समक्ष हमने कोई भी ऐसा दुष्कृत्य नहीं किया, जिससे हम देवताओं के क्रोध का भाजन बने । हे सर्वव्यापक देवगण ! हमें मरणधर्म देहों की प्राप्ति न हो । हम सर्वोत्पादक देवी अदिति की प्रार्थना करते हैं ॥७॥

अपामीवां सविता साविषन्न्यग्वरीय इदप सेधन्त्वद्रयः ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥८॥

सबके प्रेरणादायक सवितादेव हमारे कष्टकारी रोगों का निवारण करें। उदार पर्वतों के अधिष्ठाता देव अतिविशाल पापरूपी अनर्थों का निवारण करें । जहाँ मधु के समान सोमरस प्रस्तुत करते हुए अभिषव-पाषाण की उचित रीति से स्तुति की जाती है, वहाँ हम सब कल्याणकारी देवी अदिति की प्रार्थना करते हैं ॥८॥

ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
स नो देवः सविता पायुरीड्य आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥९॥

हे वसुगण ! सोम के अभिषव में प्रयुक्त पाषाण ऊर्ध्वगामी हो । आप हमारे सभी अप्रकट शत्रुओं (पापों) का निवारण करें । वे सवितादेव हमारे पालनकर्ता, नमनीय और स्तुति योग्य हैं। सबकी उत्पादनकत्री देवी अदिति की हम सभी स्तुति करते हैं ॥९॥

ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।
तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१०॥

हे गौओ ! आप गोचर भूक्षेत्र में विचरण करती हुईं घास द्वारा समृद्ध हों और पौष्टिक दूधरूपी इस प्रदान करें । जो यज्ञवेदी और गौशाला में घासादि स्थित है, उसका भी सेवन करें । आपका दूध सोमरस की ओषधियों के समान ही हमारे लिए पुष्टिप्रद हो । हम सभी सर्वप्रेरक देवी अदिति की प्रार्थना करते हैं ॥१०॥

क्रतुप्रावा जरिता शश्वतामव इन्द्र इद्भद्रा प्रमतिः सुतावताम् ।
पूर्णमूधर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥११॥

सम्पर्धा कर्मों के पर्तिकर्ता, सबके प्रशंसनीय और कालगति के अनुसार सबको जीर्ण-शीर्ण करने वाले इन्द्रदेव सोमरस अभिपवकर्ताओं के संरक्षक और अति प्रशंसनीय हैं। उनके पान के निमित्त ही सोम कलश पूर्ण (भरे) रहते हैं। हम सर्वप्रेरक देवी अदिति की प्रार्थना करते हैं ॥११॥

चित्रस्ते भानुः क्रतुप्रा अभिष्टिः सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः ।
रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोस्तूतूर्षति पर्यग्रं दुवस्युः ॥१२॥

हे इन्द्रदेव ! आपका प्रकाश विलक्षण है। आप हमारे कर्मों के पूर्तिकर्ता और सबके साध्य हैं। आपकी अभिलाषाएँ स्तोतः यजमानों की मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाली और किसी भी दबाव से रहित हैं। जिस प्रकार दुवस्यु ऋषि अतिसरल रस्सी द्वारा गौ के अग्रिम भाग को शीघ्रतापूर्वक खींचते हैं, उसी प्रकार हम आपकी 'ओर आकर्षित होते हैं ॥१२॥

सूक्त १०१

ऋषि: वुध सौम्य:
देवता – विश्वे देवा ऋत्विजो। छंद: त्रिष्टुप, ४, ६ गायत्री, ५ वृहती, ९, १२ जगती

उद्‌बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः ॥१॥

हे मित्रो (ऋत्विजो) ! आप एकाग्रचित्त होकर, एक साथ मिलकर, एक स्थान पर निवास करते हुए अग्नि को । प्रदीप्त करें । हम इन्द्रदेव के साथ दधिक्रा, अग्नि और देवी उषा को आपकी सुरक्षा के लिए आवाहित करते हैं ॥१॥

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम् ।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता सखायः ॥२॥

हे मित्रो (ऋत्जिो) ! आप आनन्ददायी स्तोत्रों का उच्चारण करें । श्रेष्ठ कर्मों को विस्तृत करें । हलदण्ड रूपी नौका ही पार उतारने वाली है, उसकी रचना करें । अनेक अस्त्र-शस्त्रों को भलीप्रकार से प्रचुर

मात्रा में विनिर्मित करें। इस प्रकार आप सत्कर्म रूपी यज्ञ का अनुष्ठान सम्पन्न करें ॥२॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥३॥

हे ऋत्विजो (कृषक जनो) ! हल आदि कृषि उपकरणों को व्यवस्थित करके बैलों के कंधों पर जुओं को रखो तथा खेत की जुताई करो । तैयार किये गये खेत में बीजों का वपन करो और कृषि-विज्ञान के अन्तर्गत फसलों की अनेक प्रजातियाँ श्रेष्ठ विधि से तैयार करो, जिससे शीघ्र काटने योग्य पका हुआ अन्न उपलब्ध हो सके । ॥३॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥४॥

द्रष्टा (क्रान्तदर्शी) हलों को योजित करते हैं । युगों (जुओं या काल-समय) को पृथक्-पृथक् (भिन्न-भिन्न प्रकार) तैयार करते हैं। बुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति देवों के लिए श्रेष्ठ मन से स्तवन करते हैं ॥४॥

निराहावान्कृणोतन सं वरत्रा दधातन ।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ॥५॥

हे मित्रो ! गौ आदि पशुओं के जल पीने के लिये पर्याप्त स्थलों का निर्माण करो । रस्सियों को परस्पर योजित करो। हम श्रेष्ठ जल स्रोतों

से युक्त, उत्तम रीति से खेतों को सींचने में सक्षम, अजस्र स्रोत वाले कुएँ से जल लेकर सिंचाई करते हैं ॥५॥

इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम् ।
उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ॥६॥

श्रेष्ठ पान करने योग्य जल-स्थान से सशोभित, उत्तम रज्जु से युक्त, श्रेष्ठ विधि से सेचन कार्य करने योग्य, अक्षय जल भण्डारयुक्त कुएँ से हम सिंचाई का कार्य सम्पन्न करते हैं ॥६॥

प्रीणीताश्वान्हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम् ।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ॥७॥

हे कृषकगण ! अश्वों (बैलों) को घास-जलादि से संतुष्ट करो । खेतों में रखे गये हितकारी धान्य को उपलब्ध करो । सुगमता से धान्य ले जाने वाले उत्तम रथ को विनिर्मित करो। पशुओं का यह जल से परिपूर्ण जलपात्र एक द्रोण (३२ सेर) है । इसमें पत्थर से बनाया गया चक्र स्थित है । मनष्यों के योग्य जलपात्र कप की आकृति का बनेगा, इसे जल से पूर्ण करो ॥७॥

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥८॥

हे मित्रो ! गोशालाओं को भलीप्रकार बनाओ । वह स्थान निश्चित ही मनुष्यों के लिये जलपान हेतु उपयोगी है। अनेक विशालकाय कवचों को तैयार करो । शत्रुओं से सुरक्षित, लोहे से बनी हुई, अस्त्रशस्त्रादि से सुसज्जित, सुदृढ़ नगरियों का निर्माण करो । तुम्हारे चमसपात्र छिद्ररहित हों, जिससे उनका जल अनावश्यक नष्ट न हो । ॥८॥

आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥९॥

हे देवो ! हम यज्ञ को धारण करने वाली बुद्धि को आपकी ओर प्रेरित करते हैं। यजनीय, तेजस्वी और सम्माननीय बुद्धि को आप यज्ञ स्थल में प्रतिष्ठित करें। वह हमारी अभिलाषाओं की पूर्ति में उसी प्रकार सहायक हो, जिस प्रकार घास खाकर गौएँ सहस्र धाराओं से युक्त दूध देती हैं ॥९॥

आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः ।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त ॥१०॥

हे अध्वर्युगण ! इस काष्ठ पात्र में स्थित हरितवर्ण सोम को सिञ्चित करो । पाषाणमय कुठारों से पात्र तैयार करो । दस अँगुलियों से पात्र को वेष्टन करके ग्रहण करो । रथ के दोनों धुरों में वाहक पशुओं को नियोजित करो॥१०॥

उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः ।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम् ॥११॥

रथ के दोनों धुरों को ध्वनि से गुंजित करके बैल रथ को ऐसे खींचते हैं, मानो सोम को पात्र में स्थापित करते हैं । हे ऋत्विजो ! शकट को आधार स्थल पर भलीप्रकार स्थित करो, जिससे शकट आश्रयरहित न हो सके ॥११॥

कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥१२॥

हे कर्मशील मनष्यो ! इन्द्रदेव श्रेष्ठ सुखों के दाता हैं। उन सुखदायक इन्द्रदेव को अपने अन्तरंग में धारण करो और अन्न, बल, ऐश्वर्यादि लाभ के लिए उन्हें प्रेरित करो। उनकी प्रार्थना करो तथा उनसे शान्ति प्राप्त करो। इस भूलोक में संरक्षण कष्टों के निवारण के लिए तथा सोमपान के निमित्त अदिति पुत्र इन्द्र का आवाहन करो ॥१२॥

सूक्त १०२

ऋषि: मुद्गलो भाम्र्यश्व:
देवता – द्रुघण, इन्द्रो । छंद: त्रिष्टुप, १,३, १२ वृहती

प्र ते रथं मिथूकृतमिन्द्रोऽवतु धृष्णुया ।
अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनभक्षेषु नोऽव ॥१॥

हे ऋषि मुद्गल ! आपका रथ जिस समय युद्ध भूमि में आश्रयविहीन हो, उस समय पराक्रमी इन्द्रदेव उसका संरक्षण करें । अनेकों द्वारा आवाहित हे इन्द्रदेव ! इस प्रख्यात संग्राम भूमि में ऐश्वर्य प्राप्ति के समय आप भली प्रकार हमें संरक्षित करें ॥१॥

उत्स्म वातो वहति वासोऽस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम् ।
रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ॥२॥

जिस समय संग्राम क्षेत्र में रथारूढ़ होकर ऋषि मुद्गल की पत्नी ने हजारों गौओं पर विजय प्राप्त की, उस समय उनके वस्त्र को वायु ने ऊपर की ओर उड़ाया । गौओं पर विजय प्राप्ति के समय वे सारथी बनीं । इन्द्र सेना नाम वाली वह, संग्राम के समय शत्रुओं के अधिकार क्षेत्र से गौओं को छुड़वाकर ले आईं ॥२॥

अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप अनिष्टकारी और विध्वंसक शत्रुओं के ऊपर वज्रप्रहार करें । हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप दास अथवा आर्य शत्रुओं द्वारा परोक्ष रूप से किये गये शस्त्रादि प्रयोग को निरस्त करें ॥३॥

उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति ।
प्र मुष्कभारः श्रव इच्छमानोऽजिरं बाहू अभरत्सिषासन् ॥४॥

यह वृषभ जल से परिपूर्ण जलाशय के जल को आनन्दमग्न होकर ग्रहण करता है । अपने सींगों से मिट्टी के ढेर को खोदकर शत्रुओं पर हमला करता है । ऐश्वर्य की कामना से प्रेरित होकर वह वेगपूर्वक दोनों तीक्ष्ण सींगों को हिलाते हुए आक्रमण हेतु आगे बढ़ता है ॥४॥

न्यक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः ।

तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ॥५॥

मनुष्यों ने वृषभ के समीप जाकर उसे ध्वनि करने के लिए प्रेरित किया, उसे युद्धभूमि में ले जाकर खड़ा किया गया। इससे संग्राम में ऋषि मुद्गल ने परिपुष्ट और श्रेष्ठ आहारादि में निपुण सैकड़ों-हजारों गौओं पर विजय प्राप्त की ॥५॥

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् ॥६॥

शत्रुओं की हिंसा के लिए युद्ध भूमि में वृषभ को रथ के साथ जोता गया । उसकी रस्सी को नियन्त्रित करने में समर्थ मुद्गलानी (ऋषि मुद्गल की पत्नी) गर्जना करके उसे प्रोत्साहित करने लगीं । रथ में योजित उस वृषभ को स्थिर नहीं रखा गया, वह रथ को लेकर दौड़ पड़ा। सुसज्जित सेनाएँ मुद्गलानी के पीछे-पीछे चल पड़ीं ॥६॥

उत प्रधिमुदहन्नस्य विद्वानुपायुनग्वंसगमत्र शिक्षन् ।
इन्द्र उदावत्पतिमघ्न्यानामरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ॥७॥

ज्ञानवान् ऋषि मुद्गल ने रथ चक्र को अपने नियंत्रण में लिया । बड़ी कुशलता से वृषभ को रथ में रस्सी से बाँधकर योजित किया। इस

प्रकार से इन्द्रदेव ने गौओं के स्वामी उस वृषभ को संरक्षित किया। तदनन्तर वह श्रेष्ठ वृषभ अतिवेगपूर्वक मार्ग पर अग्रसर हुआ ॥७॥

शुनमष्ट्राव्यचरत्कपर्दी वरत्रायां दार्वानह्यमानः ।
नृम्णानि कृण्वन्बहवे जनाय गाः पस्पशानस्तविषीरधत्त ॥८॥

चाबुक और आभूषण से युक्त वह वृषभ, चर्मरज्जु द्वारा रथाङ्ग को बाँधे हुए सुखपूर्वक विचरण करने लगा। उसने असंख्य लोगों को वाञ्छित ऐश्वर्य प्रदान किया और गौओं को जीतकर महान् शक्ति को धारण किया ॥८॥

इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम् ।
येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतनाज्येषु ॥९॥

युद्ध भूमि के मध्य में गिरे हुए, संग्राम में वृषभ का साथ देने वाले काष्ठ निर्मित शस्त्र को देखो। जिसके द्वारा ऋषि मुद्गल ने सैकड़ों और हजारों गौओं पर विजय प्राप्त की ॥९॥

आरे अघा को न्वित्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।
नास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत् ॥१०॥

किसी ने दूरस्थ अथवा समीपस्थ देश में कभी ऐसा देखा होगा? जो रथ को खींचने के लिए योजित किये जाते हैं, वही उसके संचालन के निमित्त रथ पर बिठाये जाते हैं। उनके लिए घास और जलादि नहीं

लाया जाता है, तो भी यह रथ धुरे के भार को वहन करता है और स्वामी को विजयी बनाता है ॥१०॥

परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन् ।
एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्ग‌लं सिनवदस्तु सातम् ॥११॥

परित्यक्ता स्त्री के समान मुद्गलानी ने शक्ति का प्रदर्शन करते हुए अपने पति के धन को ग्रहण किया, मानो उन्होंने मेघ सदृश बाणों की वर्षा की हो। ऐसे सारथी द्वारा हम विजयी हों, हमें प्रचुर अन्न और धन की प्राप्ति हो ।॥११॥

त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।
वृषा यदाजिं वृषणा सिषाससि चोदयन्वध्रिणा युजा ॥१२॥

हे इन्द्रदेव ! आप सम्पूर्ण विश्व के नेत्ररूप है; जो नेत्रों से युक्त हैं, उनकी भी ज्योति आप ही हैं। आप शक्तिमान और अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं। आप संग्राम क्षेत्र में दो अश्वों को रज्जु द्वारा एक साथ बाँध करके प्रेरित करते हुए विजयश्री उपलब्ध करते हैं ॥१२॥

सूक्त १०३

ऋषि: ऐन्द्रोऽप्रतिरथ:
देवता – इन्द्र:, ४ बृहस्पति , १२ अप्वा देवी, मरुतो । छंद: त्रिष्टुप,
१३ अनुष्टुप

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।
संक्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥

स्फूर्तिवान्, विकराल, वृषभ की तरह शत्रु को भयभीत करने वाले, दुष्ट-नाशक, शत्रुओं को रुलाने वाले, द्वेष करने वालों को क्षुब्ध करने वाले, आलस्यहीन वीर इन्द्रदेव सैकड़ों शत्रुओं को पराजित करके विजयी होते हैं ॥१॥

संक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

हे योद्धाओ ! शत्रुओं को रुलाने वाले, आलस्यरहित, विजयी, निपुण, अविचल, बाणधारी इन्द्रदेव की सहायता से युद्ध जीतकर शत्रुओं को भगाओ ॥२॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

वे इन्द्रदेव बाण और तलवारधारी योद्धाओं के सहयोग से शत्रुओं को वश में करते हैं । वे युद्ध में अतिकुशल, विजेता, सोम पीने वाले, बाहु-बल सम्पन्न, धनुर्धारी तथा शत्रु-संहारक हैं ॥३॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥४॥

हे सर्वपालक इन्द्रदेव ! राक्षसों को मारते हुए, शत्रुओं को त्रास देकर उनकी सेना का ध्वंस करते हुए आप रथ से यहाँ आएँ । युद्ध में विजयी होकर हमारे रथों की रक्षा करते हुए आप आगे बढ़े ॥४॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! सबके बलों के ज्ञाता, उत्तम वीर, शत्रु के आक्रमण को सहने वाले, बलवान्, शत्रु-विजेता, उग्र, महावीर, शक्तिशाली होकर ही जन्म लेने वाले, गौ-पालक आप विजयी रथ पर प्रतिष्ठित हों ॥५॥

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥६॥

हे योद्धाओ ! आप सब शत्रु-किलों के भेदक, गौ-पालक, वज्र जैसी भुजा वाले, शत्रु का विनाश करने वाले, विजेता इन्द्र के नेतृत्व में रहकर पराक्रम दिखाओ । हे मित्रो ! इन्द्रदेव के क्रोध करने पर शत्रुओं पर क्रोध करो ॥६॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥

बल से शत्रु-किलों को भेदने वाले, पराक्रमी, शत्रु पर दया न करने वाले, वीर, अनीति के प्रति क्रोध करने वाले, अविचल, शत्रु-विजेता, अद्वितीय योद्धा इन्द्रदेव हमारी सेना को संरक्षण प्रदान करें ॥७॥

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥८॥

हमारी सेनाओं के नेतृत्वकर्ता इन्द्रदेव हों । बृहस्पति देव सबसे आगे जाएँ। दक्षिणा-यज्ञ संचालक सोम । भी आगे जाएँ । शत्रु-नाशक मरुद्गण विजयी देवों की सेना के आगे रहें ॥८॥

इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुतां शर्ध उग्रम् ।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ॥९॥

बलशाली इन्द्रदेव, राजा वरुण, आदित्यों और मरुतों के तीक्ष्ण बल हमारे सहायक हों । शत्रु-नगरों के विध्वंसक, विशालमना और विजयी देवों का जयघोष गुंजायमान हो ॥९॥

उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकानां मनांसि ।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ॥१०॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आप हमारे शस्त्रधारी योद्धाओं को हर्ष तथा अश्वों को वेग प्रदान करें । सैनिकों के मन में उत्साह भरें । हे वृत्रहन्ता इन्द्रदेव ! विजयी होकर आने वाले हमारे रथों के शब्द गुञ्जित हों ॥१०॥

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु ।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवता हवेषु ॥११॥

युद्ध में हमारी सेनाओं को इन्द्रदेव सुरक्षा प्रदान करें। हमारे बाण शत्रुओं पर विजय पाने वाले हों । हमारे वीर विजयी हों । हे देवो ! युद्ध में हमें सुरक्षा प्रदान करें ॥११॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१२॥

हे पाप-वृत्तियो ! हमसे दूर रहो। शत्रुओं के चित्त को विमोहित करो। उनके अंगों को जकड़ लो । शत्रुओं पर आक्रमण कर उनके हृदय में शोक-ज्वाला प्रदीप्त करो। हमारे शत्रुओं को गहन अन्धकार में डालकर अचेत कर दो ॥१२॥

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥१३॥

हे वीरो ! शत्रओं पर आक्रमण करके विजयी बनो । इन्द्रदेव आपको सुख और शान्ति प्रदान करें। आपकी भुजाएँ उग्र सामर्थ्य से युक्त हों, जिससे शत्रु आपको अपने अधिकार में न ले सकें ॥१३॥

सूक्त १०४

ऋषि: अष्टको विश्वामित्र
देवता – इन्द्र । छंद: त्रिष्टुप

असावि सोमः पुरुहूत तुभ्यं हरिभ्यां यज्ञमुप याहि तूयम् ।
तुभ्यं गिरो विप्रवीरा इयाना दधन्विर इन्द्र पिबा सुतस्य ॥१॥

हे असंख्यों द्वारा आवाहित इन्द्रदेव ! आपके निमित्त सोमरस अभिषवित किया गया है । आप दोनों अश्वों के साथ हमारे यज्ञ में शीघ्रता से उपस्थित हों । प्रमुख स्तोताओं ने आपके लिए उत्तम स्तोत्रों का गान करते हुए यह सोम तैयार किया है । हे इन्द्रदेव ! आप आकर इस सोमरस को ग्रहण करें ॥१॥

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥२॥

अश्वों के अधिपति हे इन्द्रदेव ! आप कर्मशील अध्वर्युओं द्वारा अभिषवित, जल में शोधित, इस यज्ञ में जाये गये सोमरस का पान करें। इससे अपनी उदरपूर्ति करें । हे प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! पाषाणों द्वारा जिसका अभिषवण किया गया है, आप उसे पीकर उत्साहित होकर हमारी स्तुतियों को ग्रहण करें ॥२॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥३॥

हरितवर्ण के अश्वाधिपति हे इन्द्र ! आपके लिए सोम अभिषवित किया गया है । सुख-ऐश्वर्यों के वर्षक आप यज्ञ की ओर सुनिश्चित रूप से आएँगे, ऐसा जानते हुए आपके पानार्थ सोम प्रस्तुत करते हैं । हे देव ! आप श्रेष्ठतम स्तोत्रों को ग्रहण करके आनन्दित हों । आप अनेक सत्कर्म सम्पादित करें तथा नानाविध स्तोत्रों से परितृप्त हों ॥३॥

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥४॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! उशि वंशज यज्ञ कर्म के विशेषज्ञ हैं। वे आपके आश्रित होकर आपके प्रभाव से अन्न और सन्तति लाभ प्राप्त करके यजमान के यज्ञगृह में रहने लगे। वे सभी आनन्द विभोर होकर आपकी प्रार्थना करने लगे ॥४॥

प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः ।
मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधानाः स्तोतार इन्द्र तव सूनृताभिः ॥५॥

अश्वाधिपति हे इन्द्रदेव ! आपके स्तोत्र शोभायुक्त हैं। आपका ऐश्वर्य अद्भुत है और आपकी कान्ति अति उज्ज्वल है । आपसे अपार वैभव पाकर प्रसन्न होते हुए स्तोताओं ने आपकी प्रार्थना की। उन्होंने अपने संरक्षण के साथ दूसरों के संरक्षण में भी सहयोग प्रदान किया है । ॥५॥

उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।
इन्द्र त्वा यज्ञः क्षममाणमानड्दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ॥६॥

हे अश्वसम्पन्न इन्द्रदेव ! आप अभिषवित किये गये सोमरस का पान करने के लिए अपने दोनों अश्वों के साथ सभी यज्ञों में पधारते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप क्षमाशील और शक्तिशाली हैं, आपको ही यज्ञ उपलब्ध होते हैं । यज्ञीय विषयों के उत्तम ज्ञाता आप अक्षुण्ण कर्मफल के दाता हैं ॥६॥

सहस्रवाजमभिमातिषाहं सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।
उप भूषन्ति गिरो अप्रतीतमिन्द्रं नमस्या जरितुः पनन्त ॥७॥

असीम शक्तियों के अधिपति, शत्रुओं के पराभवकर्ता, सोमपान में रस लेने वाले, ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठ स्तुतियुक्त और संग्राम से विमुख न होने वाले इन्द्रदेव को स्तोत्र वाणियाँ सुशोभित करती हैं। स्तोतागणों की अर्चनाएँ उनको ही महिमामण्डित करती हैं ॥७॥

सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित् ।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! तीव्र गतिशील गंगादि सप्त सरिताओं के द्वारा आपने शत्रुनगरियों को विनष्ट करके सागर को संवर्द्धित किया। आपने देवों और मानवों के हित के लिए निन्यानवे प्रवहमान नदियों के मार्गों को खोल दिया है।॥८॥

अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चोऽजागरास्वधि देव एकः ।
इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जीवनदायी जल (रस) को असुरों के आक्रमण से मुक्त किया । जल को लाने के लिए आप स्वयं ही प्रस्तुत हुए थे । आपने वृत्रासुर के संहार के निमित्त जो कार्य किये हैं, उनके द्वारा ही सबके जीवनदाता होकर सम्पूर्ण विश्व के शरीरों का पारेपोषण करते हैं ॥९॥

वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिरुतापि धेना पुरुहूतमीट्टे ।
आर्दयद्वृत्रमकृणोदु लोकं ससाहे शक्रः पृतना अभिष्टिः ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! आप महान् योद्धा, क्रिया कुशल और श्रेष्ठ स्तवनीय हैं । वाणी प्रकट होकर आपकी ही अभ्यर्थना करती है । आप वृत्रनाशक और प्रकाश के उत्पादनकर्ता हैं । सामर्थ्यशाली आपने आक्रमण करके शत्रु सेनाओं को पराभूत किया ॥१०॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥

हम विशालकाय और ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव का आवाहन करते हैं । युद्धकाल में अन्नादि का जिस समय वितरण होगा, उस समय वे ही मुख्यरूप से नेतृत्व करेंगे। अपने पक्ष के संरक्षणार्थ वे समरक्षेत्र में उग्रता को धारण करते हैं, रिपुओं का संहार करते हैं, वृत्रों को विनष्ट करते हैं और ऐश्वर्य-सम्पदा पर विजय प्राप्त करते हैं ॥११॥

सूक्त १०५

ऋषि: कौत्सो दुर्मिशः सुमित्रो
देवता – इन्द्र । छंदः उष्णिक, १ गायत्री, २, ७ पिपीलिकमध्या, ११ त्रिष्टुप

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः ।
दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥१॥

स्तुतियों से प्रसन्न होने वाले हे इन्द्रदेव ! जैसे नहरें निकालने के लिए जल रोका जाता है, उसी प्रकार तैयार किया हुआ सोमरस प्रदान करने के लिए आपको कब रोकें? ॥१॥

हरी यस्य सुयुजा विव्रता वेरर्वन्तानु शेपा ।
उभा रजी न केशिना पतिर्दन् ॥२॥

जिनके दोनों अश्व भली प्रकार प्रशिक्षित, अनेक कार्यों के निर्वाहक, कुशल, अतिबलिष्ठ और सूर्य-चन्द्र तथा द्यावा-पृथिवी के समान

महिमामय तेजसम्पन्न तथा सबको सुशोभित करने वाले हैं, वे सबके स्वामी इन्द्रदेव सब कुछ देने में सक्षम हैं ॥२॥

अप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान् ।
शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ॥३॥

भयकारक इन्द्रदेव मनुष्यों के समान श्रमशील होते हैं। उन्होंने समर्थ साधनों से सम्पन्न बनकर शभ कार्यों को बढ़ाया, पापों को पराभूत किया ॥३॥

सचायोरिन्द्रश्चर्कृष आँ उपानसः सपर्यन् ।
नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः ॥४॥

मनुष्यों द्वारा पूज्य इन्द्रदेव ने सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को संगृहीत कर लिया। वे विभिन्न कार्यों को सम्पन्न करते हैं। और ध्वनि करने वाले दो अश्वों को गतिमान करते हैं ॥४॥

अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै ।
वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ॥५॥

केशों से युक्त और विशालकाय दोनों घोड़ों पर आरूढ़ होकर जो इन्द्रदेव अपनी शारीरिक पुष्टि के निमित्त प्रतिष्ठित होते हैं, वही सुदृढ़ दाढ़ों से युक्त होकर शत्रुओं को विनष्ट करते हैं । ॥५॥

प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभिस्ततक्ष शूरः शवसा ।
ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ॥६॥

शक्ति से सम्पन्न, अतीव सुन्दर मरुद्गणों के साथ इन्द्रदेव यजमान द्वारा श्रेष्ठ रीति से स्तुति योग्य हैं। वे अन्तरिक्ष में निवास करते हैं। जिस प्रकार ऋभुदेवों ने अपने कौशल से रथ आदि की रचना की है, वैसे ही शूरवीर इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य से विभिन्न वीरोचित कार्यों को सम्पन्न किया है ॥६॥

वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीमशो हिरीमान् ।
अरुतहनुरद्भुतं न रजः ॥७॥

जो इन्द्रदेव हरितवर्ण के लम्बे केश वाले अश्वों से युक्त और सुन्दर हनु वाले हैं, उन्होंने दुष्ट दस्युओं के संहार के लिए वज्र की रचना की । वह वज्र विलक्षण तेज एवं शक्ति से सम्पन्न है ॥७॥

अव नो वृजिना शिशीह्यृचा वनेमानृचः ।
नाब्रह्मा यज्ञ ऋधग्जोषति त्वे ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! हमारे सम्पूर्ण दुष्कर्म रूपी पापों को विनष्ट करें । हम स्तुतियों के प्रभाव से उपासना रहित नास्तिकों को पराजित कर सकें। स्तोत्रों से रहित यज्ञ कर्म कभी भी आपको आनन्दित नहीं करते ॥८॥

ऊर्ध्वा यत्ते त्रेतिनी भूद्यज्ञस्य धूर्षु सद्मन् ।
सजूर्नावं स्वयशसं सचायोः ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! जिस समय आपकी त्रेताग्नि (ज्वालाएँ यज्ञस्थल में ऋत्विजों द्वारा प्रदीप्त हुईं, उस समय आप यजमानों के साथ प्रसन्न होकर सबको प्रेरित करके यशस्वी नाव पर आरूढ़ होते हैं ॥९॥

श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भूच्छ्रिये दर्विररेपाः ।
यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! दुधारू गौएँ आपके कल्याण के निमित्त हों । जिस पात्र द्वारा आप मधु ले जाते हैं, वह दर्वि (पात्र विशेष) आपके लिए शुद्ध और कल्याणप्रद हो ॥१०॥

शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।

आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ॥११॥

हे सामर्थ्यवान् इन्द्रदेव ! आपके निमित्त इस प्रकार से सुमित्र ने सैकड़ों स्तोत्रों का पाठ किया। दुर्मित्र ने भी आपकी स्तुति की । दस्यु वध के समय आपने कुत्सपुत्र दुर्मित्र और सुमित्र को संरक्षण प्रदान किया था ॥११॥

सूक्त १०६

ऋषि: भूतांश: काश्यप:
देवता – आश्विनौ । छंद: त्रिष्टुप

उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे ॥१॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों निश्चित ही हमारी आहुतियों और स्तोत्रों के आकांक्षी हैं। जिस प्रकार तन्तुकार वस्त्रों को फैलाते हैं, उसी प्रकार आप दोनों हमारी स्तुतियों को विस्तारित करते हैं । यजमान भली प्रकार आपकी स्तति करते हैं, जिससे कि आप दोनों एक साथ मिलकर आगमन करें । सूर्य-चन्द्र के समान आप दोनों खाद्य पदार्थों को कल्याणकारी बनाते हैं ॥१॥

उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात् ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! जिस प्रकार दो बैल गोचर भूमि में हल को वहन करते हुए विचरते हैं, उसी प्रकार आप दोनों यज्ञकर्ता यजमान के

समीप पहुँचते हैं। रथ में जोते गये दो अश्वों वृषों) के समान धन-दान के निमित्त आप स्तोताओं के समीप जाते हैं। दूतों के समान ही आप लोगों में कीर्तिवान् बनें । जैसे भैंसे जलाशय से दूर नहीं जाते, वैसे ही आप कभी हमसे दूर न हों ॥२॥

साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ॥३॥

जिस प्रकार पक्षी के दोनों पंख आपस में जुड़े रहते हैं, उसी प्रकार से आप दोनों भी परस्पर आबद्ध हैं। दो विलक्षण पशुओं के समान आप दोनों हमारे इस यज्ञ में उपस्थित हुए हैं । देवों के आकांक्षी याजकों की यज्ञाग्नि के समान आप दोनों दीप्तियुक्त हैं । सर्वत्र विचरण करने वाले दो पुरोहितों के समान आप दोनों अनेक स्थानों पर सम्मानित किये जाते हैं ॥३॥

आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रोग्रेव रुचा नृपतीव तुर्यै ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥४॥

हे अश्विनीकुमारो ! माता-पिता द्वारा पुत्र के प्रति स्नेह के समान ही आप हमारे प्रति प्रीतियुक्त हों। आप दोनों अग्नि और सूर्य के समान दीप्तिमान् हों । राजा के समान शीघ्रतापूर्वक कार्यों को करने वाले हों । साधन सम्पन्न व्यक्ति के समान पालन-पोषण करने वाले हों । अन्नादि उपभोग्य सामग्री के सम्पादन के लिए प्रकाश सदृश हो

।आप दोनों शीघ्र गतिशील अश्वों के समान सुखपूर्वक इस यज्ञ में पधारें ॥४॥

वंसगेव पूषर्या शिम्बाता मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता ।
वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा मेषेवेषा सपर्या पुरीषा ॥५॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप दोनों दो वृषभों के समान स्वस्थ, सुन्दर और सुखकारी हों । मित्र और वरुण के समान परस्पर यथार्थदर्शी, सैकड़ों प्रकार के धन से युक्त तथा श्रेष्ठ कार्यों को करने वाले हों । बलशाली दो अश्वों के समान आप दोनों ऊँचे और बल सम्पन्न हों। आप सूर्य-चन्द्र के समान तेजस्वी, भेड़ों के समान अन्नादि का सेवन करके सुगठित अङ्ग- प्रत्यङ्गों से सम्पन्न हों ॥५॥

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥६॥

हे अश्विनीकमारो ! आप मदमत्त हाथी के अवरोधक, अंकुश के समान शत्रुहन्ता, दुष्टों के संहारकर्ता, राजपुरुषों के समान हिंसक और विदारक हों । आप प्रजाओं के भरण-पोषण कर्ता, जल में उत्पन्न रत्नों के समान स्वच्छ, विजयशील, अतिबलशाली तथा प्रशंसनीय हों । आप दोनों हमारी वृद्ध, जीर्ण और मरणशील देह को अजर और स्वस्थ बनाएँ ॥६॥

पज्रेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।

ऋभू नापत्खरमज्रा खरज्रुर्वायुर्न पर्फरत्क्षयद्रयीणाम् ॥७॥

हे पराक्रमी अश्विनीकुमारो ! जैसे पैरों वाले व्यक्ति दूसरों को जल से पार उतारने में सहायक होते हैं, वैसे ही आप दोनों हमारी मरणधर्मा देह को संकटों से निवृत्त करके अभीष्ट उद्देश्य की ओर अग्रसर करें । बल सम्पन्न ऋभुओं के समान ही आपने भी वेगवान् सुदृढ़ रथ को प्राप्त किया हैं । वायु के समान तीव्र गतिशील होकर सर्वत्र संचरित होते हुए आप शत्रुओं की सम्पदा को लेकर हमारे पास आएँ ॥७॥

घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेविता तुर्फरी फारिवारम् ।
पतरेव चचरा चन्द्रनिर्णिङ्मनऋङ्गा मनन्या न जग्मी ॥८॥

हे अश्विनीकुमारो ! महाबलियों के समान आप अपने उदर में मधुर घृत धारण करें । आप धन के संरक्षक, शत्रुओं के वधकर्ता और अतिश्रेष्ठ आयुधों के धारणकर्ता हैं । आप दोनों पक्षियों के समान सहजता से सर्वत्र संचरण करने वाले तथा चन्द्रमा के समान आहलादकारी हैं । स्तुति प्रिय आप दोनों मन की इच्छाओं से विभूषित होकर यज्ञ में उपस्थित होते हैं। ॥८॥

बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः ।
कर्णेव शासुरनु हि स्मराथोंऽशेव नो भजतं चित्रमप्नः ॥९॥

हे अश्विनीकुमारो ! श्रेष्ठ पुरुषों के समान आप दोनों गम्भीर स्थानों पर भी गौरव प्राप्त करते हैं । तैरने वाले पैरों के समान आप जल की

गहनता का अनुभव करने वाले हैं। कानों के सदृश ही स्तोता की प्रार्थनाओं को ध्यानपूर्वक सुनते हैं। यज्ञ के दो अङ्गों के समान आप दोनों हमारे इन विलक्षण कर्मों का सेवन करें ॥९॥

आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनबारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात्सचेथे ॥१०॥

जिस प्रकार मधुमक्खियाँ मधु का संचय करनी हैं। वैसे ही आप गौ के स्तनों में मधुतुल्य दूध को संचरित करते हैं । जिस प्रकार श्रमिक कृषक श्रम करके पसीना बहाते हैं, वैसे ही आप भी ओस बिन्दुओं के रूप में जल सेचन करें । जैसे कृशकाय गौएँ गोचर भूमि में जाकर अपना आहार उपलब्ध करती हैं, वैसे ही आप दोनों भी यज्ञ में पधारकर हविष्यान्न रूपी आहार ग्रहण करें ॥१०॥

ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम् ।
यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ॥११॥

हे अश्विनीकुमारो ! आप हमारे प्रार्थनायुक्त स्तोत्रों को बढ़ाएँ और हविष्ययुक्त अन्न हमें प्रदान करें । आप एक ही रथ पर आरूढ़ होकर हमारे स्तवनों को सुनने के लिए आगमन करें । भूतांश ऋषि ने इन स्तोत्रों का पाठ करके अश्विनीकुमारों की अभिलाषा को परिपूर्ण किया ॥११॥

सूक्त १०७

ऋषि: दिव्य अंगिरस दक्षिणा, प्राजापत्या
देवता – दक्षिणा, दक्षिणा दातारो । छंद: त्रिष्टुप, ४ जगती

आविरभून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि ।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥१॥

इन यजमान साधकों की यज्ञ-सिद्धि के लिए इन्द्रदेव के विस्तृत तेज का सूर्यरूप में प्रादुर्भाव हुआ तथा सम्पूर्ण चराचर जगत् अन्धकार से मुक्त हुआ । पितरगणों द्वारा प्रदत्त सूर्यरूपी महान् ज्योति विराजमान हुई । दक्षिणा प्रदान करने अर्थात् यज्ञ के स'गपन का समय उपस्थित हुआ ॥१॥

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ॥२॥

दानी मनुष्य स्वर्ग के उच्च पदों पर विराजमान हैं। जो अश्व (पराक्रम-शौर्य) का दान करते हैं, वे सूर्य के साथ सुशोभित होते है। जो सुवर्ण (धन) दाता हैं, वे अमरपद को प्राप्त करते हैं। हे सोम ! वस्त्रों (काया

रक्षक साधनों) के दानकर्ता आपको उपलब्ध करते हैं तथा सभी दीर्घायुष्य को प्राप्त करते हैं ॥२॥

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया बहवः पृणन्ति ॥३॥

देवताओं को श्रद्धा भावना के साथ प्रदत्त द्रव्यादि का दान पुण्यकर्मों की वृद्धि करने वाला होता है, यह देवपूजा का एक विशिष्ट अङ्ग है । यज्ञीय भावना से रहित व्यक्तियों के लिए यह पुण्य प्राप्त नहीं होता; क्योंकि दुराचारी लोग प्रार्थनाओं और हविष्यान्नादि से देवों को संतुष्ट नहीं करते । जो यजमान पवित्र भावना से दक्षिणा देते हैं तथा पापकर्मों से भय खाते हैं, वे देवताओं को आनन्दित करते हैं ॥३॥

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते हविः ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति संगमे ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम् ॥४॥

सैकड़ों मार्गों से प्रवाहित वायु के लिए, स्वर्ग को प्राप्त कराने वाले आदित्यगण के लिए, अन्य सभी मनुष्यों के लिए तथा कल्याणकारी देवी को हविष्यान्न अर्पित करने के लिए वे यजमान तत्पर रहते है। जो लोग देवों को संतुष्ट करते तथा यज्ञादि में अन्न , द्रव्यादि का दान देते हैं, वे सात होताओं की दक्षिणा पाने के पात्र होते हैं ॥४॥

दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय ॥५॥

दानदाताओं को सर्वप्रथम आमन्त्रित किया जाता है, वे ही प्रधान माने जाते हैं । दक्षिणादाता, दानी प्रामाध्यक्ष सबके आगे-आगे गतिमान होते हैं। जो सर्वप्रथम मनुष्यों के बीच दक्षिणा प्रदान करते हैं, उन्हें ही हम सबके पालक राजा की संज्ञा देते हैं ॥५॥

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥

सर्वप्रथम दक्षिणादाता को तत्त्वज्ञानी और ब्रह्मा की संज्ञा दी जाती है। वही यज्ञाध्यक्ष सामगान कर्ता और वेदमंत्रों का स्तोता कहा जाता है। ऐसे दानी ही दीप्तिमान् शुद्ध पावन अग्नि के तीनों स्वरूपों के ज्ञाता होते हैं, जो सर्वप्रथम अन्नादि की दक्षिणा देकर सबको संतुष्टि प्रदान करते हैं ॥६॥

दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ॥७॥

जो दक्षिणा के रूप में अश्व, गौ, स्वर्ण, रजत आदि मन को प्रसन्न करने वाला धन दान करते हैं, जो दक्षिणा के रूप में ही जीवन के

लिए उपयोगी अन्न आदि का दान करते हैं, उनके लिए यह पुण्य फल सुरक्षा कवच के रूप में कष्ट कठिनाइयों से रक्षा करने वाला होता है ॥७॥

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥

उदारता पूर्वक दान देने वाले व्यक्ति कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते और न ही वे दुर्गति को प्राप्त करते हैं । वे दुःख-क्लेशों तथा पीड़ाओं से मुक्त रहते हैं। इस वसुन्धरा पर जो भी स्वर्गीय सुख है, वह सभी उनको दक्षिणा (दान-भावना) से ही प्राप्त होता है ॥८॥

भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तःपेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति ॥९॥

उदारदानी सर्वप्रथम दूध, घी प्रदान करने वाली श्रेष्ठ गौएँ प्राप्त करते हैं। वे सुन्दर वस्त्रों को धारण करने वाली नववधू को प्राप्त करते हैं । ओषधिरस प्राप्त करते हैं। धोखे से हमला करने वाले शत्रुओं पर भी दानदाता विजय प्राप्त करते हैं ॥९॥

भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम् ॥१०॥

दक्षिणादाता को शीघ्र गतिवान् अश्व अलंकृत करके भेंट किये जाते हैं । वस्त्राभूषण से सुशोभित सेवक-सेविकाएँ उनको प्राप्त होते हैं । उनके आवास-गृह पुष्करिणी के समान निर्मल, फूलों से सुसज्जित और देवालयों के समान पवित्र होते हैं ॥१०॥

भोजमश्वाः सुष्ठुवाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ॥११॥

उत्तम रीति से वहन करने वाले अश्व दाताओं को लेकर जाते हैं । दानियों के रथ भी श्रेष्ठ चक्रादि से विनिर्मित होते हैं । युद्धकाल में देवगण दाताओं का संरक्षण करते हैं । युद्धभूमि में दानदाता ही रिपुओं पर विजय प्राप्त करते हैं ॥११॥

सूक्त १०८

ऋषि: पणयो सुरा:, सरमा देवता, २,४,६,८,१०-११ सरमा देवशुनी ऋषिका
देवता – पणयो । छंद: त्रिष्टुप

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड्दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि ॥१॥

(पणियों का कथन) हे सरमा ! किस इच्छा से प्रेरित होकर तुम यहाँ उपस्थित हुई हो? यह मार्ग तो अति दुर्गम है। इस मार्ग से आते समय पीछे की ओर दृष्टि घुमाने पर आना सम्भव नहीं । हमारे पास ऐसी कौन सी वस्तु या शक्ति है, जिसके निमित्त तुम्हारा आना हुआ है ? ऐसी घनघोर रात्रि में किस प्रकार तुम्हारा आना हुआ? रस प्रवाहों (जल) को किस प्रकार पार किया ? ॥१॥

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन्वः ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरं पयांसि ॥२॥

(सरमा कहती है) हे पणियो ! मैं इन्द्रदेव की दूती बनकर यहाँ आई हैं । आप लोगों ने जिस महिमामय गोधन को एकत्रित किया है, उसे प्राप्त करने की मेरी अभिलाषा है । उन इन्द्रदेव के भय से जल ने मुझे आने दिया (उसे मैंने पार किया) इस प्रकार से रस प्रवाहों को पार करके मेरा आना हुआ है ॥२॥

कीदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥३॥

(पणियों का कथन है) हे सरमा ! तुम्हारे स्वामी इन्द्रदेव कैसे हैं? उनके पराक्रम किस प्रकार के हैं ? उनकी दृष्टि कैसी है? जिनकी दूती (संदेश वाहिका) बनकर तुम यहाँ पर इतनी दूर से चली आई हो? उन्हें हम मित्ररूप में स्वीकार करने को तैयार हैं। वहीं हमारी गौओं को लेकर उनके संरक्षक बने ॥३॥

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥४॥

(सरमा कहती हैं) जिन इन्द्रदेव की संदेश वाहिका के रूप में मेरा अतिदूर से आगमन हुआ है, वे अपराजेय हैं। वे ही सबको पराभूत करने में सक्षम हैं। तीव्र प्रवाह वाली गहरी नदियाँ भी उनके वेग को रोकने में सक्षम नहीं । हे पणियो ! मेरे स्वामी इन्द्रदेव निश्चित ही आप को मारकर सुला देंगे ॥४॥

इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान्त्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥५॥

(पणि कहते हैं) हे सौभाग्यवती सरमा ! तुम द्युलोक की अन्तिम सीमा से यहाँ तक पहुँच कर इन गौओं की अभिलाषा करती हो । इन गौओं को कौन पराक्रमी युद्ध किए बिना छुड़ाकर ले जाने में समर्थ है? हमारे पास भी अनेक तीक्ष्ण आयुध हैं ॥५॥

असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ॥६॥

(सरमा कहती है) हे पणिओ ! आपकी बातें सैनिक गरिमा के अनुरूप नहीं हैं । आपके शरीर पापयुक्त होने से बाण चलाने में असक्षम, पराक्रमरहित हैं (पापवृत्ति देववृत्तियों के सामने निस्तेज हो जाती है), आप लोगों के गमन मार्ग देवताओं द्वारा अनुल्लंघनीय हों । हमें संदेह है कि बृहस्पतिदेव कहीं आगको पीड़ित न करें, यदि आप गौओं को देने के लिए तैयार नहीं हैं, तो संकट सामने है ॥६॥

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥७॥

(पणियों का कथन) हे सरमा ! हमारी सम्पत्ति का यह कोष अद्रिबुध्ध (पर्वतों या जड़ बुद्धि) द्वारा संरक्षित है, जो गौओं और अन्य धन-सम्पदा से परिपूर्ण है । संरक्षण में समर्थ जो ये पणिगण है, वे इस

निधि की सुरक्षा करते हैं । गौओं की ध्वनि को सुनकर तुम्हारा यहाँ पर आना निरर्थक ही हुआ है ॥७॥

एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥८॥

(सरमा कहती है) सोमपान से प्रोत्साहित होकर नवीन मार्गों से चलकर अङ्गिरस् और अयास्य ऋषि आपके यहाँ पहुँचेंगे और इन सभी गौओं के हिस्से करके ले जायेंगे । हे पणियो ! उस समय आपका अहंकार चूर-चूर हो जायेगा ॥८॥

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥९॥

(पणियों का कथन) हे सरमा ! इस प्रकार देवों के बल से भयभीत होकर तुम्हारा यहाँ आगमन हुआ है, इसलिए हम भगिनी सदृश अपना परिजन ही मानते हैं। तुम यहाँ से सीधे इन्द्रदेव के पास नहीं लौटो। हे सौभाग्यवते ! हम तुमको ही गोधन का हिस्सा देने को तैयार हैं ॥९॥

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः ।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥१०॥

(सरमा कहती हैं) हे पणिओ ! मैं भातृत्व भावना का सम्बन्ध नहीं मानती और न ही किसी की भगिनी बनना स्वीकार करती हैं। इन्द्रदेव और अति भयंकर अंगिरस् ही इस सम्बन्ध को जानते हैं। इस स्थान से जब मेरा पुनः इन्द्रादि के समीप जाना होगा, तब वे मेरी अभिलाषा के अनुरूप आपके ऊपर आक्रमण करेंगे। इसलिये हे पणिओ ! आप यहाँ से अतिदूर चले जाओ ॥१०॥

दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ॥११॥

हे पणिओ ! आप यहाँ से अतिदूर चले जाओ । गौएँ पीड़ित हैं। वे अपने तेज से अन्धकार का नाश करती दई इस पर्वत से ऊपर चली जाएँ । बृहस्पति, सोम, सोम अभिषवकर्ता, पाषाण, ऋषिगण और मेधावीजन गुप्तरात से छुपायी गईं इन गौओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं ॥११॥

सूक्त १०९

ऋषि: जुहूब्रह्मजाया, ब्राह्म: ऊर्ध्वनाभा
देवता – विश्वे देवा । छंद: त्रिष्टुप, ६-७ अनुष्टुप

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन ॥१॥

उन्होंने पहले ब्रह्म किल्बिष (ब्रह्म विकार-प्रकृति अथवा रचना) को कहा – व्यक्त किया। उग्र तप से पहले दिव्य आप: (मूल सक्रिय तत्त्व) तथा सोम प्रकट हुए । दूर स्थित (सूर्य) जल तथा वायु तेज से युक्त हुए । ॥१॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

संकोच का परित्याग करके राजा सोम ने पावन चरित्रवती वह ब्रह्मजाया, बृहस्पति को प्रदान की । मित्रावरुण देवों ने इस कार्य का अनुमोदन किया। तत्पश्चात् यज्ञ सम्पादक अग्निदेव हाथ से पकड़कर उसे आगे लेकर आएँ ।॥२॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३॥

हे बृहस्पतिदेव ! इसे हाथ से स्पर्श करना उचित ही है; क्योंकि यह ब्रह्मजाया है, ऐसा सभी देवों ने कहा। इन्हें तलाशने के लिए जो दूत भेजे गए थे, उनके प्रति इसका अनासक्ति भाव रहा (जुहू ब्रह्मनिष्ठों के अलावा अन्यों का साथ नहीं देती) । जैसे शक्तिशाली नरेश का राज्य सुरक्षित रहता है, वैसे ही इनकी चरित्रनिष्ठा अडिग रही ॥३॥

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥४॥

जो सप्तर्षिगण तपश्चर्या में संलग्न थे, उनके द्वारा तथा चिरप्राचीन देवताओं ने इसके विषय में घोषणा की है। कि यह ब्राह्मण द्वारा ग्रहण की गई कन्या अति सामर्थ्यवान् है । परम व्योम में यह दुर्लभ शक्ति धारण करती है ॥४॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद्बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः ॥५॥

हे देवगण ! सर्वव्यापी बृहस्पतिदेव विरक्त होकर ब्रह्मचर्य नियम का निर्वाह करते हुए सर्वत्र विचरण करते हैं। वे देवताओं के साथ एकात्म होकर उनके अंग-अवयव रूप हैं । जिस प्रकार उन्होंने सर्वप्रथम सोम के हाथों जुहू को प्राप्त किया, वैसे ही इस समय भी बृहस्पतिदेव ने इसे प्राप्त किया ॥५॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥६॥

देवताओं और मनुष्यों ने बार-बार बृहस्पतिदेव को उनकी पत्नी समर्पित की । सत्य स्वरूप राजाओं ने भी दुबारा शपथ पूर्वक (संकल्पपूर्वक) चरित्रनिष्ठ पत्नी को उन्हें प्रदान किया ॥६॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥७॥

चरित्रनिष्ठ पत्नी को पुन: लाकर देवों ने बृहस्पतिदेव को दोष मुक्त किया। तत्पश्चात् पृथ्वी के सर्वोत्तम अन्न का विभाजन करके सभी सुखपूर्वक यज्ञीय उपासना करने लगे ॥७॥

सूक्त ११०

ऋषि: जमदग्निभार्गव जामदग्न्यो रामो
देवता – आप्रीसूक्तं । छंद: त्रिष्टुप

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१॥

प्राणिमात्र के हितैषी हे मित्र अग्ने ! आप महान् गुण सम्पन्न होकर प्रज्वलित हों, कुशल याजकों द्वारा निर्धारित यज्ञ मंडप में देवगणों को आहूत करें तथा यजन करें। आप श्रेष्ठ चेतनायुक्त, विद्वान् तथा देवगणों के दूत हैं ॥१॥

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२॥

शरीर के रक्षक और श्रेष्ठ वाणी वाले हे अग्निदेव ! आप सत्यरूप यज्ञ के मार्गों को वाक्माधुर्य से सुसंगत करते हुए हवियों को ग्रहण करें ।

विचारपूर्वक ज्ञान और यज्ञ देवगणों के लिए ग्रहण कर उन तक पहुँचाएँ ॥२॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥३॥

देवताओं को आहूत करने वाले हे अग्निदेव ! आप प्रार्थना करने योग्य वन्दनीय तथा वसुओं के समान प्रेम करने वाले हैं। आप देवताओं के होता के रूप में यहाँ पधार कर उनके लिए यज्ञ करें ॥३॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४॥

दिन के प्रारंभकाल में भूमि (या यज्ञभूमि) को ढकने वाली ये कुशाएँ बहुत ही उत्तम हैं । ये देवताओं तथा अदिति के निमित्त सुखपूर्वक आसीन होने के योग्य हैं। ये यज्ञवेदी को ढकने के लिए फैलायी जाती हैं ॥४॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५॥

जैसे पतिव्रता स्त्रियाँ अपने पति का विकास करने वाली होती हैं, वैसे हो देवत्व सम्पन्न महान द्वार देविया (दिव्य द्वार) रिक्त स्थान वाली, सबको आने-जाने के लिए मार्ग देने वाली तथा देवगणों को सगमता से प्राप्त होने वाली हों ॥५॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६॥

उषा और रात्रि देवियाँ मनुष्यों के लिए विभिन्न प्रकार के सुख प्रकट करें । वे यज्ञस्थल पर आकर प्रतिष्ठित हों; क्योंकि वे यज्ञभाग की अधिकारिणी (स्वामिनी) हैं । वे दोनों दिव्यलोक वासिनी अति गुणवती , श्रेष्ठ आभूषणादि से शोभायुक्त, उज्ज्वल, तेजस्वी स्वरूप वाली तथा सौन्दर्य को धारण करने वाली हैं ॥६॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

दिव्य गुणों से युक्त होता, अग्निदेव और आदित्यगण सर्वश्रेष्ठ वेदमन्त्रों के ज्ञाता तथा मनुष्यों के लिए यज्ञ की रचना करने वाले हैं। वे देवपूजन के निमित्त यज्ञीय अनुष्ठानों के प्रेरक, कर्मकुशल, स्तुतिकर्ता तथा पूर्व दिशा के प्रकाश को भली प्रकार प्रकट करने वाले हैं ॥७॥

आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विळा मनुष्वदिह चेतयन्ती ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ॥८॥

देवी भारती का हमारे यज्ञ में शीघ्रता से आगमन हो। इस यज्ञ की वार्ता को स्मरण करके देवी इला मनुष्यों के समान यहाँ पदार्पण करें तथा देवी सरस्वती भी शीघ्र ही यहाँ पधारें । सत्कर्मशील ये तीनों देवियाँ इस यज्ञ में आकर सुखकारी आसन पर प्रतिष्ठित हों ॥८॥

य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद्भुवनानि विश्वा ।
तमद्य होतरिषितो यजीयान्देवं त्वष्टारमिह यक्षि विद्वान् ॥९॥

हे होताओ ! द्यावा-पृथिवी (प्राणियों को) जन्म देने वाली हैं। उन्हें त्वष्टादेव ने सुशोभित किया है । आप ज्ञानवान्, श्रेष्ठ कामनायुक्त तथा यज्ञशील हैं, अतएव आज इस यज्ञ में उन त्वष्टादेव की यथोचित अर्चना करें ॥९॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि ।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०॥

हे यप (यज्ञ के स्तम्भ) ! आप स्वयं ही अपनी सामर्थ्य से देवों के निमित्त अन्नादि और अन्य यजनीय सामग्री श्रेष्ठ रीति से लाकर यथा

समय प्रस्तुत करें । वनस्पतिदेव, शमितादेव और अग्निदेव मधुर घृतादि के साथ यजनीय हविष्यान्न का सेवन करें ॥१०॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११॥

प्रदीप्त होते ही अग्निदेव ने यज्ञीय भावना को प्रकट किया और देवताओं के अग्रणी दूत बने । इस यज्ञ के प्रमख स्थानों में होता की भावना के अनुरूप वेदमन्त्रों का उच्चारण हो । स्वाहा के साथ यज्ञाग्नि में समर्पित किये गये हविष्यान्न को देवगण ग्रहण करें ॥११॥

सूक्त १११

ऋषि: वैरूपोऽष्ट्द्रंरष्ट्र
देवता – इन्द्र । छंद: त्रिष्टुप

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथायथा मतयः सन्ति नृणाम् ।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः ॥१॥

हे स्तोताओ ! जैसे-जैसे मनुष्यों की बुद्धियों का स्तर बढ़ता है, वैसे-वैसे आप लोग स्तुति पाठ करें। हम श्रेष्ठ स्तुतियों से इन्द्रदेव को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं । वे शूरवीर और ज्ञानवान् इन्द्रदेव स्तोत्रों के अभिप्राय को जानकर स्तोता साधकों से प्रीति करते हैं ॥१॥

ऋतस्य हि सदसो धीतिरद्यौत्सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानट् ।
उदतिष्ठत्तविषेणा रवेण महान्ति चित्सं विव्याचा रजांसि ॥२॥

अन्तरिक्ष के धारणकर्ता इन्द्रदेव प्रकाशित होते हैं । तरुण गौ के गर्भ से उत्पन्न वृषभ जिस प्रकार गौओं के साथ संयुक्त होते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव सर्वत्र व्याप्त होते हैं । गर्जना के साथ वे सबसे ऊपर विराजमान होते हैं और विस्तृत लोकों में भी संव्याप्त होते हैं ॥२॥

इन्द्रः किल श्रुत्या अस्य वेद स हि जिष्णुः पथिकृत्सूर्याय ।
आन्मेनां कृण्वन्नच्युतो भुवद्गोः पतिर्दिवः सनजा अप्रतीतः ॥३॥

इस स्तोत्र के लक्ष्य इन्द्रदेव ही हैं। वे ही विजयशील हैं और उन्होंने ही सूर्यदेव के मार्ग को प्रशस्त किया है । अविनाशी और विजयी इन्द्रदेव ने सेना को उत्पन्न किया तत्पश्चात् यज्ञ में प्रवेश किया। वे ही स्वर्ग के अधिपतिऔर गौओं के संरक्षक हैं । वे शाश्वत और सर्वाधिक सामर्थ्यशाली हैं ॥३॥

इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य व्रतामिनादङ्गिरोभिर्गृणानः ।
पुरूणि चिन्नि तताना रजांसि दाधार यो धरुणं सत्यताता ॥४॥

अंगिराओं के द्वारा स्तुति किए जाने पर प्रसन्न होकर इन्द्र ने जल से पूर्ण मेघों को अपनी विस्तृत सामर्थ्य से विदीर्ण किया। उन्होंने जल राशि का निर्माण किया । द्युलोक में सबको धारण करने की शक्ति प्रदान की ॥४॥

इन्द्रो दिवः प्रतिमानं पृथिव्या विश्वा वेद सवना हन्ति शुष्णम् ।
महीं चिद्द्यामातनोत्सूर्येण चास्कम्भ चित्कम्भनेन स्कभीयान् ॥५॥

इन्द्रदेव द्युलोक और भूलोक दोनों के अधिपति हैं । वे समस्त यज्ञों के ज्ञाता हैं। वे जल प्रवाह में बाधक शुष्ण को विनष्ट करते हैं। वे सूर्यदेव के द्वारा व्यापक आकाश और धरती को आलोकित करते

हैं। सर्वश्रेष्ठ धारक के रूप में मानों उन्होंने स्तम्भ द्वारा अन्तरिक्ष को ऊपर धारण किया हुआ है ॥५॥

वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्तरदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्थाथाभवो मघवन्बाह्वोजाः ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! आप वृत्रहन्ता हैं, आपने ही वज्र के प्रहार से वृत्रासुर का संहार किया था । हे इन्द्रदेव ! जिस समय यज्ञ विरोधी वृत्रासुर आगे बढ़ रहा था, उस समय उसकी कुटिल माया को समर्थ वज्र द्वारा आपने ही विनष्ट किया। हे ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ! इसके पश्चात् आप अतिपराक्रम से सम्पन्न हुए ॥६॥

सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ॥७॥

जिस समय उषाएँ सूर्यदेव के साथ संयुक्त होती हैं, उस समय सूर्य किरणें विलक्षण वर्णों की शोभा प्राप्त करती हैं। पुन: जब आकाश में नक्षत्र दिखाई नहीं देते, तब सर्वत्रगामी सूर्यदेव की किरणों का मर्म कोई समझ नहीं पाते, यही सत्य है ॥७॥

दूरं किल प्रथमा जग्मुरासामिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः ।
क्व स्विदग्रं क्व बुध्न आसामापो मध्यं क्व वो नूनमन्तः ॥८॥

इन्द्रदेव के निर्देश से जो आप: तत्त्व या जल प्रवाहित हुआ था, वह प्रारम्भिक स्थिति में ही अतिदूर पहुंच गया था । हे आपः ! आपका प्रारम्भिक अगला भाग कहाँ है ? मुलभाग कहाँ पर है ? मध्यभाग कहाँ है ? तथाआपकी अन्तिम सीमा कहाँ पर है ? ॥८॥

सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्र विविज्रे जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत या मुमुच्रेऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ॥९॥

हे इन्द्रदेव ! जिस समय वृत्रासुर द्वारा अवरुद्ध जल धाराओं को आपने विमुक्त किया। उस समय वे अति वेगपूर्वक सर्वत्र प्रवाहित हुई । जिस समय आपने अपनी अभिलाषा से जल को खोल दिया, उस समय वह स्वच्छ जल तीव वेग से प्रवाहित हुआ। एक स्थान पर स्थिर नहीं रह सका ॥९॥

सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः ॥१०॥

परस्पर साथ-साथ प्रवाहित होने वाली नदियाँ प्रेमासक्त स्त्रियों के समान समुद्र की ओर जाती हैं। शत्रुओं को परास्त करके उनकी नगरियों के विध्वंसक इन्द्रदेव ही इस सम्पूर्ण जलराशि के अधिपति हैं। हे इन्द्रदेव ! हमें पृथ्वी की नानाविध ऐश्वर्य-सम्पदा , मधुर स्तोत्र तथा उत्तम आवास उपलब्ध हों ॥१०॥

सूक्त ११२

ऋषि: वैरूपो नभ: प्रभेदन:
देवता – इन्द्र । छंद: त्रिष्टुप

इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्य प्रातःसावस्तव हि पूर्वपीतिः ।
हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रूनुक्थेभिष्टे वीर्या प्र ब्रवाम ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! आप अभिषवित सोमरस का सेवन अपनी इच्छानुसार करें । जो सोम प्रभात वेला में प्रस्तत होता है, वह सर्वप्रथम आपके द्वारा ही ग्रहण करने योग्य है । हे शूरवीर इन्द्रदेव ! आप रिपुओं के संहार के लिए प्रोत्साहित हों । आपके पराक्रमी कर्मों का वर्णन हम वेद मन्त्रों से करते हैं ॥१॥

यस्ते रथो मनसो जवीयानेन्द्र तेन सोमपेयाय याहि ।
तूयमा ते हरयः प्र द्रवन्तु येभिर्यासि वृषभिर्मन्दमानः ॥२॥

हे इन्द्र ! आपका जो रथ मन की गति से भी अधिक तेज चलता है, उससे आप यहाँ सोमपान केला पधारें ।जिन अश्वों के सहयोग से

आप आनन्दित होते हैं, वे हरित अश्व तीव्र वेग से हमारे यहाँ आगमन करें ॥२॥

हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व ।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप स्वर्णिम सूर्य की तेजस्विता के समान श्रेष्ठतम स्वरूपों से अपने शरीर को सुशोभित करें । हम मित्रों के द्वारा आवाहन किए जाने पर आप देवताओं के साथ इस यज्ञ में प्रतिष्ठित हों तथा सोमपान से आनन्दित हों ॥३॥

यस्य त्यत्ते महिमानं मदेष्विमे मही रोदसी नाविविक्ताम् ।
तदोक आ हरिभिरिन्द्र युक्तैः प्रियेभिर्याहि प्रियमन्नमच्छ ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! सोमपान से प्रोत्साहित होने पर आपकी महिमा का जो गान होता है, उस महिमा (सामर्थ्य) को विस्तृत द्यावा-पृथिवी भी धारण करने में समर्थ नहीं । अपने प्रीतियुक्त अश्वों को रथ में जोतकर स्नेहयुक्त अन्नऔर सोमयुक्त यज्ञ सामग्री को लक्ष्य बना करके आप हमारे यज्ञ स्थल में पधारें ॥४॥

यस्य शश्वत्पपिवाँ इन्द्र शत्रूननानुकृत्या रण्या चकर्थ ।
स ते पुरंधिं तविषीमियर्ति स ते मदाय सुत इन्द्र सोमः ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! जिनके सोमपान द्वारा आप आश्चर्यप्रद युद्धोपयोगी सामर्थ्य से हर्षित होकर बार-बार शत्रुओं का सहार करते हैं, वे यजमान ही आपके निमित्त अभीष्ट स्तोत्रों को प्रेरित करते हैं। आपके आनन्द के लिए ही सोमाभिषव किया गया है ॥५॥

इदं ते पात्रं सनवित्तमिन्द्र पिबा सोममेना शतक्रतो ।
पूर्ण आहावो मदिरस्य मध्वो यं विश्व इदभिहर्यन्ति देवाः ॥६॥

सैकड़ों यज्ञों के कर्ता हे इन्द्रदेव ! आपके चिरपुरातन जो सोमपात्र हैं, उनसे आप सोमपान करें । जिनकी सम्पूर्ण देवगण अभिलाषा करते हैं, वे पात्र प्रोत्साहक और मधुर सोमरस से परिपूर्ण हैं ॥६॥

वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते ।
अस्माकं ते मधुमत्तमानीमा भुवन्त्सवना तेषु हर्य ॥७॥

हे अभीष्ट वर्षक इन्द्रदेव ! हविष्यान्न समर्पित करते हुए यजमान विभिन्न प्रकार से आपकी स्तुतियाँ करते हैं तथा सोमपान के लिए आवाहित करते हैं। हमारे ये यज्ञकर्म आपके लिए ही मधुर सोमरस से युक्त हैं । इनसे आप भली प्रकार आनन्दित हों ॥७॥

प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि ।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! चिरकाल से आपने जो पराक्रम पूर्ण प्रदर्शन किये, हम उनकी महिमा का वर्णन करते हैं । जल वर्षा के निमित्त आपने मेघों को वज्र से तोड़ा था तथा स्तोताओं के लिए गौओं (किरणों या पोषक धाराओं) की प्राप्ति सुगम कर दी थी ॥८॥

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत्क्रियते किं चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥९॥

संघों के अधिपति हे इन्द्रदेव ! आप स्तोताओं के बीच में स्तोत्र श्रवण हेतु विराजमान हों । विद्वज्जन आपको सर्वोत्तम ज्ञानसम्पन्न मानते हैं। समीपस्थ अथवा दूरस्थ कोई भी अनुष्ठान आपके बिना करना सम्भव नहीं । है । वैभवशाली इन्द्रदेव ! आप हमारी स्तुतियों को विभिन्न रूपों में विस्तृत करें ॥९॥

अभिख्या नो मघवन्नाधमानान्त्सखे बोधि वसुपते सखीनाम् ।
रणं कृधि रणकृत्सत्यशुष्माभक्ते चिदा भजा राये अस्मान् ॥१०॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! हम याचकों को आप तेजस्वी बनाएँ। धनाधिपति मित्र स्वरूप हे इन्द्रदेव ! आप मित्र भावना से युक्त हमारी स्तुतियों को समझें । युद्ध कौशल में प्रवीण हे इन्द्रदेव ! सत्य ही आपका बल है।आप हमें अप्राप्य ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१०॥

सूक्त ११३

ऋषि: वैरूप शतप्रभेदन:
देवता – इन्द्र । छंद: जगती, १० त्रिष्टुप

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।
यदैत्कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत ॥१॥

समस्त देवों के साथ चैतन्य द्यावा-पृथिवी भी इन्द्रदेव की सामर्थ्य की रक्षा करें । जब महान् कार्यों को सम्पन्न करके इन्द्रदेव अपनी सामर्थ्य से महिमा को प्राप्त करते हैं, तब वे सोमपान करके संवर्द्धित होते हैं ॥१॥

तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसांशुं दधन्वान्मधुनो वि रप्शते ।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभिर्वृत्रं जघन्वाँ अभवद्वरेण्यः ॥२॥

विष्णुदेव ने मधुर (सोम) का अंश प्रेरित किया, इसके ओजस् से विकसित इन्द्रदेव की महिमा का अनेक प्रकार से स्तुतिगान किया गया। ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव ने सहायक देवों के साथ एकत्रित होकर वृत्रासुर का संहारकरके सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त किया ॥२॥

वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मनावर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ॥३॥

संग्राम के लिए आयुधों को धारण करने वाले इन्द्रदेव जब प्रतिरोध के लिए प्रस्तुत रिपु वृत्रासुर से युद्ध करते हैं, तब उनकी बढ़ी हुई ख्याति का सभी वर्णन करते हैं । हे पराक्रमी इन्द्रदेव ! इस समय आपकी महान सामर्थ्य और महिमा को सभी मरुद्गण बढ़ाते हैं ॥३॥

जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः प्रापश्यद्वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृजदस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम् ॥४॥

जन्मकाल से ही रिपुओं को पीड़ित करने वाले वीर पराक्रमी इन्द्रदेव, संग्राम को दृष्टिगत रखकर अपने शौर्य को बढ़ाते हैं। उन्होंने मेघों को जल वृष्टि के लिए छिन्न-भिन्न किया तथा एक साथ प्रवाहित होने वाले जल को नीचे की ओर प्रवाहित किया। अपने श्रेष्ठ कर्मकौशल से व्यापक स्वर्ग को स्थिर किया ॥४॥

आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यत वरीयो द्यावापृथिवी अबाधत ।
अवाभरद्धृषितो वज्रमायसं शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे ॥५॥

इन्द्रदेव विशाल शत्रु-सेनाओं की ओर अचानक दौड़ पड़े। अपनी विशेष महत्ता से उन्होंने द्युलोक और भूलोक को नियन्त्रित किया । जो वज्रास्त्र दानशील मित्रावरुण को सुख प्रदान करने वाला है, उसी

अस्त्र को इन्द्रदेव ने शत्रुओं के संहार के लिए विकराल रूप में धारण किया ॥५॥

इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे ।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसापो बिभ्रतं तमसा परीवृतम् ॥६॥

इन्द्रदेव विविध प्रकार से भयंकर गर्जना करते हुए शत्रुओं का संहार करते हैं। उनके पराक्रम का उद्घोष करते हुए जल प्रवाहित हुआ। बलशाली वृत्रासुर ने अन्धकार से घेरकर जल को रोक रखा था; परन्तु महान् तेजस्वी इन्द्रदेव ने अपनी सामर्थ्य से वृत्रासुर का संहार किया ॥६॥

या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा महित्वेभिर्यतमानौ समीयतुः ।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत ॥७॥

अपनी-अपनी सामर्थ्य एवं वीरता का प्रदर्शन करते हुए इन्द्रदेव और वृत्रासुर क्रोधित होकर परस्पर युद्ध करने लगे। वृत्रासुर के संहार के साथ ही अतिभयंकर अन्धकार विनष्ट हो गया । इन्द्रदेव की महत्ता इस प्रकार की है कि वीरों की गणना के समय सर्वप्रथम उनके ही नाम का उच्चारण किया जाता है ॥७॥

विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि तेऽवर्धयन्त्सोमवत्या वचस्यया ।
रद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मनाग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नमावयत् ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! वृत्रहनन के पश्चात् सभी याज्ञिक एवं स्तोता, सोम सहित स्तुतियों से आपकी सामर्थ्य को संवर्धित करते हैं । इन्द्रदेव के वज्र प्रहार से प्रताड़ित दुर्द्धर्ष वृत्रासुर के विनष्ट हो जाने पर लोगों ने प्रसन्नतापूर्वक उसी प्रकार अन्न ग्रहण किया, जिस प्रकार अग्निदेव हविष्यान्न ग्रहण करते हैं ॥८॥

भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्र वोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयञ्छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये ॥९॥

हे स्तोताओ ! इन्द्रदेव ने मित्रभाव से श्रेष्ठ कार्य सम्पादित किये हैं , उनकी स्तुति श्रेष्ठतम वाक्यों और बन्धुत्व भाव से युक्त वेदमंत्रों द्वारा करो । इन्द्रदेव ने भीति नरेश के लिए धुनि और चुमुरि नामक राक्षसों का संहार किया है । वे श्रद्धायुक्त मन से श्रेष्ठ स्तुतियों को सुनते हैं ॥९॥

त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसै निवचनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु ण उर्विया गाधमद्य ॥१०॥

हे इन्द्रदेव ! हमने स्तोत्र पाठ के समय विपुल सम्पत्ति और श्रेष्ठ अश्वों से युक्त ऐश्वर्य की आकांक्षा की थी, वे सभी हमें प्रदान करें। उन श्रेष्ठ ऐश्वर्यो अथवा स्तोत्रों से हम सभी अनिष्टों का निवारण करें। आज हम जिन स्तोत्रों का निर्माण कर रहे हैं, उन्हें आप प्रीतिपूर्वक वीकार करें ॥१०॥

सूक्त ११४

ऋषि: वैरूप: सध्रि: तापसज धर्मो
देवता – विश्वे देवा। छंद: त्रिष्टुप, ४ जगती

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुस्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम ।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन्विदुर्देवाः सहसामानमर्कम् ॥१॥

अग्निदेव और आदित्यदेवों ने चारों ओर आलोकित होकर तीनों लोकों को संव्याप्त किया। अन्तरिक्ष स्थित वायुदेव ने उनकी प्रसन्नता प्राप्त की । जिस समय सम्पूर्ण तेज से युक्त स्तुत्य सूर्यदेव के तेज को देवों ने उपलब्ध किया, तब उन्होंने तीनों लोकों के संरक्षण के लिए अन्तरिक्षीय जल की रचना की ॥१॥

तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते दीर्घश्रुतो वि हि जानन्ति वह्नयः ।
तासां नि चिक्युः कवयो निदानं परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥२॥

साधकगण पृथ्वी, तरिक्ष और द्युलोक में स्थित अग्नि, वायु और सूर्यदेव को हविष्यान्न समर्पित करते हुए उनकी उपासना करते हैं । कीर्तिवान् अग्निदेव का परिचय देवताओं को होता है। विद्वान् साधक,

अग्निदेव की मूल उत्पत्ति के ज्ञाता हैं । परम गुह्य व्रतों के मूलकारण को भी वे जानते हैं ॥२॥

चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ॥३॥

एक यज्ञवेदिका चतुष्कोणों से युक्त है। उसका स्वरूप श्रेष्ठ और घृतादि से स्नेहमय है । वह श्रेष्ठ यज्ञ सामग्री रूपी वस्त्रों को धारण करती है। जिस पर दो पक्षी (यजमान और पुरोहित) विराजमान होते हैं। उस यज्ञ वेदिका में अग्नि आदि सभी देवशक्तियाँ अपने-अपने हविर्भाग को ग्रहण करती हैं ॥३॥

एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे ।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम् ॥४॥

एक (सोम, अग्नि या प्राण रूप) पक्षी ब्रह्माण्ड रूपी समुद्र में संचार करते हुए प्रविष्ट होता है । वही इस समस्त विश्व को विशिष्ट रूप में देखता है । उस प्राण वायु को उपासनादि करते हुए प्रखर बुद्धि से हम समीप से देखते हैं। उसका और मातृरूपा वाणी का मिलन होने की स्थिति में, भाता ने प्रेम पूर्वक उसका आस्वादन कियाऔर निश्चित ही वह भी माता के स्नेह से युक्त हुआ ॥४॥

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ॥५॥

मेधावीजन, श्रेष्ठ पालनकर्ता, अद्वितीय परमेश्वर के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोणों से कल्पना करते हैं । वे यज्ञों में नानाविध छन्दों का उच्चारण करते और द्वादश(उपांशु, अन्तर्यामादि) सोम पात्रों का निर्माण करते हैं ॥५॥

षट्त्रिंशाँश्च चतुरः कल्पयन्तश्छन्दांसि च दधत आद्वादशम् ।
यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक्सामाभ्यां प्र रथं वर्तयन्ति ॥६॥

मेधावी लोग चालीस प्रकार के सोमपात्रों को, बारह प्रकार के छन्दों में आबद्ध मंत्रों का उच्चारण करते हुए स्थापित करते हैं। इस प्रकार से वे विचारपूर्वक यज्ञानुष्ठान करके ऋक् और साम द्वारा यज्ञीय रथ को गतिमान् करते हैं ॥६॥

चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य तं धीरा वाचा प्र णयन्ति सप्त ।
आप्नानं तीर्थं क इह प्र वोचद्येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य ॥७॥

यज्ञरूप परमेश्वर की चौदह महिमाएँ (भुवन) हैं। सप्तहोता स्तोत्रोच्चारण द्वारा यज्ञीय कार्य का सम्पादन करते हैं। उस विश्वव्यापी पवित्र यज्ञ-मार्ग का वर्णन करने में इस लोक में कौन समर्थ हैं, जिस सुमार्ग से देवगण भी सोमपान करते हैं? ॥७॥

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद्द्यावापृथिवी तावदित्तत् ।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद्ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ॥८॥

पन्द्रह हजार उक्थ मंत्र हैं । द्यावा-पृथिवी के सदृश वे उक्थ मंत्र भी विस्तृत महिमामय हैं । हजारों प्रकार की उनकी महान् सामर्थ्य है । जैसे स्तोत्र अनन्त हैं, वैसे ही वाणी की महिमा भी अपार है ॥८॥

कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद ।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित् ॥९॥

कौन ऐसे ज्ञानी हैं, जो सम्पूर्ण छन्द विद्या के भलीप्रकार से ज्ञाता हैं? मूल वाक्य रचना को किस ज्ञानी ने समझा है? जो सात होताओं के ऊपर आठवें ब्रह्मा हो सकें, ऐसे प्रमुख पुरुष कौन हैं? इन्द्रदेव के दो घोड़ों को किसने भलीप्रकार देखा व समझा है ? ॥९॥

भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः ।
श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः ॥१०॥

कुछ अश्व भूलोक की सीमा से अन्तरिक्ष तक विचरण करते हैं और कुछ रथ के धुरे में जुते हुए रहते हैं। इनकी थकावट को दूर करने के लिए देवगण तब आहार देते हैं, जब सारथी सूर्य रथ में विराजमान होते हैं ॥१०॥

सूक्त ११५

ऋषि: वार्षिटहव्य उपस्तुत:
देवता – अग्नि । छंद: जगती ८ त्रिष्टुप, ९ शक्वरी

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥१॥

शिशु अवस्था से सीधे ही युवक (प्रखर) हो जाने वाले अग्निदेव का क्रम वड़ा अद्भुत है । वे उत्पन्न होने के बाद अपनी स्तनहीन दोनों माताओं (अरणियों या द्यावा-पृथिवी) के पास दूध पीने नहीं जाते, वरन् श्रेष्ठ दूतों की भूमिका निभाते हुए देवताओं के पास हवि पहुँचाते हैं ॥१॥

अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता ।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा ॥२॥

जो सर्वश्रेष्ठ कर्म करने वाले और दातारूप हैं, यजमानों ने उनका 'अग्नि' नाम निर्धारित किया है । वे अग्निदेव ज्वालारूपी दाँतों से वनों का भलीप्रकार भक्षण करते हैं। वे जुहू नामक उच्च पात्र में समर्पित

हवि को उसी प्रकार ग्रहण करते हैं, जिस प्रकार हृष्ट-पुष्ट और समर्थ वृष, घासादि खाते हैं ॥२॥

तं वो विं न द्रुषदं देवमन्धस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम् ।
आसा वह्निं न शोचिषा विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः ॥३॥

हे स्तोताओ ! वृक्षों में आश्रय पाने वाले पक्षी के समान अरणियों के आश्रय में रहने वाले तेजस्वी, अन्नदाता, ध्वनि करते हुए वनों के दहनकर्ता. जलयुक्त, ज्वालारूपी मुख से हवि के वहनकर्ता, तेजस्विता से महान् , महत्त्वपूर्ण कर्मों के निर्वाहक तथा सूर्य के समान मार्गों के प्रकाशक अग्निदेव की प्रार्थना करो ॥३॥

वि यस्य ते ज्रयसानस्याजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।
आ रण्वासो युयुधयो न सत्वनं त्रितं नशन्त प्र शिषन्त इष्टये ॥४॥

हे अविनाशी अग्निदेव ! जिस समय आप दहन क्रिया करते हैं, उस समय वायुदेव आपके चारों ओर सचरण करते हैं । त्विग्गण गतिशील योद्धाओं की तरह यज्ञ करते हुए आपका स्तुतिगान करते हैं तथा आपको घेरकर उपस्थित होते हैं । तीनों सवनों में या तीनों लोकों में व्याप्त, बल-सम्पन्न आपको वे प्राप्त करते हैं ॥४॥

स इदग्निः कण्वतमः कण्वसखार्यः परस्यान्तरस्य तरुषः ।
अग्निः पातु गृणतो अग्निः सूरीनग्निर्ददातु तेषामवो नः ॥५॥

अग्निदेव ही सर्वाधिक ध्वनि करने वाले तथा दूरस्थ और समीपस्थ शत्रुओं के विनाशक हैं । जो शब्द के साथ स्तोत्र पाठ करते हैं, उनके लिए अग्निदेव मित्रस्वरूप और संरक्षक हैं। अग्निदेव हमें अन्न और सुरक्षा प्रदान करें ॥५॥

वाजिन्तमाय सह्यसे सुपित्र्य तृषु च्यवानो अनु जातवेदसे ।
अनुद्रे चिद्यो धृषता वरं सते महिन्तमाय धन्वनेदविष्यते ॥६॥

श्रेष्ठ पितृभावयुक्त, प्रचुर अन्न के दाता, विपुल सामर्थ्ययुक्त, सर्वोत्तम ज्ञाता, हे अग्ने ! आपकी स्तुति के लिए हम शीघ्रता से तत्पर हुए हैं। संकटकालीन स्थिति में महापराक्रमी सामर्थ्य से धनुष-बाण धारण करके, आप संरक्षण प्रदान करते हैं। ऐसे पूजनीय सर्वश्रेष्ठ दाता अग्निदेव को हम श्रेष्ठ यज्ञ-सामग्री समर्पित करते हैं ॥६॥

एवाग्निर्मर्तैः सह सूरिभिर्वसुः ष्टवे सहसः सूनरो नृभिः ।
मित्रासो न ये सुधिता ऋतायवो द्यावो न द्युम्नैरभि सन्ति मानुषान्
॥७॥

यज्ञादि कर्मों में संलग्न, ज्ञानी मनुष्य अग्निदेव को शक्ति का पुत्र और ऐश्वर्यशाली कहकर पुकारते हैं । यज्ञीय सत्कर्मों के निर्वाहक मित्र के समान ही अग्निदेव के सान्निध्य में सन्तुष्टि प्राप्त करते हैं। वे अपने दिव्यतायुक्त यशस्वी तेज से शत्रुओं को पराभूत करते हैं ॥७॥

ऊर्जो नपात्सहसावन्निति त्वोपस्तुतस्य वन्दते वृषा वाक् ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥८॥

हे बलपुत्र, सामर्थ्यवान् अग्निदेव ! इस प्रकार हम उपस्तुत ऋषि आपके लिए तेजस्वी स्तोत्रों का गान करते हैं । हम आपकी प्रार्थना करते हैं। आपकी कृपा दृष्टि से हम सुसन्तति और दीर्घायु को प्राप्त करें ॥८॥

इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यस्य पुत्रा उपस्तुतास ऋषयोऽवोचन् ।
ताँश्च पाहि गृणतश्च सूरीन्वषड्वषळित्यूर्ध्वासो अनक्षन्नमो नम इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् ॥९॥

हे अग्निदेव ! वृष्टिहव्य नामक ऋषि के पुत्र उपस्तुत आदि द्रष्टा ऋषियों ने आपकी स्तुति-अर्चना की । आप उनकी और स्तोता विद्वानों की सुरक्षा करें । "वषट्-वषट्" मन्त्रोच्चारण करते हुए हाथ ऊपर करके हवि समर्पित करने वाले तथा 'नमः-नमः' कहकर स्तुति करने वाले स्तोताओं को आप संरक्षण प्रदान करें ॥९॥

सूक्त ११६

ऋषि: स्थौरोऽग्निनयत:, स्थौरोऽग्निनयूषो
देवता – इन्द्र । छंद: त्रिष्टुप

पिबा सोमं महत इन्द्रियाय पिबा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
पिब राये शवसे हूयमानः पिब मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व ॥१॥

बलशालियों में अग्रणी हे इन्द्रदेव ! आप प्रचुर सामर्थ्य की प्राप्ति और वृत्रासुर के वध के लिए सोमपान करें । आप स्तुति किये जाने पर हमें अन्न और ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये सोमपान करें। आप मधुतुल्य सोमरस पान से संतुष्ट होकर हमारी कामनाओं को पूर्ण करें ॥१॥

अस्य पिब क्षुमतः प्रस्थितस्येन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
स्वस्तिदा मनसा मादयस्वार्वाचीनो रेवते सौभगाय ॥२॥

हे इन्द्रदेव !आप श्रेष्ठ रीति से प्रस्तुत, अभिषवित हविरूप सोमरस के श्रेष्ठ भाग का पान करें । कल्याणकारी मन से आप आनन्दित हों तथा ऐश्वर्य और सौभाग्य प्रदान करने के लिए अग्रसर हों ॥२॥

ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु ।
ममत्तु येन वरिवश्चकर्थ ममत्तु येन निरिणासि शत्रून् ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपको दिव्य सोम प्रोत्साहित करे । पृथ्वी पर मनुष्यों द्वारा सम्पादित यज्ञों में जो अभिषवित किया जाता है, वह भी आपको प्रशंसित करे । जिससे आप श्रेष्ठ ऐश्वर्यों को धारण करते हैं, वह भी आनन्दितकरे । जिससे आप शत्रुओं को विनष्ट करते हैं, वह सोमरस भी आप को हर्षित करे ॥३॥

आ द्विबर्हा अमिनो यात्विन्द्रो वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ॥४॥

दोनों लोकों में संव्याप्त,सर्वत्रगामीऔर कामना-पूरक इन्द्र, चारों ओर से अभिषिञ्चित सोमरूपी आहार के लिए दोनों अश्वों सहित यहाँ आएँ। हे इन्द्रदेव ! आपके लिए मधुसदृश सोम, वृषभचर्म के ऊपर परिशोधित करके पात्र में परिपूर्ण रखा हुआ है, उस सोम का पान करके वृषभों के समान यज्ञीय शत्रुओं को विनष्ट करें ॥४॥

नि तिग्मानि भ्राशयन्भ्राश्यान्यव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।
उग्राय ते सहो बलं ददामि प्रतीत्या शत्रून्विगदेषु वृश्च ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आप तीक्ष्ण शस्त्रों को प्रकाशित करते हुए राक्षसों के सुदृढ़ शरीरों को धराशायी करें । आप . पराक्रमी को हम उत्साहवर्द्धक सोमरस प्रदान करते हैं। सोमपान से प्राप्त सामर्थ्य द्वारा युद्ध में शत्रुओं पर प्रहारकरके आप उन्हें विनष्ट कर डालें ॥५॥

व्यर्य इन्द्र तनुहि श्रवांस्योजः स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः ।
अस्मद्र्यग्वावृधानः सहोभिरनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ॥६॥

हे समर्थ इन्द्रदेव ! आप हमें अन्न-धन प्रदान करें । अहंकारी दुष्ट शत्रुओं पर अपने असाधारण पराक्रम और धनुष-बाण का प्रयोग करें । हमारे लिए अनुकूल होकर हमें संवर्द्धित करें । शत्रुओं से पराभूत न होकर अपनी सामर्थ्य से शरीर को बढ़ाएँ ॥६॥

इदं हविर्मघवन्तुभ्यं रातं प्रति सम्राळहृणानो गृभाय ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यं पक्वोऽद्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ॥७॥

हे वैभवशाली इन्द्रदेव ! इस यज्ञीय सामग्री को हम आपके लिए समर्पित करते हैं। हे सम्राट् इन्द्रदेव ! क्रोध रहित होकर आप उसे ग्रहण करें । हे धनाधिपति इन्द्रदेव ! आपके लिए ही यह सोम अभिषवित किया गया है । आपके लिए ही यह पुरोडाशादि खाद्य-सामग्री पकायी गई है । स्नेहपूर्वक प्रस्तुत किये गये खाद्य-पदार्थों का सेवन करें तथा मधुर सोमरस का पान करें ॥७॥

अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥८॥

हे इन्द्रदेव ! ये यज्ञीय पदार्थ आपकी ओर प्रेषित किये जाते हैं। जो खाद्य-पदार्थ और जो सोमरस प्रस्तुत किया गया है, उनका सेवन करें । हम अन्नादि प्रस्तुत करते हुए आपको आमन्त्रित करते हैं। आपके द्वारा यज्ञकर्ता यजमानों के मनोरथ पूर्ण हों ॥८॥

प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियर्मि सिन्धाविव प्रेरयं नावमर्कैः ।
अया इव परि चरन्ति देवा ये अस्मभ्यं धनदा उद्भिदश्च ॥९॥

इन्द्रदेव और अग्निदेव के लिए श्रेष्ठ स्तुतियों को हम उत्तम रीति से समर्पित करते हैं । जिस प्रकार नदी में नाव भेजते हैं, वैसे ही पावन पूजनीय मंत्रों से हम आपको प्रोत्साहित करते हैं। हम उन देवगणों की सेवा-अर्चना करते हैं, जो हमारे लिए धनदाता तथा हमारे शत्रुओं के संहारकर्ता हैं ॥९॥

सूक्त ११७

ऋषि: भिक्षुरांगिरस:
देवता – धनान्नदानं । छंद: त्रिष्टुप, १-२ जगती

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन्मर्डितारं न विन्दते ॥१॥

देवताओं ने जो क्षुधा (भूख या तृष्णा) की रचना की है, वह कष्टकारिणी है । अन्न भक्षण करने वाले को भी मृत्यु से मुक्ति नहीं मिलती। दूसरे के प्रति दान देने वालों के धन की कभी क्षति नहीं होती । दूसरों के प्रति दान न देने वालों को कोई सुखी नहीं कर सकता ॥१॥

य आध्राय चकमानाय पित्वोऽन्नवान्त्सन्रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित्स मर्डितारं न विन्दते ॥२॥

जिस समय कोई भूख से पीड़ित मनुष्य, भिक्षा के भाव से उपस्थित होकर अन्न-याचना करता है, उस समय जो अन्नवान् होकर भी हृदय से निष्ठुर बनकर याचक के सामने ही भोजन ग्रहण करते हैं, ऐसे

संकीर्ण वत्ति केलोगों को कोई सुखदाता नहीं मिलते अर्थात् वे आत्मिक सुख-सन्तोष से सदैव वञ्चित रहते हैं ॥२॥

स इन्द्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥३॥

अन्न की अभिलाषा से किसी गरीब व्यक्ति की भिक्षा याचना पर जो अन्नदान करते हैं, वे ही सचमच दाता हैं। उन्हें सम्पूर्ण यज्ञों के फलों की प्राप्ति होती है तथा वे शत्रुओं के बीच में भी मित्रभाव को प्राप्त करते हैं ॥३॥

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥४॥

अपने साथी के समीप आने पर जो मित्र होकर भी उस मित्र व्यक्ति को अन्नदान नहीं करते, ऐसे कृपण मनुष्य का परित्याग करके दूर जाना ही उचित है । उसका गृह, निवास योग्य नहीं है। ऐसे समय किसी श्रेष्ठ स्वामी के पास जाना ही श्रेयस्कर है ॥४॥

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥५॥

समर्थ मनुष्य को चाहिए कि याचना भाव से आने वाले को निश्चय ही धनादि दान द्वारा संतुष्ट करें । ऐसे दाता को स्वर्गीय सुपथ प्राप्त होते

हैं। ऊपर-नीचे परिभ्रमण करने वाले रथचक्र के समान ही धन-सम्पदा कभी स्थिर नहीं होती, वह एक दूसरे के पास आती-जाती रहती है । ॥५॥

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥६॥

जिनके हृदय उदारतारहित (संकीर्ण) हैं, उनका अन्न-धन पाना निरर्थक ही है । उनका अन्न मृत्यु के समान ही विषैला है, यही सच्चाई है । जो न तो देवों को हविष्यान्न अर्पित करते हैं, न बन्धु-बान्धवों को देते हैं, जो मात्र स्वयमेव खाते हैं। वे केवल पापान्न को ही ग्रहण करते हैं ॥६॥

कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।
वदन्ब्रह्मावदतो वनीयान्पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ॥७॥

कृषि कार्य करते हुए, जो हल से भूमि को गहराई से जोतते हैं, वही कृषक अन्न-उत्पादन करते हैं। वही अपने मार्ग से जाकर अपने कर्मों द्वारा अपने स्वामी के लिए अन्न प्राप्त करते हैं। जैसे वेदज्ञ ब्राह्मण अंज्ञानी मनुष्यों से उत्तम हैं, उसी प्रकार दानी मनुष्य दान रहितों से सदैव श्रेष्ठ होते हैं ॥७॥

एकपाद्भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन्पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥८॥

जिनके पास धन-सम्पदा का एक भाग है, वे दो भाग सम्पदा की कामना करते हैं। दो भाग वाले तीन भाग वाले धनाढ्यों के पास जाते हैं। तीन भाग वाले चार भाग वाले के पास तथा चार भाग सम्पदा वाले इससे भी अधिक सम्पदा वाले के समीप गमन करते हैं । इस प्रकार ये धन-सम्पदा वालों की श्रृंखला बनी हुई है । अल्प सम्पदायुक्त, अपने से अधिक धनवान् बनने की आकांक्षा करते हैं ॥८॥

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः सम्मातरा चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः ॥९॥

हमारे दोनों हाथ एक जैसे होते हुए भी धारण क्षमता से समान नहीं होते । एक माता से जन्म लेने वाला गौओं की दध की मात्रा समान नहीं होती । दो जुड़वाँ भाई भी बल से एक समान नहीं होते । एक कुलका सन्तान होकर भी दोनों की दानभावना समान नहीं होती ॥९॥

सूक्त ११८

ऋषि: उरुक्षय श्रामहीयव:
देवता – रक्षोहाऽग्नि धनान्नदानं । छंद: गायत्री

अग्ने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा ।
स्वे क्षये शुचिव्रत ॥१॥

श्रेष्ठ व्रतशील हे अग्निदेव ! आप याजक मनुष्यों के बीच अपने निर्धारित स्थल पर प्रदीप्त होकर अन्धकार रूपी शत्रु का विनाश करें ॥१॥

उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे ।
यत्त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥२॥

स्रुक् नामक यज्ञीय घृतपात्र आपके लिए समीप लाया गया है । हे अग्निदेव ! आप उत्तम रीति से समर्पित आहुतियों को पाकर ऊपर उठे और प्रज्वलित हों । ये घृताहुतियाँ आपके लिए समर्पित हैं ॥२॥

स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा ।
स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥३॥

आदर सहित आवाहन किये गये और स्तुति मंत्रों से स्तुत्य , ये अग्निदेव प्रदीप्त होकर प्रकाशित होते हैं।सम्पूर्ण देवताओं से पहले उन्हें ही स्रुक्-पात्र से घृतयुक्त आहुतियाँ समर्पित करते हैं ॥३॥

घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः ।
रोचमानो विभावसुः ॥४॥

जिस समय ये अग्निदेव घृतादि हविष्यान्न से संयुक्त होते हैं, उस समय स्तुति और आहुतियों से तृप्त होकर प्रचुर प्रकाश से प्रदीप्त होते हैं ॥४॥

जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥५॥

हे अग्निदेव ! आप देवों के हविवाहक हैं । स्तोत्रों से स्तुति किये जाने पर आप प्रदीप्त होते हैं। सभी याजक आपका भावनापूर्वक आवाहन करते हैं ॥५॥

तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं सपर्यत ।
अदाभ्यं गृहपतिम् ॥६॥

हे मरणधर्मा मनुष्यो ! अग्निदेव अविनाशी, पराक्रमी (दबाव रहित), गृहपति हैं। घृतादि आहुतियों से उनकी अर्चना करें ॥६॥

अदाभ्येन शोचिषाग्ने रक्षस्त्वं दह ।
गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥७॥

हे अग्निदेव ! आप अपनी प्रखर-तेजस्विता से राक्षसी वृत्तियों का दहन करें। यज्ञ के संरक्षक बनकर आप दीप्तिमान् हों ॥७॥

स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः ।
उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥८॥

हे अग्निदेव ! आप अपने स्वाभाविक तेज से प्रदीप्त होकर राक्षसी शक्तियों को भस्मीभूत करें। आप निर्धारित स्थानों पर रहकर तेजस्विता को धारण करें ॥८॥

तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे ।
यजिष्ठं मानुषे जने ॥९॥

हे अग्निदेव ! आप हवियों के वहनकर्ता, मनुष्यों में सर्वोत्तम यज्ञकर्ता तथा विलक्षण निवास स्थलों से युक्त – हैं। आपको स्तोत्रों द्वारा (मंत्रोच्चारण करते हुए) प्रदीप्त किया जाता है ॥९॥

सूक्त ११९

ऋषि: ऐन्द्रो लव:
देवता – आत्मा । छंद: गायत्री

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१॥

मेरी (इन्द्र की) हार्दिक इच्छा है कि मैं गौ, अश्वादि (पोषण और शक्ति प्रवाहों) का दान करू; क्योंकि मैं कई बार सोमरस का सेवन कर चुका हूँ ॥१॥

प्र वाता इव दोधत उन्मा पीता अयंसत ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥२॥

जिस प्रकार अति वेगवान् वायु वृक्षों को कम्पायमान करती और ऊपर उठाती है, उसी प्रकार पान किया गया सोमरस कॅपाता है और प्रोत्साहित करता है। मैंने कई बार सोमरस का सेवन किया है ॥२॥

उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥३॥

जिस प्रकार शीघ्रगामी अश्व, रथ को ऊपर उठाकर ले जाते हैं, उसी प्रकार पान किया गया सोमरस मुझे उत्कर्ष प्रदान करता है । मैंने अनेक बार सोमरस का पान किया है ॥३॥

उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥४॥

जैसे गौ " हम्बा " शब्द करती हुई प्रिय बछड़े के पास जाती है, वैसे ही स्तोतागणों की स्तुतियाँ मेरी ओर आगमन करती हैं। मैंने कई बार सोमरस का पान किया है ॥४॥

अहं तष्टेव वन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥५॥

जैसे त्वष्टादेव (शिल्पी) रथ के ऊपरी भाग (सारथी स्थान) को बनाते हैं, वैसे ही मैं स्तोताओं के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न करता हूँ। मैंने अनेक बार सोमरस का पान किया है ॥५॥

नहि मे अक्षिपच्चनाच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥६॥

पञ्चजन सृष्टि (पंचवर्णात्मक सृष्टि) मेरी दृष्टि से क्षणभर के लिए भी विलुप्त नहीं हो सकती; मैंने अनेक बार सोमरस का पान किया है ॥६॥

नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥७॥

द्यावा-पृथिवी दोनों मेरे एक पार्श्व की समता करने में सक्षम नहीं । मैंने अनेक बार सोमपान किया है ॥७॥

अभि द्यां महिना भुवमभीमां पृथिवीं महीम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥८॥

मैंने अपनी महत्ता से द्युलोक और विस्तृत पृथ्वी को स्ववश में किया है। मैंने अनेक बार सोमपान किया है।॥८॥

हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥९॥

मेरे अन्दर इतनी सामर्थ्य है कि इस पृथ्वी को कहीं भी दूसरे स्थान पर ले जा सकता हैं। मैंने अनेक बार। सोमरस का पान किया है ॥९॥

ओषमित्पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१०॥

मैं (इन्द्र) इस धरा को अथवा अपने तेज से तप्त करने वाले सूर्य को यहाँ अथवा द्युलोक में जहाँ चाहूँ वहाँ विनष्ट कर सकता हूँ। मैंने अनेक बार सोमरस का पान किया है ॥१०॥

दिवि मे अन्यः पक्षोऽधो अन्यमचीकृषम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥११॥

मेरा एक भाग द्युलोक में विद्यमान है और दूसरा भाग नीचे पृथ्वी पर है। मैंने अनेक बार सोमपान किया है।॥११॥

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१२॥

अन्तरिक्ष में उदय होने वाले सूर्य के समान मैं (इन्द्र) महान् से महानतम हूँ। मैंने अनेक बार अमृतस्वरूप सोमरस का पान किया है ॥१२॥

गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१३॥

देवों के लिए हवि वहन करने वाला मैं यजमानों द्वारा स्तुप्त होकर हवि ग्रहण करके चलां जाता हूँ। मैंने अनेक वार सोमरस का पान किया है ॥१३॥

सूक्त १२०

ऋषि: आर्थवणो बृहदिव:
देवता – इन्द्र । छंद: त्रिष्टुप

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥१॥

संसार का कारणभूत ब्रह्म स्वयं ही सब लोकों में प्रकाश रूप में संव्याप्त हुआ, जिससे प्रचण्ड तेजस्वी बल से युक्त सूर्य का प्राकट्य हुआ। जिसके उदय होने मात्र से (अज्ञान-अन्धकार रूपी) शत्रु नष्ट हो जाते हैं। उसे देखकर सभी प्राणी हर्षित हो उठते हैं ॥१॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥

अपनी सामर्थ्य से वृद्धि को प्राप्त हुए अनन्त शक्तियुक्त, दुष्टों के शत्रु इन्द्रदेव शत्रुओं के अन्त:करण में भय उत्पन्न करते हैं। वे सभी चर-

अचर प्राणियों को संचालित करते हैं । (ऐसे) इन्द्रदेव की हम (याजकगण) सम्मिलित रूप से, एक साथ स्तुति करके उन्हें तथा स्वयं को आनन्दित करते हैं ॥२॥

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! सब यजमान आपके लिए ही अनुष्ठान करते हैं । जब यजमान विवाहोपरान्त दो या एक सन्तान के बाद तीन होते हैं, तो प्रिय लगने वाले (सन्तान) को प्रिय (धन या गुणों) से युक्त करें । बाद में इसे प्रिय संतान को पौत्रादि की मधुरता से युक्त करें ॥३॥

इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्यातुधाना दुरेवाः ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप जिस समय सोमपान से आनन्दित होकर धन-सम्पदा पर विजय प्राप्त करते हैं, उस समय ज्ञानी स्तोतागण आपकी ही स्तुति करते हैं। हे अपराजेय इन्द्रदेव ! आप हमें तेजस्विता प्रदान करें , दुस्साहसी असुर कभी आपको पराभूत न कर सकें ॥४॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! आपके सहयोग से हम रणभूमि में दुष्ट शत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं । युद्ध की इच्छा से प्रेरित अनेक शत्रुओं से हम भेंट करते हैं । आपके वज्रादि आयुधों को हम स्तोत्रों द्वारा प्रोत्साहित करते हैं। स्तुति मंत्रों से हम आपकी तेजस्विता को तीक्ष्ण करते हैं ॥५॥

स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून्प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि ॥६॥

स्तुत्य, विभिन्न स्वरूपों वाले, दीप्तिमान् , सर्वेश्वर और सर्वश्रेष्ठ आत्मीय इन्द्रदेव की हम स्तुति करते हैं। वे अपनी सामर्थ्य से वृत्र, नमुचि, कुयव आदि सात राक्षसों के विनाशकर्ता तथा अनेक असुरों के पराभवकर्ता हैं।॥६॥

नि तद्दधिषेऽवरं परं च यस्मिन्नाविथावसा दुरोणे ।
आ मातरा स्थापयसे जिगत्नू अत इनोषि कर्वरा पुरूणि ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप जिस यजमान के घर में हविरूप अन्न से परितृप्त होते हैं, उसे दिव्य और भौतिक सम्पदा प्रदान करते हैं । सम्पूर्ण प्राणियों के निर्माता, गतिशील द्युलोक और पृथ्वीलोक को आप ही

सुस्थिर करते हैं। उस समय आपको अनेक कार्यों का निर्वाह करना पड़ता है ॥७॥

इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः ।
महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥८॥

अषयों में श्रेष्ठ और स्वर्गलोक के आकांक्षी बृहद्दिव ऋषि इन्द्रदेव को सुख प्रदान करने के लिए ही इन वैदिक मंत्रों का पाठ करते हैं। वे तेजस्वी, दीप्तिमान् इन्द्रदेव विशाल पर्वत(अवरोध) को हटाते हैं तथा शत्रुपुरियों के सभी द्वारों के उद्घाटक हैं । ॥८॥

एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ॥९॥

अथर्वा ऋषि के पुत्र महाप्राज्ञ बृहद्दिव ने इन्द्रदेव के लिए अपनी बृहद् स्तुतियों का उच्चारण किया । माता सदृश भूमि पर उत्पन्न पवित्र नदियाँ, पारस्परिक भगिनी तुल्य स्नेह से जल प्रवाहित करती हैं तथा अन्नबल से लोगों का कल्याण करती हैं ॥९॥

सूक्त १२१

ऋषि: हिरण्यगर्भ: प्राजापत्य:
देवता – प्रजापति । छंद: त्रिष्टुप

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

पहले (आदिकाल में) हिरण्यगर्भ सम्यक रूप से अवस्थित था। सभी उत्पत्तिशील पदार्थों का एक ही स्वामी परमात्मा है। वहीं इस पृथ्वी और धुलोक को भी धारण किये हुए है । (वह जो भी है ?) हम हवि के द्वारा उसी की अर्चना का विधान करे ॥१॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

जो परमात्मा आत्मज्ञान के प्रेरक और बलदाता है, जिनकी आज्ञा का पालन सम्पूर्ण मनुष्य और देवसमुदाय करता है। जिनको छत्रछाया अमृत स्वरूपिणी है तथा मृत्यु भी उसी के अधीन है। उन परमात्मा की हम श्रेष्ठ रीति से उपासना करे ॥२॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

जो अपनी महान् सामर्थ्य से प्राणयुक्त (गतिशत) और देखने वाले सम्पूर्ण प्राणिसमुदाय के एक मात्र अधिपति हैं, जो इन द्विपद (मनुष्यों) और चतुष्पद (गवादि पशुओं) के स्वामी हैं। उन् सुखस्वरूप अद्वितीय परमेश्वर को हम श्रेष्ठ रीति से अर्चना करते हैं ॥३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

जिनकी महिमा से ये सभी हिमाच्छादित पर्वत प्रकट हुए हैं। जिनको महान् सामर्थ्य को जलपूर्ण नदियाँ गतिशील पृथ्वी, समुद्र, आकाशादि व्यक्त कर रहे हैं। सभी मुख्य दिशाएँ भुजाओं के समान जिनकी सामर्थ्य का संकेत कर रही हैं। उन्हीं अद्वितीय परमात्मा को हम सभी अर्चना करते हैं ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृव्ळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

जिन्होंने इन ऊँचे अन्तरिक्ष और पृथ्वी को अपने-अपने निर्धारित स्थानों पर कुशलता पूर्वक स्थापित किया। है। जिन्होंने स्वर्गलोक को स्थिर किया है और सूर्य को अन्तरिक्ष में केन्द्रित किया है । जो

अन्तरिक्ष में तेजस्विता अथवा रज की तरह अनन्त पिण्डों के रचयिता हैं, उन अद्वितीय परमात्मा की हम सभी उपासना करते हैं ॥५॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

द्युलोक और पृथ्वी शब्दायमान होकर, लोगों के संरक्षण के लिए स्थिर और अति प्रकाशित होकर, जिन्हें महिमामय रूप में देखते हैं। जिनके आश्रय से सूर्यदेव उदित होकर अन्तरिक्ष में प्रकाशित होते हैं । उन सर्वप्रकाशक परमेश्वर की हम सभी प्रकार से अर्चना करते हैं ॥६॥

आपो ह यद्‌बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

सृष्टि के प्रारम्भ में बृहत् आप: (मूल क्रियाशील तत्त्व) सम्पूर्ण विश्व को आच्छादित किये हुए था। उसने गर्भ धारण करके महान् (विस्तृत) अग्नि व आकाशादि सबको उत्पन्न किया। जिससे देवों में अद्वितीय प्राण की उत्पत्ति हुई, उन एक मात्र परमात्मा की हम सभी प्रकार से प्रार्थना करते हैं ॥७॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

जिन परमेश्वर ने आप:(मूल क्रियाशील तत्त्व) से सृष्टि संरचना में दक्षता धारण करने वाले विराट् यज्ञ को उत्पन्न होते देखा, उस समय देवरूप में वही एक देव अवस्थित थे । हम उन्हीं के निमित्त हवि युक्त अर्चना करें ॥८॥

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥

जो सृष्टि के रचयिता, सत्यधर्म के पालक , जगत् के धारणकर्ता और स्वर्गलोक के निर्माता हैं । जो आह्लादकारी और प्रचुर मात्रा में आप: तत्त्व के उत्पादनकर्ता हैं, वे हमें हिंसित न करें । उन सुखस्वरूप परमेश्वर की हम भली-भाँति उपासना करते हैं ॥९॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

हे प्रजापति ! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इन वर्तमान, भूत और भविष्यत् के सभी उत्पन्न पदार्थों को संव्याप्त करने में समर्थ नहीं । जिन विभूतियों की आकांक्षा करते हुए हम आपके प्रति हविष्यान्न अर्पित करते हैं, वे हमें प्राप्त हों । हम सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के अधिपति हों ॥१०॥

सूक्त १२२

ऋषि: चित्रमहा वासिष्ठ:
देवता – अग्नि । छंद: जगती, १,५ त्रिष्टुप

वसुं न चित्रमहसं गृणीषे वामं शेवमतिथिमद्विषेण्यम् ।
स रासते शुरुधो विश्वधायसोऽग्निर्होता गृहपतिः सुवीर्यम् ॥१॥

सूर्य के समान अद्भुत, तेजस्वी, रमणीय, सुखकर, अतिथि के समान पूजनीय, विद्वेष शून्य, अग्निदेव की हम अर्चना करते हैं । जो अग्निदेव सर्वपोषक दूध द्वारा संसार के धारणकर्ता और दुःख निवारक हैं, वे गौ और श्रेष्ठ बल हमें प्रदान करें। वे देवों के आवाहनकर्ता और गृहपति हैं ॥१॥

जुषाणो अग्ने प्रति हर्य मे वचो विश्वानि विद्वान्वयुनानि सुक्रतो ।
घृतनिर्णिग्ब्रह्मणे गातुमेरय तव देवा अजनयन्नु व्रतम् ॥२॥

हे अग्निदेव ! आप हर्षित होकर हमारे स्तोत्रों की कामना करें । हे श्रेष्ठ कर्मशील अग्निदेव ! आप समस्त लोकों के ज्ञाता हैं । घृताहुति ग्रहण करके आप स्तोताओं को सामगान की प्रेरणा दें । आपका

अनुकरण करते हुए देवगण भी यज्ञ में आते हैं अर्थात् यजमान को यज्ञीय फल देते हैं ॥२॥

सप्त धामानि परियन्नमर्त्यो दाशद्दाशुषे सुकृते मामहस्व ।
सुवीरेण रयिणाग्ने स्वाभुवा यस्त आनट् समिधा तं जुषस्व ॥३॥

हे अग्निदेव ! पृथ्वी आदि सप्तलोकों में संव्याप्त, अविनाशी रूप होकर आप उन दानशील, सत्कर्मशील यजमानों की सभी प्रकार की अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करें, जो पुरोडाशादि हवि समर्पित करते हैं । जो समिधाएँ समर्पित करके आपको संवर्धित करते हैं, उन्हें वीर सन्तति और श्रेष्ठ विवेक सम्मत सम्पदा प्रदान करें ॥३॥

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनम् ।
शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यम् ॥४॥

जो अग्निदेव यज्ञ के ध्वजरूप, सर्वश्रेष्ठ, सम्मुख विराजमान, बलिष्ठ, समस्त स्तोत्रों के श्रोता, तेजस्वी, अभिलषित फलों के दाता (अभीष्ट फलदाता) हविदाता यजमानों को धनादि से हर्षित करने वाले हैं, ऐसे सामर्थ्ययुक्त दिव्यगुणों से सम्पन्न अग्निदेव की हविष्यान्नादि समर्पित करके सात ऋत्विग्गण अर्चना करते हैं ॥४॥

त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः स हूयमानो अमृताय मत्स्व ।

त्वां मर्जयन्मरुतो दाशुषो गृहे त्वां स्तोमेभिर्भृगवो वि रुरुचुः ॥५॥

हे अग्निदेव ! आप देवों में सर्वोत्तम और अग्रणी, पूजनीय दूतरूप हैं। अमरत्व प्राप्ति के लिए आवाहित किये जाने पर आप हर्षित हों । मरुद्गण आपको सुशोभित करते हैं। भृगुवंशज ऋषि आपको यजमान के गृह मेंस्तोत्रों द्वारा विशिष्ट रूप में प्रज्वलित करते हैं ॥५॥

इषं दुहन्त्सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो ।
अग्ने घृतस्नुस्त्रिर्ऋतानि दीद्यद्वर्तिर्यज्ञं परियन्त्सुक्रतूयसे ॥६॥

हे अद्भुत कर्मशील अग्ने ! जो यजमान यज्ञीय सत्कर्मों में संलग्न रहते हैं, उनके लिए आप यज्ञस्वरूपिणी यथेष्ट दुग्धदात्री और विश्व पालनकर्मी गौ के रूप में यज्ञ फल प्रदान करें। आप प्रदीप्त होकर तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं। यज्ञ स्थल में सर्वत्र विराजमान होकर आप स्वयमेव सत्कर्मरूपी यज्ञ को सम्पादित कर रहे हैं।॥६॥

त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधुराज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे ॥७॥

हे अग्निदेव ! उषाकालीन प्रकाशित होने की वेला में यजमान साधक आपको ही दूतस्वरूप मानकर यज्ञ सम्पादित करते हैं। देवगण भी

आपको ही यजनीय मानकर अर्चना करते हैं और यज्ञ में घृताहुति अर्पण करके आपको ही संवर्धित करते हैं ॥७॥

नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः ।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

हे अग्निदेव ! यज्ञों में अनुष्ठानकर्ता और स्तोत्रकर्ता वसिष्ठ(वंशीय) ऋषि आप अन्न सम्पन्न (बलिष्ठ) का ही आवाहन करते हैं। आप दानशील यजमानों के गृहों में ऐश्वर्य स्थापित करें। आप हमें कल्याणकारी संसाधनों से सदैव संरक्षित करें ॥८॥

सूक्त १२३

ऋषि: वेनो भार्गव
देवता – वेन: । छंद: त्रिष्टुप

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां संगमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥१॥

यह वेन ज्योति के जरायु (गर्भ या आवरण) में स्थित तेजस् को विशिष्ट संदर्भ में प्रेरित करते हैं । अप्तत्त्व या जल के साथ सूर्य के संगम के समय, विप्रगण शिशु की तरह स्तुतियाँ करते हैं ॥१॥

समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि ।
ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः ॥२॥

वेनदेव अन्तरिक्ष से दिव्य लहरों को प्रेरित करते हैं। आकाश में उस कान्तिवान् की पृष्ठभूमि स्पष्ट प्रकट होती है । अत (सत्य या सनातन आकाश) के शिखर पर वह प्रकाशित होता है । उसी के समान (

एक ही) उत्पत्ति केन्द्र से प्रादुर्भूत (वेद वाणियाँ) उस प्रक्रिया की स्तुति (अनुशंसा) करती हैं ॥२॥

समानं पूर्वीरभि वावशानास्तिष्ठन्वत्सस्य मातरः सनीळाः ।
ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥३॥

पूर्व में वर्णित (वेन) वत्स (उत्पन्न सृष्टि घटकों) की माता (उत्पादक मातृसत्ता) के साथ एक ही नीड़ (आवास) में स्थित होकर, ऋत के शिखर (दिव्याकाश) में मधुर अमृत प्रवाह को संचालित करते हैं । वेद वाणियाँ उसका वर्णन करती हैं ॥३॥

जानन्तो रूपमकृपन्त विप्रा मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन् ।
ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुर्विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम ॥४॥

इस महान् मृग (गतिशील) के घोष (अभिव्यक्ति) का बोध करने वाले विद्वान् उसके स्वरूप को जानकर उसे व्यक्त करते हैं। ऋत मार्ग से गमनशील वह सिन्धु (अन्तरिक्ष) के अधिपति होते हैं। वह गन्धर्व (किरणोंके धारणकर्ता) अमृत रूप प्रवाहों के ज्ञाता हैं ॥४॥

अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन् ।
चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत्पक्षे हिरण्यये स वेनः ॥५॥

जिस प्रकार पत्नी मन्द मुस्कान के साथ अपने प्रेमी (पति) को यथोचित स्थान पर विराजमान करती है, ये ही परम व्योम में अप्सरा (अप से उत्पन्न सजक प्रकृति) ने वेन को धारण किया। वह अपने प्रिय(स्वाम) वेन के गृहों में संचरित होती है । वेन उसके प्रियतम होकर प्रकाशित क्षेत्र (या मेघ) में विराजित होते हैं ॥५॥

नाके सुपर्णमुप यत्पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा ।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम् ॥६॥

पक्षी की तरह आकाश में गतिशील, सुनहले पंखवाले, सबको पोषण देने वाले वरुण (वरणीय) के दूत हे वेनदेव ! आपको लोग हृदय से चाहते हैं। अग्नि के उत्पत्ति स्थल अन्तरिक्ष में आपको पक्षी की तरह विचरण करते हुए (द्रष्टागण) देखते हैं ॥६॥

ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात्प्रत्यङ्चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि ॥७॥

किरणों (वेदवाणियों) के धारणकर्ता वेनदेव ऊपर अन्तरिक्ष में स्थित रहते हैं। वे अपने अद्भुत शस्त्रों (विद्युत् आदि) को धारणकर सुन्दर रूप में शोभायमान होते हैं। वे सूर्य की भाँति प्रिय नामों (वस्तुओं) को उत्पन्न करते हैं ॥७॥

द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन्गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥८॥

वे विकसित होते द्रप्स (प्रादुर्भूत मूल तत्त्व) को गिद्ध जैसी (दूर-भेदक) दृष्टि से देखते हैं । जब वह समुद्र (विशाल अन्तरिक्ष) में पहुँचते हैं, तब भानु के समान शुभ्र तेज से चमकते हुए प्रिय रज (उत्पादक तेजयुक्त द्रव) को उत्पन्न करते हैं ॥८॥

सूक्त १२४

ऋषि: अग्नि, १,५-९ अग्नि वरुण सोमा
देवता –१ अग्नि, २-४ अग्नेरात्मा, ५, ६-८ वरुण: ६ सोम:, ९ इन्द्र ।
छंद: त्रिष्टुप, ७ जगती

इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ।
असो हव्यवाळुत नः पुरोगा ज्योगेव दीर्घं तम आशयिष्ठाः ॥१॥

हे अग्निदेव ! हमारे इस यज्ञ के पाँच नियामक (पंचभूत या चार ऋत्विज् और पाँचवें यजमान), तीन प्रकार के अनुष्ठान (तीन सवन के यज्ञ अथवा सृजन, पोषण एवं परिवर्तन) तथा सप्त होता हैं । आप हमारे यज्ञ की ओर आगमन करें। आप ही हमारे हविवाहक और अग्रगामी दूतरूप हैं। आप चिरकाल से अन्धकारपूर्ण गुफा को प्रकाशित करें ॥१॥

अदेवाद्देवः प्रचता गुहा यन्प्रपश्यमानो अमृतत्वमेमि ।
शिवं यत्सन्तमशिवो जहामि स्वात्सख्यादरणीं नाभिमेमि ॥२॥

('अग्निदेव की उक्ति) दीप्तिहीन अव्यक्त स्थिति में रहते हुए मैं देवों की प्रार्थना से प्रकट होकर स्वयं ज्योतिर्मान होता हैं। देवताओं द्वारा श्रेष्ठ रीति से स्तुतिपूर्वक प्रदत्त हविर्भाग प्राप्त कर अमर देवत्व पद को प्राप्त करता हैं। जिस समय यज्ञ सकुशल पूर्ण होता है, उस समय मैं अव्यक्त स्वरूप में चला जाता हैं। अभिन्न सखा रूप सनातन आवास में रहता हूँ ॥२॥

पश्यन्नन्यस्या अतिथिं वयाया ऋतस्य धाम वि मिमे पुरूणि ।
शंसामि पित्रे असुराय शेवमयज्ञियाद्यज्ञियं भागमेमि ॥३॥

पृथ्वी के अतिरिक्त आकाश के गमनमार्ग पर चलने वाले सूर्य की गति के अनुसार मैं वसन्तादि भिन्न-भिन्न त्रतुओं में यज्ञ के अनेक स्थानों को बनाता हैं। पितृरूप देवों की सुख प्राप्ति के लिए मैं (अग्नि) स्तवनों का गान करता हूँ। यज्ञभाव से रहित और अपवित्र स्थल को छोड़कर मैं यज्ञोचित स्थल की ओर जाता हूँ ॥३॥

बह्वीः समा अकरमन्तरस्मिन्निन्द्रं वृणानः पितरं जहामि ।
अग्निः सोमो वरुणस्ते च्यवन्ते पर्यावर्द्राष्ट्रं तदवाम्यायन् ॥४॥

इस यज्ञस्थल में मैंने अनेकों वर्ष व्यतीत किये हैं। यहाँ इन्द्रदेव को वरण करते हुए अपने उत्पत्ति स्थल का त्याग करता हूँ। जब अग्नि,

सोम और वरुणादि का पतन होता है, तब मैं ही प्रकट होकर उनका संरक्षण करता हूँ।॥४॥

निर्माया उ त्ये असुरा अभूवन्त्वं च मा वरुण कामयासे ।
ऋतेन राजन्ननृतं विविञ्चन्मम राष्ट्रस्याधिपत्यमेहि ॥५॥

मेरे आगमन से सभी असुर सामर्थ्य-विहीन हो गये। हे वरुणदेव ! आप भी हमारी प्रार्थना करें , हे राजन् (प्रकाशदान परमात्मन्) ! सत्य से असत्य को पृथक् करके मेरे राष्ट्र (प्रकाशित क्षेत्र) का आधिपत्य स्वीकार करें।॥५॥

इदं स्वरिदमिदास वाममयं प्रकाश उर्वन्तरिक्षम् ।
हनाव वृत्रं निरेहि सोम हविष्ट्वा सन्तं हविषा यजाम ॥६॥

हे सोमदेव ! यह जो सुन्दर स्वर्ग है, यह अतिरमणीय है, यह जो प्रकाश और व्यापक अन्तरिक्ष है; इन सबको आप देखें। वृत्रासुर का संहार करने के लिए हम दोनों प्रादुर्भूत हुए हैं। आप यजनीय हैं, आपके लिए हम यजनीय पदार्थ समर्पित करते हैं ॥६॥

कविः कवित्वा दिवि रूपमासजदप्रभूती वरुणो निरपः सृजत् ।
क्षेमं कृण्वाना जनयो न सिन्धवस्ता अस्य वर्णं शुचयो भरिभ्रति ॥७॥

क्रान्तदर्शी मित्रदेव ने अपनी कर्तृत्व सामर्थ्य से दिव्यलोक में तेज को स्थापित किया। वरुणदेव अत्यल्प प्रयास करके मेघों से जल का सृजन करते हैं । जलवृष्टि से परिपूर्ण नदियाँ स्त्रियों के द्वारा पति की सेवा के समान ही विश्व के हित संरक्षण में संलग्न हैं । वे पवित्र होकर प्रवाहित होती हुई वरुणदेव के तेज को धारण करती हैं ॥७॥

ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं सचन्ते ता ईमा क्षेति स्वधया मदन्तीः ।
ता ईं विशो न राजानं वृणाना बीभत्सुवो अप वृत्रादतिष्ठन् ॥८॥

जल वरुणदेव की अत्यन्त श्रेष्ठ सामर्थ्य को प्राप्त करता है । वह जल हविष्यान्न प्राप्त कर सभी को संतुष्ट करके प्रसन्नचित्त होते हुए वरुणदेव के समीप पहुँचता है । जिस प्रकार भयभीत प्रजा राजा का आश्रय ग्रहण करती है, वैसे ही जल वृत्रासुर से भयभीत होकर उससे दूर भागते हुए वरुणदेव का आश्रय ग्रहण करता है ॥८॥

बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुरपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम् ।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाणमिन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा ॥९॥

भयभीत जल के मित्र इन्द्रदेव या सूर्यदेव कहे जाते हैं। वे दिव्य गुणों से युक्त जल की मित्रता में स्थित होकर स्तुति-योग्य हैं। इन गुणों से युक्त इन्द्रदेव की मेधावी ऋषिगण विवेकपूर्वक अर्चना करते है ॥९॥

सूक्त १२५

ऋषि: वागाम्भ्रणी
देवता –आत्मा। छंद: त्रिष्टुप, २ जगती

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

(वाग्देवी का कथन) मैं वाग्देवी रुद्रगण एवं वसुगणों के साथ भ्रमण करती हूँ। मैं ही आदित्यगणों और ' विश्वेदेवों के साथ रहती हूँ। मित्रावरुण, इन्द्र, अग्नि तथा दोनों अश्विनीकुमार सभी को मैं ही धारण करती हूँ ॥१॥

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥२॥

पाषाणों द्वारा पीसे गये सोम, त्वष्टा, पूषा और भग सभी मेरा ही आश्रय ग्रहण करते हैं। मेरे द्वारा ही हविष्यान्नादि उत्तम हवियों से देवों को

परितृप्त करने वाले और सोमरस के अभिषवणकर्ता यजमानों को यज्ञ का अभीष्ट फलरूप धन प्रदान किया जाता है ॥२॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

मैं वाग्देवी जगदीश्वरी और धन प्रदात्री हूँ। मैं ज्ञानवती एवं यज्ञोपयोगी देवों (वस्तुओं) में सर्वोत्तम हूँ । मेरा स्वरूप विभिन्न रूपों में विद्यमान है तथा मेरा आश्रय स्थान विस्तृत है । सभी देव विभिन्न प्रकार से मेरा ही प्रतिपादन करते हैं ॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥

प्राणियों में जो जीवनीशक्ति (प्राण) है, दर्शन क्षमता है, ज्ञान-श्रवण सामर्थ्य है, अन्न भोग करने की सामर्थ्य है, वह सभी मुझ वाग्देवी के सहयोग से ही प्राप्त होती है । जो मेरी सामर्थ्य को नहीं जानते, वे विनष्ट हो जाते हैं । हे बुद्धिमान् मित्रो ! आप ध्यान दें, जो भी मेरे द्वारा कहा जा रहा है, वह श्रद्धा का विषय है ॥४॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥

देवगण और मनुष्यगण श्रद्धापूर्वक जिसका मनन करते हैं, वे सभी विचार सन्देश मेरे द्वारा ही प्रसारित किये जाते हैं। जिसके ऊपर मेरी कृपा-दृष्टि होती है, वे बलशाली स्तोता ऋषि अथवा श्रेष्ठ बुद्धिमान होते हैं ॥५॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

जिस समय रुद्रदेव ब्रह्मद्रोही शत्रुओं का विध्वंस करने के लिए सर्चेष्ट होते हैं, उस समय दुष्टों को पीडित करने वाले रुद्र के धनुष बाण का सन्धान मैं ही करती हूँ । मनुष्यों के हित के लिए मैं ही संग्राम करती हैं। मैं ही द्युलोक और पृथ्वीलोक दोनों को संव्याप्त करती हूँ ॥६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥

जगत् के सर्वोच्च स्थान पर स्थित दिव्यलोक को मैंने ही प्रकट किया है । मेरा उत्पत्ति स्थल विराट् आकाश में अप्(मूल सृष्टि तत्त्व) में है, उसी स्थान से सम्पूर्ण विश्व को संव्याप्त करती हूँ । महान् अन्तरिक्ष को मैं अपनी उन्नत देह से स्पर्श करती हूँ ॥७॥

अहमेव वात इव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥८॥

समस्त लोकों को विनिर्मित करती हुई मैं वायु के समान सभी जगह संचरित होती हूँ। मेरी महिमा स्वर्गलोक और पृथ्वी से भी महान् है ॥८॥

सूक्त १२६

ऋषि: शैलूपि: कुल्मलवाहिर्षो, वामदेव्र्योंऽहोमुग्वा
देवता – विश्वे देवा:। छंद: उपरिष्टाद्वृहती, ८ त्रिष्टुप

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम् ।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ॥१॥

हे देवो ! संयुक्त होकर अर्यमा, मित्र और वरुणदेव विद्वेषियों से बचाकर जिन मनुष्यों को आगे बढ़ाते हैं, वे पापरहित होकर सदैव दुर्गति से दूर रहते हैं ॥१॥

तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः ॥२॥

हे वरुण, मित्र और अर्यमा देवो ! जिस उपाय से आप मनुष्यों को पाप कर्मों से बचाते हैं और शत्रुओं से रक्षा करते हैं, उसके लिए ही हम आपसे प्रार्थना करते हैं ॥२॥

ते नूनं नोऽयमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षण्यति द्विषः ॥३॥

हे मित्र, वरुण और अर्यमा देवो ! आप सुनिश्चित ही हमारा संरक्षण करेंगे । आप हमें सन्मार्ग की ओर प्रेरित करें । हमें संकटों से पार करें और शत्रुओं की पीड़ा से सुरक्षित करें ॥३॥

यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा ।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विषः ॥४॥

वरुण, मित्र और अर्यमादि सभी देवगण सम्पूर्ण विश्व की श्रेष्ठ रीति से सुरक्षा करते हैं । श्रेष्ठ सत्कार योग्य हे देवो ! हम आपके अत्यन्त प्रीतियुक्त, श्रेष्ठ सुखों की छाया में रहें और दुष्ट शत्रुओं से संरक्षित हों ॥४॥

आदित्यासो अति स्रिधो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
उग्रं मरुद्भी रुद्रं हुवेमेन्द्रमग्निं स्वस्तयेऽति द्विषः ॥५॥

अदिति पुत्र वरुण, मित्र और अर्यमा ये सभी देव हमें दुष्ट शत्रुओं से बचाएँ । हम शत्रुओं से परित्राण पाने और कल्याण लाभ हेतु मरुतों के साथ तेजस्वी रुद्र, इन्द्र और अग्निदेव का आवाहन करते हैं ॥५॥

नेतार ऊ षु णस्तिरो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

अति विश्वानि दुरिता राजानश्चर्षणीनामति द्विषः ॥६॥

नेतृत्व क्षमताओं से सम्पन्न वरुण, मित्र और अर्यमा देव हमारे पापकर्मों को दूर करके हमें सुखकारी माग की ओर प्रेरित करें । मनुष्यों के स्वामी ये देव हमें पाप फलों से मुक्त करें और विकाररूपी शत्रुओं से बचाए ॥६॥

शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः ॥७॥

वरुण, मित्र और अर्यमादि देवगणों से जिस सुख की प्राप्ति और संरक्षण के लिए हम प्रार्थना करें, ये अदिति। पुत्र उन सुखों की ओर हमें प्रेरित करें । वे सभी प्रकार का शत्रुनाशक बल हमें प्रदान करें, शत्रुओं से हमें बचाएँ ॥७॥

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्वस्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥८॥

संरक्षक और यज्ञ भाग के अधिकारी हे देवो ! जिस समय शुभ्र वर्ण गौओं के पैरों को बाँधा गया था, तब आपने ही उन्हें बन्धन मुक्त किया था। उसी प्रकार हमें भी पाप कर्मों से विमुक्त करें । हे अग्निदेव ! आप हमें दीर्घायु प्रदान करें ॥८॥

सूक्त १२७

ऋषि: कुशिक: सौभर:, रात्रिर्वा भारद्वाज
देवता – रात्रि: । छंद: गायत्री

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः ।
विश्वा अधि श्रियोऽधित ॥१॥

अनेक भागों में विस्तृत होने वाली आगमन करती हुई नक्षत्ररूप नेत्रों से जगत् का अवलोकन करने वाली रात्रिदेवी सभी प्रकार के सौन्दर्य को धारण करती हैं ॥१॥

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्युद्वतः ।
ज्योतिषा बाधते तमः ॥२॥

अविनाशी रात्रि देवी सर्वप्रथम अन्तरिक्ष को तत्पश्चात् नीचे और ऊँचे प्रदेशों को आच्छादित करती हैं। वे गृह-नक्षत्रादि रूप तेजस्विता से अन्धकार को निवृत्त करती हैं ॥२॥

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती ।
अपेदु हासते तमः ॥३॥

आगमन करने वाली रात्रिदेवी भगिनी उषा को प्रतिष्ठित करती हैं। वे (उषा) अन्धकार को विनष्ट करती हैं।॥३॥

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि ।
वृक्षे न वसतिं वयः ॥४॥

जैसे पक्षी वृक्षों पर रहते हैं, वैसे ही जिसके आगमन पर हम घर में विश्राम करते हैं, वे रात्रिदेवी हमारे लिए कल्याणप्रद हों ॥४॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिणः ।
नि श्येनासश्चिदर्थिनः ॥५॥

रात्रि में समस्त ग्रामीण मनुष्य सुखपूर्वक सोते हैं, पादचारी, गौ, अश्वादि पशु-पक्षी और शीघ्रगामी श्येन आदि पक्षी शान्त होकर सोते हैं ॥५॥

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये ।
अथा नः सुतरा भव ॥६॥

हे निशादेवि ! वृक और वृकी को हमसे पृथक् करें , चोरों को भी हमसे दूर ले जाएँ । हमारे लिए आप सभी प्रकार से कल्याणप्रद हों ॥६॥

उप मा पेपिशत्तमः कृष्णं व्यक्तमस्थित ।
उष ऋणेव यातय ॥७॥

रात्रि का अन्धकार स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है । हे उषा देवि ! जिस प्रकार आप स्तोताओं के ऋण को धन प्रदान करके विनष्ट करती हैं, वैसे ही इस अन्धकार को भी नष्ट करें ॥७॥

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः ।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे ॥८॥

हे आकाश कन्या (रात्रि) ! हम आपको दुधारू गौ के समान स्तोत्रों का गान करते हुए प्राप्त करें । आप विनम्र होकर स्तोत्रों के समान ही हवि को भी ग्रहण करें ॥८॥

सूक्त १२८

ऋषि: विहव्य अंगिरस:
देवता – विश्वे देवा । छंद: त्रिष्टुप, ९ जगती

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम ॥१॥

हे अग्निदेव ! संग्रामों या यज्ञों के समय हममें तेजस्विता जाग्रत् हो । आपको समिधाओं से प्रज्वलित करते हुए हम अपनी देह को परिपुष्ट करते हैं। हमारे लिए चारों दिशाएँ अवनत हों । आपक़ो स्वामी रूप में प्राप्त करके हम शत्रु सेनाओं पर विजय प्राप्त करें ॥१॥

मम देवा विहवे सन्तु सर्व इन्द्रवन्तो मरुतो विष्णुरग्निः ।
ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु मह्यं वातः पवतां कामे अस्मिन् ॥२॥

इन्द्रदेव के साथ मरुद्गण, विष्णु और अग्नि आदि सभी युद्धकाल में हमारा सहयोग करें। अन्तरिक्ष के समान विस्तृत लोक हमारे लिए

प्रकाशमान हों। हमारे इन अभिलषित कार्यों में वायु अनुकूल होकर प्रवाहित हों।॥२॥

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।
दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥३॥

श्रेष्ठ यज्ञादि कार्यों से प्रसन्न होकर सभी देवगण हमें ऐश्वर्य प्रदान करें। हम देव शक्तियों का आवाहन करें। प्राचीनकाल में जिन्होंने देवों को आहुति समर्पित किया है, वे होतागण अनुकूल होकर देवों की अर्चना करें। हम शारीरिक दृष्टि से सुदृढ़ होकर वीर सुसन्ततियों से युक्त हों ॥३॥

मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।
एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ॥४॥

ऋत्विग्गण हमारी चरु पुरोडाशादि यज्ञ सामग्री को आहुतियों के रूप में देवताओं को समर्पित करें। हमारे मन के संकल्प पूर्ण हों। हम किसी भी पाप में संलिप्त न हों। हे विश्वेदेवो ! आप हमें आशीर्वचनं प्रदान करें ॥४॥

देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम् ।
मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥५॥

हे षट देवियो ! (षटसम्पत्तियो) आप हमें प्रचर धन और बल प्रदान करें । हे देवो ! आप धनादि प्राप्ति के लिए पराक्रम करें, जिससे हमें ऐश्वर्य प्राप्त हो । हमारी सन्तति और शरीरों का अनिष्ट न हो । हे प्रकाशवान् सोम ! हम विद्वेषी शत्रुओं से कभी परास्त न हों ॥५॥

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।
प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्तेऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥६॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे शत्रुओं के क्रोधित स्वभाव को दबाते हुए दर्द्धर्ष होकर हमारी सभी प्रकार से सुरक्षा करें । वे भयभीत होकर निरर्थक बातें करने वाले शत्रु पराङ्मुख होकर लौट जाएँ। इन शत्रओं के मन-मस्तिष्क भ्रमित हो जाएँ ॥६॥

धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं त्रातारमभिमातिषाहम् ।
इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ॥७॥

जो निर्माता के भी स्रष्टा हैं, जो सम्पूर्ण विश्व के अधिपति हैं, उन सर्वप्रेरक, पालनकर्ता और अहंकारी शत्रुओं के विजेता इन्द्रदेव की हम प्रार्थना करते हैं। अश्विनीकुमार, बृहस्पति और सभी प्रमुख देव इस यज्ञ का संरक्षण करें तथा यजमान को पापों से बचाएँ ॥७॥

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन्हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृळयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८॥

सर्वव्यापक, पूजनीय, अनेक यजमानों के द्वारा बुलाये जाने वाले, विभिन्न स्थानों में वास करने वाले इन्द्रदेव इस यज्ञ में पधारकर हमें सुख प्रदान करें । हे हरित अश्वों के स्वामी इन्द्रदेव ! आप हमारी सन्ततियों को सुखी करें । हमारे प्रतिकूल न होकर हमें अनिष्टों से बचाएँ ॥८॥

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥९॥

जो हमारे शत्रु हैं, वे पराभूत हों । हम उन्हें इन्द्राग्नि की सामर्थ्य से विनष्ट करते हैं । वसुगण, रुद्रगण और आदित्यगण ये सभी हमें ऊँचे पदों पर आसीन करके पराक्रमी, ज्ञान सम्पन्न तथा सबके अधिपति बनाएँ । ॥९॥

सूक्त १२९

ऋषि: प्रजापति: परमेष्ठी
देवता – भाव वृत्तम । छंद: त्रिष्टुप

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

प्रलयकाल में पंचभूतादि सृष्टि का अस्तित्व नहीं था और न अभावग्रस्त असत् सृष्टि का अस्तित्व था। उस समय भूलोक, आकाश तथा आकाशादि से परे अन्य लोक नहीं थे। सबको आच्छादित करने वाले (बापट) भी नहीं थे। किसका स्थान कहाँ था? अगाध और गम्भीर जल का भी अस्तित्व उस समय कहाँ था ? ॥१॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥२॥

उस समय न मृत्यु थी, न अमरता का अस्तित्व था, (सूर्य-चन्द्र के अभाव से) दिन-रात्रि का ज्ञान भी नहीं था। प्राण वायु भी नहीं थी।

एक मात्र ब्रह्म का अस्तित्व विद्यमान था। अन्य किसी भी वस्तु का अस्तित्व उस समय नहीं था ॥२॥

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥३॥

सृष्टि से पूर्व प्रलयकाल में सम्पूर्ण विश्व मायावी अज्ञान (अन्धकार) से ग्रस्त था, सभी अव्यक्त और सर्वत्र एक ही प्रवाह था। उस समय जो कुछ था, वह चारों ओर से सत्-असत् तत्त्व से आच्छादित था । वही एकअविनाशी तत्त्व तपश्चर्या के प्रभाव से उत्पन्न हुआ ॥३॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

सर्वप्रथम परब्रह्म-परमात्मा के मन में विराट् सृष्टि को उत्पन्न करने की इच्छा शक्ति प्रकट हुई। तत्पश्चात् उस मन से सबसे पहले उत्पत्ति का कारण (बीज-सृजन सामर्थ्य) उत्पन्न हुआ। मेधावी ज्ञानीजनों ने विवेक, बुद्धि द्वारा हृदय में विचार करके व्यक्त न होने वाले असत् से व्यक्त होने वाले सत् तत्त्व के उत्पत्ति स्थान निरूपित किये ॥४॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

इस प्रकार बीज (सृजन सामर्थ्य) को धारण करने वाले देवों का प्रकाश तिरछा होकर नीचे और ऊपर की ओर विस्तीर्ण हुआ। अपनी महिमा से देवों ने जल को प्रेरित किया । स्वधा भोग्य का स्थान नीचे तथा प्रयति का स्थान ऊपर की ओर स्थिर हुआ । ॥५॥

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥

कौन मनुष्य जानता है और कौन यह कह सकता है कि यह सृष्टि कहाँ से और किस प्रकार (कारण) उत्पन्न हुई? क्योंकि विद्वान् लोग भी इस सृष्टि के उत्पन्न होने के बाद ही पैदा हुए । इसलिए यह जो सृष्टि उत्पन्न हुई, उसे ठीक-ठीक बताने में कौन समर्थ है? ॥६॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

इस सृष्टि का उत्पादन कहाँ से हुआ, किसने रचना की और किसने नहीं की, ये सभी वही एक मात्र परमेश्वर ही जानते हैं? जो इस परमधाम में रहते हुए इस सृष्टि के अध्यक्ष हैं । सम्भव है, वे भी इस सम्बन्ध में पूर्णतया न जानते हों ॥७॥

सूक्त १३०

ऋषिः यज्ञः प्राजापत्यः प्रजापतिः परमेष्ठी
देवता – भाववृत्तम । छंदः त्रिष्टुप , २ जगती

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥१॥

यह सृष्टि यज्ञमय है । इस सृष्टि यज्ञ में पंचभूत रूपी वस्त्रों को बुना जाता है । यह चिरकाल तक रहने वाली सृष्टि देवों के दिव्य कर्मों से स्थिर रहती है । इस सृष्टि यज्ञ में पितृगण कपड़े को बुनते हुए, अनेक प्रकार के उत्कृष्टं और निकृष्ट वस्त्रों या पदार्थों की रचना करते हैं ॥१॥

पुमाँ एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान्वि तत्ने अधि नाके अस्मिन् ।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥२॥

प्रजापति परमेश्वर ही इस सृष्टि के उत्पादक और संहारक हैं । वे ही पुरुष अपनी सामर्थ्य से इस सृष्टि का विस्तार करते हैं। इस यज्ञस्थली

में परमात्मा की किरण रूपी शक्तियाँ निवास करती हैं तथा अनेक प्रकार के सामरूपी सुखों को पैदा करती हैं ॥२॥

कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीत्प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

जब सम्पूर्ण देव शक्तियों ने यज्ञ सम्पन्न किया, तब उसकी सीमा क्या थी ?प्रतिमा कौन सी थी ? उनके संकल्प क्या थे? प्रमाण क्या थे? छन्द और उक्थ क्या थे ? ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान्बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४॥

अग्निदेव गायत्री छन्द के सहायक हुए और उष्णिक् के सहायक सविता हुए। सोम अनुष्टुप् छन्द के तथा उक्थों के साथ तेजस्वी सूर्य जुड़े तथा बृहती छन्द ने बृहस्पति की वाणी का आश्रय ग्रहण किया ॥४॥

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।
विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ॥५॥

विराट् छन्द मित्रावरुण देवों के आश्रित हुए और त्रिष्टुप् छन्द इस यज्ञ में इन्द्र और दिन के भाग बने । जगती छन्द ने अन्य देवों का

आश्रय लिया । इस यज्ञ से सम्पूर्ण ऋषि और मनुष्य सामर्थ्यशाली बने । ॥५॥

चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे ।
पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥६॥

प्राचीन काल में इस सृष्टि यज्ञ के प्रकट होने पर हमारे पूर्वज ऋषियों और मनुष्यों ने उपरोक्त नियमानुसार यज्ञानुष्ठान का सम्पादन किया । जिन्होंने प्राचीन समय में यज्ञ सम्पन्न किया, हम अनुभव करते हैं कि उन्हें अपने मन: चक्षु से हम देख रहे हैं ॥६॥

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥७॥

धैर्यवान् सात दिव्य ऋषियों ने स्तोत्रों और छन्दों का संग्रह करके बार-बार यज्ञानुष्ठान किये और यज्ञ की विद्या को स्थायित्व प्रदान किया। जिस प्रकार सारथी घोड़े की लगाम हाथ में थामते हैं, उसी प्रकार मेधावी. (तत्त्वदर्शी) ऋषियों ने पूर्वजों की परम्पराओं के प्रति प्रखर दृष्टि रखते हुए यज्ञानुष्ठान सम्पन्न किये ॥७॥

सूक्त १३१

ऋषि: सुकीर्ति: काक्षी वत:
देवता – भाववृत्तम । इन्द्र , ४-५ आश्विनौ । छंद त्रिष्टुप, ४ अनुष्टुप

अप प्राच इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन्मदेम ॥१॥

शत्रुओं के पराभूतकर्ता हे इन्द्रदेव ! आप हमारे समक्ष आने वाले सभी शत्रुओं को दूर करें, पीछे से आने वाले, उत्तर तथा दक्षिण से आने वाले शत्रुओं को दूर हटाएँ। हम आपके समीप सुखपूर्वक निवास कर सकें ॥१॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! जिस प्रकार जौ की खेती करने वाले कृषक जौ को बार-बार काटते हैं, उसी प्रकार देवताओं के प्रिय आप दुष्टों का दमन करके श्रेष्ठजनों को पोषण प्रदान कर उनकी रक्षा करें ॥२॥

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे संगमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥३॥

एक चक्रवाली गाड़ी कभी भी निर्धारित समय पर उपयुक्त स्थान पर नहीं पहुँचती । युद्धकाल में भी उससे अन्नलाभ नहीं हो सकता । अतएव हम गौ, वृषभ, अश्व, अन्न तथा बल की कामना करते हुए वृष्टिवर्षक इन्द्रदेव की मित्रता के लिए उनका भी आवाहन करते हैं ॥३॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥४॥

हे अश्विनीकुमारो ! नमुचि नामक असुर के अधिकार में स्थित श्रेष्ठ मधुर सोमरस भली प्रकार प्राप्त करके उसका पान करते हुए, आप दोनों ने शुभ कर्मों के पालक इन्द्रदेव की रक्षा की ॥४॥

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! राक्षसों के संसर्ग से अशुद्ध सोम का पान कर (स्वयं को संकट में डालकर) अश्विनीकुमारों ने आपकी रक्षा उसी प्रकार की, जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है। आपने नमुचि का बध करके जब

प्रसन्नता प्रदान करने वाले सोम का पान किया, तब देवी सरस्वती भी आपके अनुकूल हुईं ॥५॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥६॥

भली प्रकार से संरक्षण प्रदान करने वाले सामर्थ्य से युक्त वे इन्द्रदेव हमें संरक्षण प्रदान करें। वे सर्वज्ञ परमेश्वर हमारे शत्रुओं के संहारक हों । हममें निर्भीकता स्थापित करें, जिससे हम उत्तम बलों के स्वामी बनें ॥६॥

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद्द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥७॥

यज्ञीय पुरुष की श्रेष्ठ बुद्धि में हम वास करें । कल्याणकारी श्रेष्ठ मन से भी हम सम्पन्न हों । श्रेष्ठ संरक्षक और ऐश्वर्यवान् वे इन्द्रदेव हमारे समीपस्थ और दूर छिपे हुए सभी शत्रुओं को सदा के लिए दूर करें ॥७॥

सूक्त १३२

ऋषि: शकपूतो नारमेध
देवता – मित्रावरुण, १ द्युभूम्यश्विन । छंद – विराड रूपा, १ न्यंगकुसारिणी, २, ६ प्रस्तार पंक्ति, ७ महासतोवृहती।

ईजानमिद्द्यौर्गूर्तावसुरीजानं भूमिरभि प्रभूषणि ।
ईजानं देवावश्विनावभि सुम्नैरवर्धताम् ॥१॥

जो स्तोता यज्ञादि कर्म सम्पन्न करते हैं, आकाश और पृथ्वी उन्हें ही श्रेष्ठ अलंकारादि से श्री सम्पन्न करते हैं। दोनों अश्विनीकुमार भी यज्ञकर्ता मनुष्यों को नाना प्रकार के सुख साधनों से परिपूर्ण करते हैं ॥१॥

ता वां मित्रावरुणा धारयत्क्षिती सुषुम्नेषितत्वता यजामसि ।
युवोः क्राणाय सख्यैरभि ष्याम रक्षसः ॥२॥

हे मित्र और वरुण देवो ! पृथ्वी के धारणकर्ता आप दोनों श्रेष्ठ सुख-साधनों के अधिकारी हैं। सुख-साधनों की प्राप्ति के लिए हम हविष्यान्न समर्पित करके आप दोनों की अर्चना करते हैं । यजमानों

के कल्याण के लिए आप दोनों के सहयोग से आसुरी शक्तियों को पराभूत करें ॥२॥

अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे वामभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः ।
दद्वाँ वा यत्पुष्यति रेक्णः सम्वारन्नकिरस्य मघानि ॥३॥

हे मित्र और वरुण देवो ! जिस समय हम यज्ञ सामग्री को स्तुति मंत्रों के साथ आपके निमित्त प्रस्तुत करते हैं। उस समय शीघ्र ही प्रिय धन को उपलब्ध करते हैं। हवि प्रदाता यजमान जिस धन को प्राप्त करते हैं, उसे कोई भी नष्ट करने में समर्थ नहीं है ॥३॥

असावन्यो असुर सूयत द्यौस्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ।
मूर्धा रथस्य चाकन्नैतावतैनसान्तकध्रुक् ॥४॥

हे प्राणदाता मित्रदेव ! आकाश में प्रकाशित सूर्यदेव आपसे पृथक् नहीं हैं । हे वरुणदेव ! आप सम्पूर्ण विश्व के अधिपति हैं। आपके रथ का शिखर हमारे यज्ञ की ओर उन्मुख है । हिंसकों के संहारक इस यज्ञ का कोई अनिष्ट नहीं हो सकता ॥४॥

अस्मिन्त्स्वेतच्छकपूत एनो हिते मित्रे निगतान्हन्ति वीरान् ।
अवोर्वा यद्धात्तनूष्ववः प्रियासु यज्ञियास्वर्वा ॥५॥

मझ (शकपत) में विद्यमान पाप भी कल्याणकारी होकर तथा मित्रदेव की अनुकूलता पाकर आक्रांता दष्ट रिपुओं के विनाश के

कारण ही बनते हैं । मित्रदेव आगमन करके हमारे शरीर को संरक्षण-प्रदान करें तथा यज्ञ में प्रयुक्त.संसाधनों को संरक्षित करें ॥५॥

युवोर्हि मातादितिर्विचेतसा द्यौर्न भूमिः पयसा पुपूतनि ।
अव प्रिया दिदिष्टन सूरो निनिक्त रश्मिभिः ॥६॥

विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न हे मित्र और वरुणदेव ! आपकी जननी माता अदिति हैं । दयुलोक के तुल्य यह धरती भी अन्न-जल से परिष्कृत करने वाली है। आप हमें प्रीतियुक्त धन प्रदान करें तथा सूर्य की रश्मियों से सम्पूर्ण विश्व को परिपुष्ट करें ॥६॥

युवं ह्यप्नराजावसीदतं तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम् ।
ता नः कणूकयन्तीर्नृमेधस्तत्रे अंहसः सुमेधस्तत्रे अंहसः ॥७॥

हे मित्र और वरुणदेव ! आप अपने सत्कर्मों से प्रकाशमान होकर स्व स्थान पर प्रतिष्ठित होते हैं । उपद्रव करने वाले इन शत्रुओं को पराभूत करने के लिए आप दोनों वन में विहार करने वाले रथ पर प्रतिष्ठित हों। आपने प्रिय नृमेध और सुमेध (नामक ऋषियों अथवा यज्ञों) को विकारों से बचाया है ॥७॥

सूक्त १३३

ऋषि: सुदा: पैजवन:
देवता – इन्द्र । छंद – शक्वरी, ४-६ महा पंक्ति, ७ त्रिष्टुप

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत ।
अभीके चिदु लोककृत्संगे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥

हे स्तोताओ ! इन इन्द्रदेव के रथ के सम्मुख रहने वाले बल की उपासना करो । शत्रु-सेना के आक्रमण के अवसर पर ये लोकपालक और शत्रुनाशक इन्द्रदेव ही प्रेरणा के आधार हैं, यह निश्चित जाने । शत्रुओं के धनुष की प्रत्यंचा टूट जाए, यह कामना करते हैं ॥१॥

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप नदियों के प्रवाहों में आए अवरोधों को तोड़ते हैं एवं मेघों को फोड़ते हैं। शत्रु विहीन हुए आप सब वरणीय पदार्थों के

पोषक हैं । हम आपको हविष्यान्न देकर हर्षित करते हैं । शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा टूटे, ऐसी कामना करते हैं ॥२॥

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।
अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

हम पर आक्रमण करने वाले शत्रु विनष्ट हो जाएँ । हे इन्द्रदेव हम पर घात करने वाले जघन्य दुष्टों को आप अपने शस्त्रों से मारते हैं। हमारी बुद्धि आपकी ओर प्रेरित हो । आपके धन आदि के दान हमें प्राप्त हों । हमारे शत्रुओं के धनुष की प्रत्यञ्चा टूट जाए ऐसी कामना करते हैं ॥३॥

यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति ।
अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहिर्नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! भेड़ियों के समान हिंसक प्रवृत्ति के उन दुष्ट मनुष्यों को आप पददलित करें, जो शस्त्रादि से युक्त हमारे चारों ओर घूमते रहते हैं। दूसरे सभी शत्रुओं की प्रत्यञ्चाओं को आप छिन्न-भिन्न कर दें, ऐसी कामना है ॥४॥

यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! निकृष्ट स्वभाव वाले अनिष्टकारी शत्रओं के पराक्रम को आप वैसे ही विनष्ट करें, जैसे महान् लोक समस्त पदार्थों को अपने से नीचे देखता है । शत्रुओं के धनुषों पर चढ़ाई गई प्रत्यञ्चाए विनष्ट हों॥५॥

वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रभामहे ।
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! हम आपके अनुगामी बनकर आपके प्रति मित्रभाव को परिपोषित करते हैं। आप हमें यज्ञीय सन्मार्ग की ओर प्रेरित करते हुए सभी पापों और उनके दु:खदायी दुष्परिणामों से पार करें। दूसरे शत्रुओं की धनुष की प्रत्यञ्चाएँ छिन्न-भिन्न हो जाएँ ॥६॥

अस्मभ्यं सु त्वमिन्द्र तां शिक्ष या दोहते प्रति वरं जरित्रे ।
अच्छिद्रोध्नी पीपयद्यथा नः सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥७॥

हे इन्द्रदेव ! आप हम स्तोताओं को ऐसी प्रेरणा प्रदान करें, जिससे हमारे सभी अभीष्ट मनोरथों की पूर्ति हो । पृथिवी स्वरूपा यह गौ विशाल स्तनयुक्त होकर सहस्र धाराओं से पोषक रस(दूध) देकर हमें परिपुष्ट करे ।॥७॥

ऋग्वेद – दशम मंडल

सूक्त १३४

ऋषि: मान्धाता यौवनाश्व; गोधा ऋषिका
देवता – इन्द्र । छंद – महा पंक्ति, ७ पंक्ति

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषा इव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१॥

तेजस्विनी उषा के समान द्युलोक और पृथ्वी लोक को प्रकाश से पूर्ण करने वाले प्राणियों के स्वामी हे महान्इन्द्रदेव ! आपको कल्याण करने वाली देवमाता अदिति ने जन्म दिया है । ॥१॥

अव स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! जो हमें परतंत्र करने वाले हैं, उन दुष्कर्मी शत्रुओं को पैरों तले कुचल दें। आपको अदिति माता ने उत्पन्न किया है, कल्याण करने वाली वे माता श्रेष्ठ ॥२॥

अव त्या बृहतीरिषो विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन् ।
शचीभिः शक्र धूनुहीन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥३॥

शत्रओं का हनन करने वाले, सामर्थ्यशाली हे इन्द्रदेव ! आप अपनी सामर्थ्य और कर्मों से सबको आह्लादित करने वाले हैं। आप विपुल अन्न भण्डार को हमारी ओर प्रेरित करें तथा सभी प्रकार से हमारा संरक्षण करें । कल्याणकारिणी श्रेष्ठ माता ने आपको जन्म दिया है ॥३॥

अव यत्त्वं शतक्रतविन्द्र विश्वानि धूनुषे ।
रयिं न सुन्वते सचा सहस्रिणीभिरूतिभिर्देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥४॥

हे शतक्रतु ! आप सभी प्रकार के अन्न-धन को लोक हित के लिए प्रस्तुत करते हैं। सोम अभिषवकर्ता यजमान को हजारों प्रकार की सम्पदा, सुसन्तति और संरक्षण प्रदान करते हैं। कल्याणकारिणी श्रेष्ठ माता ने आपको जन्म दिया है ॥४॥

अव स्वेदा इवाभितो विष्वक्पतन्तु दिद्यवः ।
दूर्वाया इव तन्तवो व्यस्मदेतु दुर्मतिर्देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥५॥

इन्द्रदेव के वज्रास्त्र स्वेदकणों के समान चारों ओर संरक्षण हेतु प्रस्तुत हों । दूर्वा के विस्तार के समान उनके आयुध सर्वव्यापी हों । दुर्बुद्धिग्रस्त शत्रु हमसे दूर हों । कल्याणकारी श्रेष्ठ माता ने आपको जन्म दिया है ॥५॥

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन्पदाजो वयां यथा यमो देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥६॥

हे ज्ञानवान् इन्द्रदेव ! महान् अंकुश के समान आप शक्ति को धारण करते हैं। हे इन्द्रदेव ! अज (अव्यक्त) से उत्पन्न पूर्व पदों (चरणों) की भाँति आप भी अपनी सामर्थ्य से सबको वश में करते हैं । आपको कल्याणमयी श्रेष्ठ माता अदिति ने उत्पन्न किया है ॥६॥

नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे ॥७॥

हे देवो ! हम याजकगण कोई धर्म विहीन अमर्यादित कर्म नहीं करते हैं। हम किसी को कोई हानि नहीं पहुँचाते हैं । हाथ में हवन सामग्री लेकर हम यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को सम्पन्न करते हैं ॥७॥

सूक्त १३५

ऋषि: कुमारो यामायन:
देवता – यम। छंद – अनुष्टुप

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः सम्पिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ॥१॥

सुन्दर पत्रों से सुशोभित जिस वृक्ष पर देवताओं के साथ यमदेव सोमपान करते हैं। हमारे पिता प्रजापति की अभिलाषा है कि मैं भी उसी वृक्ष पर जाकर पूर्वजों का सहायक बनू ॥१॥

पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया ।
असूयन्नभ्यचाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः ॥२॥

जब प्रजापति पिता ने पूर्व पुरुषों का सहायक' बनने की इच्छा प्रकट की, तब मैंने निष्ठुरतापूर्वक उनकी इस अभिलाषा के प्रति विरक्ति प्रकट की, पुन: मेरे अन्दर उनके प्रति श्रद्धा-भाव जाग्रत् हुआ है ॥२॥

यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसाकृणोः ।
एकेषं विश्वतः प्राञ्चमपश्यन्नधि तिष्ठसि ॥३॥

(यमदेव का कथन) हे कुमार नचिकेता ! आपने ऐसे अभिनव रथ की मुझसे इच्छा की थी, जो चक्ररहित हो, जिसकी ईषा (दण्ड) एक ही हो तथा जो सर्वत्र गमनशील हो. सोच-विचार किए बिना ही आप उस रथ पर आरूढ़ हो गए ॥३॥

यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि ।
तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम् ॥४॥

हे कुमार (नचिकेता) ! बुद्धिमान् सगे-सम्बन्धियों को त्यागकर जिस रथ को आप ले जा रहे हैं, वह आपके पिता के सान्त्वनापूर्ण ज्ञानोपदेश से चलने वाला है। वही उपदेश रथ के लिए नौकारूपी आश्रय है, उसी नौका पर आरूढ़ होकर इस रथ ने यहाँ से प्रस्थान किया ॥४॥

कः कुमारमजनयद्रथं को निरवर्तयत् ।
कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथाभवत् ॥५॥

इस बालक(नचिकेता) के जन्मदाता कौन हैं ? किसने इस रथ को भेजा है, जिससे यह बालक जीव-जगत् । से यहाँ पहुँचा है? इस बात को आज हमसे कौन कह सकेगा? ॥५॥

यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत ।
पुरस्ताद्बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम् ॥६॥

जिससे यह बालक यम द्वारा भूलोक में पिता को सौंपा जायेगा, यह बात तो पहले ही बताई जा चुकी है। सर्वप्रथम पिता के कथन का मूल भाग कहा गया, तत्पश्चात् वापस लौटाने का उपाय बताया गया ॥६॥

इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।
इयमस्य धम्यते नाळीरयं गीर्भिः परिष्कृतः ॥७॥

जो देवताओं द्वारा विनिर्मित हुआ है, लोगों का ऐसा कथन (किम्वदन्ती) है कि यही नियन्ता यमदेव का आश्रय स्थल (निवास स्थान) है । यह वेणु नामक वाद्य यमदेव की सन्तुष्टि के लिए बजाया जाता है । स्तुति मंत्रों से उन्हें सुशोभित किया जाता है ॥७॥

सूक्त १३६

ऋषि: जूति, वातजूति, विपरजूति, वृषाणक: करिक्रत:, एतश:, ऋष्यश्रृंग
देवता – केशिन:- अग्नि, सूर्य, वायु । छंद – अनुष्टुप

केश्यग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते ॥१॥

रश्मियों से प्रकाशमान सूर्यदेव अग्नि, जल और द्यावा-पृथिवी को धारण करते हैं । सूर्य ही सम्पूर्ण विश्व को प्रकाश दर्शन योग्य बनाते हैं। इस (सूर्य) ज्योति को ही केशी नाम से पुकारा जाता है ॥१॥

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत ॥२॥

वातरसन के वंशज मनीषी लोग पीतवर्ण के वस्त्रों को धारण करते हुए तप करते हैं। देवत्व धारण करने की स्थिति में वे वायु की गति का अनुगमन करते हैं ॥२॥

उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम् ।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ ॥३॥

सभी सांसारिक व्यवहारों से निवृत्त होकर मुनिवृत्ति (परमहंस अवस्था) को धारण करके परम आनन्दमग्न होकर हम वायु भूत (सूक्ष्मरूप) हो गये हैं। हे मनुष्यो ! हमारे स्थूल शरीर को ही आप देखने में समर्थ हैं ॥३॥

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।
मुनिर्देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः ॥४॥

मुनिगण अन्तरिक्ष मार्ग से आ जा सकते हैं। वे सभी पदार्थों को अपने तेज (दिव्य दृष्टि से देख सकते हैं। जहाँ जितनी भी देवशक्तियाँ हैं, वे आपस में मित्रभाव से युक्त हैं, वे सभी सत्कर्मों के लिए ही प्रतिष्ठित होती हैं ॥४॥

वातस्याश्वो वायोः सखाथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ॥५॥

मुनिगण वायु मार्ग में भ्रमण के लिए अश्वरूप (शक्तिरूप) को धारण करते हैं। वे वायु के सखारूप हैं। देवगण उन्हें प्राप्त करने की कामना करते हैं। वे पूर्व और पश्चिम के दोनों समुद्रों में निवास करते हैं ॥५॥

अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।
केशी केतस्य विद्वान्त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ॥६॥

सूर्यदेव अप्सराओं, गंधर्वो और अन्य मृगादि के स्थानों में संचार करते हैं। तेजस्वी सूर्यदेव सभी ज्ञातव्य विषयों के ज्ञाता, रस के उत्पादक और आनन्ददाता हैं ॥६॥

वायुरस्मा उपामन्थत्पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।
केशी विषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणापिबत्सह ॥७॥

जिस समय केशी (सूर्य) रुद्र के साथ जल पात्र से जल-पान करते हैं, उस समय वायुदेव उन्हें प्रकम्पित करते हैं तथा कठिन माध्यमिका वाणी को भंग कर देते हैं ॥७॥

सूक्त १३७

ऋषिः भारद्वाज, कश्यप, गौतम, अत्रि , विश्वामित्र , जमदग्नि, वसिष्ठ
देवता – विश्वे देवा । छंद – अनुष्टुप

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१॥

हे देवगण ! हम पतितों को बार-बार ऊपर उठाएँ । हे देवो ! हम अपराधियों के अपराध-कर्मों का निवारण करें । हे देवो ! हमारा संरक्षण करते हुए आप हमें दीर्घायु बनाएँ ॥१॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ॥२॥

ये दो वायु, एक समुद्र पर्यन्त और दूसरे समुद्र से दूरस्थ प्रवाहित होते हैं। उन दोनों में से एक तो आपको (स्तोता को) बल प्रदान करें और दूसरे आपके पापों को विनष्ट करें ॥२॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥३॥

हे वायुदेव ! आप व्याधियों का निवारण करने वाली कल्याणकारी ओषधि को लेकर आएँ। जो अहितकर पाप (मल) है, उन्हें यहाँ से बहाकर ले जाएँ। आप संसार के लिए ओषधिरूप, कल्याणकारी, देवदूत बनकर सर्वत्र संचार करते हैं ॥३॥

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥४॥

हे स्तोताओ ! आपके लिए सुखशान्ति प्रदायक और अहिंसक संरक्षण साधनों के साथ हमारा आगमन हुआआपके लिए मंगलमय शक्तियों को भी हमने धारण किया है । अस्तु , इस समय तुम्हारे सम्पूर्ण रागा की निवारण करता हूँ ॥४॥

त्रायन्तामिह देवास्त्रायतां मरुतां गणः ।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥५॥

इस लोक में समस्त देवगण हमें संरक्षण प्रदान करें । मरुद्गण और समस्त प्राणी हमारी रक्षा करें । वे हमारे शरीर के रोगों और पापों का निवारण करें ॥५॥

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥६॥

जल सम्पूर्ण रोगों का निवारक है । जल ही रोगों के कारण (मूल) का नाश करने वाला है । जल ही सबके लिए हितकारी ओषधिरूप है, वह ही आपके निमित्त रोगनाशक है ॥६॥

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोप स्पृशामसि ॥७॥

मन्त्रोच्चारण करते समय जैसे वाणी के साथ जिह्वा गति करती है, वैसे ही दस अँगुलियों वाले दोनों हाथों से आपका स्पर्श करते हुए रोगों से मुक्त करते हैं ॥७॥

सूक्त १३८

ऋषि: अंग औरव:
देवता – इन्द्र । छंद – जगती

तव त्य इन्द्र सख्येषु वह्नय ऋतं मन्वाना व्यदर्दिरुर्वलम् ।
यत्रा दशस्यन्नुषसो रिणन्नपः कुत्साय मन्मन्नह्यश्च दंसयः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! आपकी मित्रता में रहने वाले यज्ञकर्ताओं ने हवन सामग्री समर्पित करते हुए यज्ञ सम्पन्न करके बल नामक असुर का संहार किया। उस समय आपके लिए स्तोत्रों का गान किया गया । तब आपने कुत्स ऋषि को प्रभातकालीन आलोक का दर्शन कराया। आपने जल को विमुक्त किया और वृत्रासुर के समस्त कर्मों को विनष्ट किया ॥१॥

अवासृजः प्रस्वः श्वञ्चयो गिरीनुदाज उस्रा अपिबो मधु प्रियम् ।
अवर्धयो वनिनो अस्य दंससा शुशोच सूर्य ऋतजातया गिरा ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जल का निर्माण किया और पर्वतों (मेघों) को विचलित करके उसे प्रवाहित किया। आपने बलासूर के द्वारा अपहृत गौओं को मुक्त किया। आपने मधुर सोमरस का पान करके वन के वृक्षों को वष्टि द्वारा सम्वर्द्धित किया। यज्ञ में उत्तम मंत्रों द्वारा आपकी स्तुति की गई । हे इन्द्रदेव ! आपके श्रेष्ठकर्मों के प्रभाव से सूर्यदेव ने तेजस्विता को धारण किया ॥२॥

वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः ।
दृव्ळ्हानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवाँ ऋजिश्वना ॥३॥

द्युलोक में सूर्यदेव ने अपने रथ को आगे बढ़ाया । श्रेष्ठ इन्द्रदेव ने दासों को पराभूत किया। इन्द्रदेव ने ऋजिश्वा के साथ मित्रता करके पिपु नामक मायावी असुरों के पराक्रम को विनष्ट किया ॥३॥

अनाधृष्टानि धृषितो व्यास्यन्निधीँरदेवाँ अमृणदयास्यः ।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमा ददे गृणानः शत्रूँरशृणाद्विरुक्मता ॥४॥

पराक्रमी इन्द्रदेव ने अपराजेय शत्रु सैनिकों का विनाश कर डाला । अयास्य ऋषि द्वारा स्तुत इन्द्रदेव ने शक्तिशाली देव विद्रोही राक्षसों को विनष्ट किया । जैसे सूर्यदेव भूमि से रस (जल) प्राप्त करते हैं, वैसे ही इन्द्रदेव शत्रुओं की नगरियों से धन को ग्रहण करते हैं। स्तुतियों

को ग्रहण करते हुए उन्होंने तेजस्वी वज्र से शत्रुओं का विध्वंश किया ॥४॥

अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते ।
इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ॥५॥

इन्द्रदेव की सेना के साथ कोई भी युद्ध करने में समर्थ नहीं है । वे सर्वज्ञ गतिशील और शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले वज्र से वृत्र का संहार करते हैं। विदारक वज्र से जब शत्रुपक्ष भयभीत होता है, तब सूर्यदेव विश्व को प्रकाशित करते हैं और देवी उषा अपने रथ को आगे बढ़ाती हैं ॥५॥

एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम् ।
मासां विधानमदधा अधि द्यवि त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं पिता ॥६॥

हे इन्द्रदेव ! ये पराक्रमी कार्य आपके द्वारा ही सम्पन्न हुए हैं। यज्ञ विरोधी असुरों का आपने अकेले ही संहार किया था। महीनों के निर्धारणकर्ता सूर्यदेव को आपने ही द्युलोक में प्रतिष्ठित किया है । वृत्रासुर द्वारा भंग किये गए रथचक्र को सबके पिता सूर्यदेव आपकी शक्ति द्वारा ही धारण करते हैं ॥६॥

सूक्त १३९

ऋषि: देवगन्धर्वो विश्वा वसु:
देवता – सविता, ४-६ आत्मा । छंद – त्रिष्टुप

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥१॥

हरितवर्ण वाली वनस्पतियों और इस पर आश्रित सभी जीवों का पोषण करने वाले परम ज्योतिर्वान् सूर्यदेव अपनी रश्मियों को पूर्वदिशा से प्रकट करते हैं । जितेन्द्रिय, विद्वान् और पोषणकर्ता सूर्यदेव उत्पन्न हुएसम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करते हैं और सतत गतिशील रहते हैं ॥१॥

नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान्रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥२॥

सभी को उत्पन्न करने वाले सवितादेव द्युलोक के मध्य में अवस्थित हैं। ये द्युलोक, पृथ्वीलोक और अन्तरिक्ष तीनों को अपने तेज से दीप्तिमान् करते हैं। ये सम्पूर्ण विश्व को अपने आश्रय में लेने वाले, जल को धारण करने वाले तथा सभी को स्पष्ट देखने वाले हैं। इस लोक, परलोक और मध्यलोक में स्थित प्राणियों के सूक्ष्म भावोंको सवितादेव भली-भाँति जानते हैं ॥२॥

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्टे शचीभिः ।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥३॥

ऐश्वर्यों के मूल, वैभव प्रदाता, सत्यधर्म के प्रेरक सवितादेव अपनी दीप्तियों से समस्त विश्व को आलोकित करते हैं। सवितादेव इन्द्रदेव के समान ही सम्पदा प्राप्त करने के लिए संग्राम क्षेत्र में स्थिर रहते हैं ॥३॥

विश्वावसुं सोम गन्धर्वमापो ददृशुषीस्तदृतेना व्यायन् ।
तदन्ववैदिन्द्रो रारहाण आसां परि सूर्यस्य परिधीँरपश्यत् ॥४॥

हे सोमदेव ! विश्वावसु गंधर्व को देखकर जल, यज्ञकर्म के पुण्य प्रभाव से विलक्षणतापूर्वक प्रवाहित हुआ। जलप्रेरक इन्द्रदेव ने इस प्रवाह को जानकर यह यज्ञकार्य कहाँ चल रहा है? यह देखने के लिए चारों ओर से सूर्य मण्डल का निरीक्षण किया ॥४॥

विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमानः ।
यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म धियो हिन्वानो धिय इन्नो अव्याः ॥५॥

दिव्यलोक वासी और जल के निर्माता गन्धर्व विश्वावसु हमें इस विषय में वह सम्पूर्ण जानकारी दें, जो यथार्थ में सत्य है तथा जिसे हम नहीं जानते हैं । हे विश्वावसो ! हमारी स्तुतियों को प्रेरित करते हुए आप विचारपूर्वक किए गए कर्मों को संरक्षण प्रदान करें ॥५॥

सस्निमविन्दच्चरणे नदीनामपावृणोद्दुरो अश्मव्रजानाम् ।
प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचदिन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम् ॥६॥

इन्द्रदेव ने नदियों के अन्तिम भाग अन्तरिक्ष में मेघों को देखा। उन्होंने मेघों में संचरित होने वाले जल के द्वारों को उद्घाटित किया। उन्होंने इनको जलमय स्वरूप प्रदान किया। वे इन्द्रदेव मेघों की शक्ति को भली-भाँति जानते हैं ॥६॥

सूक्त १४०

ऋषि: अग्नि, पावक:
देवता – अग्नि । छंद – सतों वृहती, १-२ विष्टार पंक्ति, उपरिष्टा ज्योति

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो ।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे ॥१॥

हे अग्निदेव ! आपका हविष्यान्न प्रशंसनीय है । हे तेजस्वी अग्निदेव ! आपकी ज्वालाएँ अति सशोभित होती हैं। तेजस्वी, ज्ञानी हे देव ! आप अपनी सामर्थ्य से हविदाता को उत्तम अन्न-धन प्रदान करने वाले हैं ॥१॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना ।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे ॥२॥

हे अग्निदेव ! पवित्र किरणों और निर्मल तेज से युक्त आप सूर्यदेव के तुल्य उदित होते हैं और बाद में पूर्ण तेजस्विता को प्राप्त करते हैं।

मातारूपी दो अरणियों से प्रकट होने पर आप यजमानों के समीप रहकर उनके रक्षक रहते हैं। हविष्यान्न से द्युलोक को और वृष्टि से पृथ्वी को सुसम्पन्न बनाते हैं ॥२॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥३॥

सर्वज्ञाता, शक्तिवान् हे अग्निदेव ! आप हमारी उत्तम स्तुतियों से हर्षोल्लास को प्राप्त हों, हमारे यज्ञादि कर्मों द्वारा आप सन्तुष्ट हों । अनेक रूपों वाले विलक्षण द्रष्टा आप यजमानों द्वारा प्रदत्त हविष्यान्न को ग्रहण करें ॥३॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥४॥

हे अविनाशी अग्निदेव ! आप अपने तेज से प्रदीप्त होकर हमारे धन में वृद्धि करें। आप हमारे यजन कर्म में अपने तेजस्वी रूप से सुशोभित होते हैं और हमें यज्ञादि कर्मों का फल प्रदान करते हैं ॥४॥

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥५॥

यज्ञ को संस्कारित, सुशोभित करने वाले सर्वज्ञ, असंख्य धन के अधिपति, धन प्रदाता हे अग्निदेव ! हम आपकी आराधना करते हैं। आप हमें श्रेष्ठ धन और सौभाग्य युक्त प्रचुर अन्न प्रदान करें ॥५॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥६॥

याजकगण यज्ञ के महान् आधार, सामर्थ्यवान् , सर्वज्ञ दर्शनीय अग्निदेव को सुख की आकांक्षा से अपने समक्ष स्थापित करते हैं। हमारी स्तुति श्रवण करने वाले,सर्वत्र विख्यात, दिव्यगुण सम्पन्न हे अग्निदेव ! यजमान दम्पति अपनी वाणी से आपकी स्तुति करते हैं ॥६॥

सूक्त १४१

ऋषि: अग्निस्तापस:
देवता – विश्वे देवा । छंद – अनुष्टुप

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ्नः सुमना भव ।
प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् ॥१॥

हे अग्निदेव ! आप हमारे प्रति श्रेष्ठ मनोभावों को रखकर इस यज्ञ में उपस्थित हों तथा हमारे लिए हितकारी उपदेश करें । हे प्रजापालक अग्निदेव ! आप ऐश्वर्यदाता हैं, इसलिए हमें भी धन-धान्य से परिपूर्ण करें ॥१॥

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः ॥२॥

अर्यमा, भग और बृहस्पतिदेव हमें ऐश्वर्य से परिपूर्ण करें। समस्त देव और वाणी की अधिष्ठात्री, सत्यप्रिय। देवी सरस्वती हमें भरपूर धनादि सम्पदाएँ प्रदान करें ॥२॥

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥३॥

हम अपने संरक्षण एवं पालन के लिए राजा सोम, अग्निदेव, आदित्यगण, विष्णुदेव, सूर्यदेव, प्रजापति ब्रह्मा और बृहस्पतिदेव को स्तोत्रों द्वारा आमंत्रित करते हैं ॥३॥

इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः संगत्यां सुमना असत् ॥४॥

शंसनीय इन्द्रदेव, वायुदेव और बृहस्पतिदेव को हम इस यज्ञीय कार्य में आदरपूर्वक आमंत्रित करते है ये सभी देव हमारे प्रति अनुकूल विचार रखते हुए हर्षित हों ॥४॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥५॥

हे स्तोताओ ! आप सब अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, वाय, विष्णु, सरस्वती, अन्न तथा बलदायक सवितादव का आवाहन करें। सभी देव हमें ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए पधारें ॥५॥

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय ।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥६॥

हे अग्निदेव ! आप अन्य सभी अग्नियों के साथ पधारकर हमारे स्तोत्रों एवं यज्ञ की अभिवृद्धि करें। आप धन-वैभव प्रदान करने के निमित्त दाताओं (देवों) को भी प्रेरित करें ॥६॥

सूक्त १४२

ऋषि: शृांगा, जरित, द्रोण, सरिसृक, ७-८ स्तम्बमित्र
देवता – अग्नि । छंद – १-२ जगती, ७-८ अनुष्टुप

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्यन्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि ॥१॥

हे अग्निदेव ! स्तोतागण स्तोत्रों द्वारा आपकी ही प्रार्थना करते हैं । हे बलपुत्र अग्ने ! हमारे लिए आपके अतिरिक्त कोई दूसरा लक्ष्य नहीं है । आपके द्वारा प्रदत्त कल्याणकारी सुख, निश्चित ही तीनों प्रकार के दु:खों से संरक्षण प्रदान करने वाला है । हम आपकी प्रतप्त ज्वालाओं से पीड़ित न हों, अत: उन्हें हमसे दूर ही रखें ॥१॥

प्रवत्ते अग्ने जनिमा पितूयतः साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे ।
प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धियः पुरश्चरन्ति पशुपा इव त्मना ॥२॥

हे अग्निदेव ! अन्न की अभिलाषा करते हुए आपकी उत्पत्ति अति मनोहर होती है । बन्धु के समान आप सम्पूर्ण लोकों को सुशोभित करते हैं । इधर-उधर गमन करने वाली ज्वालाओं को देखकर हमारे स्तोत्रों का उदय हुआ है । ये ज्वालाएँ पशुपालक के समान आगे-आगे बढ़ती हैं ॥२॥

उत वा उ परि वृणक्षि बप्सद्बहोरग्न उलपस्य स्वधावः ।
उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेतिं तविषीं चुक्रुधाम ॥३॥

हे दीप्तिमान् अग्ने ! तृण (वनस्पतियों) का भक्षण (दहन) करते समय आप उन्हें समाप्त करने के उपजाऊ भूमि को आप अपने प्रभाव से ऊसर बना देते हैं । हम आपकी प्रचण्ड ज्वालाओं के क्रोध भाजन न बनें॥३॥

यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत्पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना ।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम ॥४॥

हे अग्निदेव ! जिस समय आप ऊपर से नीचे तक वृक्षों को जलाते हुए गमन करते हैं, उस समय विजयाकांक्षी सेना के समान अलग-अलग दलों (दिशाओं) में आगे बढ़ते हैं । जब वायुदेव आपकी ज्वालाओं के लिए अनुकूल दिशा में बहते हैं, उस समय दाढ़ी-मूंछ के बालों को

काटने वाले नाई के समान ही आप विस्तृत भूखण्ड को वृक्ष-वनस्पतियों से रहित (उसको साफ) कर देते हैं ॥४॥

प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथासः ।
बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम् ॥५॥

हे अग्निदेव ! जब आप अपनी ज्वालाओं को बार-बार विस्तृत करते हुए समस्त वन क्षेत्र को भस्म करते हैं, उस समय कभी नीचे, तो कभी ऊपरी भू-भाग की ओर चढ़ते हैं। आपके शरीर की ज्वालाएँ श्रृंखलाबद्ध होकर उसी प्रकार बढ़ती हैं, जैसे सेना के एक रथ के पीछे अनेकों रथ चल पड़ते हैं ॥५॥

उत्ते शुष्मा जिहतामुत्ते अर्चिरुत्ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।
उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु ॥६॥

हे अग्निदेव ! आपकी ज्वालाएँ ऊपर की ओर उत्थान करें। आपके तेज और बल पराक्रम की वृद्धि हो । आज सभी वसुगण भली प्रकार विनम्र होकर आपकी वन्दना करते हैं ॥६॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशाँ अनु ॥७॥

हे अग्निदेव ! यह स्थान जल का आधार है तथा इस स्थान पर विशाल समुद्र विद्यमान है । आप हमारे इस स्थान के अतिरिक्त अन्य मार्ग को अपनाएँ, जिससे आप स्वेच्छानुसार वनस्पतियों की ओर आगे बढ़ सकें ॥७॥

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ॥८॥

हे अग्निदेव ! आपके आगमन और प्रत्यागमन पर हमारे निवास स्थानों पर पुष्पवती लताएँ और दूर्वा संवर्द्धित हो । जलाशयों में अनेक प्रकार के कमल खिल उठे । समुद्र के जल प्रदेश में हमारे ये निवास स्थल हो, जहाँ हम आपके ताप से सुरक्षित रह सकें ॥८॥

सूक्त १४३

ऋषि: अत्रि, सांख्य
देवता – आश्विनौ । छंद – अनुष्टुप

त्यं चिदत्रिमृतजुरमर्थमश्वं न यातवे ।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥१॥

हे अश्विनीकुमारो ! यज्ञादि कर्म करते हुए अत्रि ऋषि वृद्ध हो गये थे। आपने उन्हें ऐसा (बलवान्) बनाया, जिससे वे अश्व के समान गन्तव्य स्थल पर पहुँचने में समर्थ हुए। अंष कक्षीवान् को आपने वैसे ही नवयौवन प्रदान किया, जिस प्रकार पुराने रथ का जीर्णोद्धार करते हैं ॥१॥

त्यं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत ।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः ॥२॥

हे अश्विनीकुमारो ! शीघ्रगामी अश्व के समान जिन अत्रि ऋषि को अति पराक्रमी असुरों ने बॉधा था, आपन सुदृढ़ गाँठ को खोलने के समान उन्हें मुक्ति प्रदान की। वे युवा पुरुष के समान इस लोक में आएँ ॥२॥

नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ॥३॥

शप्रवर्ण और सुन्दर नायक हे अश्विनीकमारो ! आप दोनों अत्रि ऋषि को क्रिया कुशलता प्राप्त करने का बुद्धि प्रदान करें। इसके लिए हम दिव्य स्तोत्रों से आपकी प्रार्थना करते हैं ॥३॥

चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।
आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ॥४॥

श्रेष्ठ.अन्नदाता हे अश्विनीकुमारो ! हमारे यज्ञगृह में उपस्थित होकर आपने महान् यज्ञ की रक्षा की । इससे हम अनुभव करते हैं कि आप हमारी दान-भावना और स्तोत्रों के अभिप्राय से परिचित हैं, यह सुनिश्चित है ॥४॥

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ॥५॥

हे अश्विनीकुमारो ! समुद्र की तरंगों में इधर-उधर गोते खाते हुए " भुज्यु " को उबारने के लिए आप दोनों श्रेष्ठ पतवारों से युक्त नाव लेकर पहुँचे । आपने उसे बचाकर पुनः यज्ञानुष्ठान करने के लिए समर्थ बनाया ॥५॥

आ वां सुम्नैः शंयू इव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।
समस्मे भूषतं नरोत्सं न पिप्युषीरिषः ॥६॥

सर्वज्ञ नायक स्वरूप हे अश्विनीकुमारो ! आप राजा के समान सुखी और श्रेष्ठ पूजनीय हैं। हमारे समीप आप धनैश्वर्य के साथ आएँ । जैसे गौ के स्तनों को दूध भर देता है, वैसे ही आप हमें धनादि से परिपूर्ण करें ॥६॥

सूक्त १४४

ऋषि: तार्क्ष्य सुपर्ण , यामायन ऊर्ध्वकृशनों
देवता – गायत्री । छंद – गायत्री, २ वृहती, ५ सतो वृहती, विष्टार पंक्ति

अयं हि ते अमर्त्य इन्दुरत्यो न पत्यते ।
दक्षो विश्वायुर्वेधसे ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! आप सृष्टि निर्माता हैं । अमृत-स्वरूप, बलवर्द्धक और जीवनाधार यह सोमरस अश्व के समान ही आपके समीप पहुँचता है ॥१॥

अयमस्मासु काव्य ऋभुर्वज्रो दास्वते ।
अयं बिभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदमृभुर्न कृत्व्यं मदम् ॥२॥

दाता इन्द्रदेव का तेजस्वी वज्र हमारे स्तोत्रों से वर्णन करने योग्य है । उन्होंने इसी से ऊर्ध्वकृशन नामक ऋषि अथवा ऊध्वरेता साधक की

रक्षा की थी। जैसे ऋभुदेव यज्ञकर्ताओं के पोषक हैं. वैसे ही इन्द्रदेव भी या को प्रोत्साहित करते हुए उन्हें पोषण प्रदान करते हैं ॥२॥

घृषुः श्येनाय कृत्वन आसु स्वासु वंसगः ।
अव दीधेदहीशुवः ॥३॥

तेजस्वी इन्द्रदेव अपनी यजमान रूपी प्रजा के लिए अति प्रशंसनीय हैं ।वे कर्मशील श्येन ऋषि के निमित्त उनकी सन्तानों को तेजस्विता प्रदान करें ॥३॥

यं सुपर्णः परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत् ।
शतचक्रं योऽह्यो वर्तनिः ॥४॥

श्येन (प्रशंसनीय) तार्क्ष्य (गतिशील) के पुत्र सुपर्ण (उत्तम पालनकर्ता) जिस ऐश्वर्यदाता सोमदेव को अति दूरस्थ स्थान से लेकर आए हैं, वह सोम वृत्र वध के लिए इन्द्रदेव को) प्रोत्साहित करता है ॥४॥

यं ते श्येनश्चारुमवृकं पदाभरदरुणं मानमन्धसः ।
एना वयो वि तार्यायुर्जीवस एना जागार बन्धुता ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! सुन्दर रक्तवर्ण अन्न के उत्पादक और सुखप्रद सोम को श्येन अपने चरणों से (निर्धारित क्रम पूरे करके) लेकर आए हैं। इससे

आप हमारे लिए अन्न एवं आयुष्य प्रदान करें तथा सोम द्वारा हमारी मैत्री भावना को जाग्रत् करें ॥५॥

एवा तदिन्द्र इन्दुना देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।
क्रत्वा वयो वि तार्यायुः सुक्रतो क्रत्वायमस्मदा सुतः ॥६॥

सोमरस का पान करके इन्द्रदेव महान् बल और दुःख निवारक संरक्षण सामर्थ्य द्वारा हमारी रक्षा करते हैं। हे शुभकर्मशील इन्द्रदेव ! हमारे यज्ञादि कर्मों से आनन्दित होकर आप हमें अन्न और दीर्घायुष्य प्रदान करें। यह सोमरस आपके निमित्त ही अभिषवित किया गया है ॥६॥

सूक्त १४५

ऋषिः इंद्राणी
देवता – सपत्नीबाधनम। छंद – अनुष्टुप, ६ पंक्ति

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥

इस लता रूपिणी बलवती ओषधि को हम खोदकर निकालते हैं, इससे सपत्नी (सौत) को पीड़ित किया जाता है और स्वामी (पति) की असाधारण प्रीति उपलब्ध की जाती है॥१॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु ॥२॥

हे ओषधे ! आपके पत्ते ऊपर की ओर फैलने वाले हैं। आप स्वामी के लिए उत्तम सौभाग्ययुक्त हैं। आप देवों द्वारा निर्मित हैं। आपका

तेज अत्यन्त प्रखर है । आप मेरी सपत्नी को दूर करें । मेरे स्वामी को मात्र मेरे लिए प्रीतियुक्त करें ॥२॥

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अथा सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥३॥

हे अत्युत्तम ओषधे ! हम उत्कृष्ट बने, श्रेष्ठों में अति श्रेष्ठता को उपलब्ध करें । हमारी सपत्नी निकृष्टों में भी अति निकृष्ट स्थिति को प्राप्त करें ॥३॥

नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन्रमते जने ।
परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥४॥

मैं इन्द्राणी सपत्नी का नाम तक लेना उचित नहीं समझती हैं । सपत्नी सभी के लिए अप्रिय होती है । सपत्नी को मैं दूर से भी अति दूर देश में भेज देना चाहती हूँ ॥४॥

अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ॥५॥

हे ओषधे ! मैं आपके सहयोग से सपत्नी को पराजित करने वाली हैं। आप भी इस कार्य में समर्थ हैं । हम दोनों शक्ति सम्पन्न बनकर सपत्नी को शक्तिहीन करें ॥५॥

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६॥

हे पतिदेव ! मैं आपके सिर के स्थान सिरहाने के समीप सपत्नी को पराभूत करने वाली इस ओषधि को स्थापित करती हूँ । पराभवकर्ता ओषधि-प्रभाव से आपका मन हमारी ओर उसी प्रकार आकर्षित हो, जैसे गौ बछड़े की ओर दौड़ती है तथा जल नीचे की ओर प्रवाहित होता है ॥६॥

सूक्त १४६

ऋषिः ऐरम्मदो देवमुनि
देवता – अरण्यानी। छंद – अनुष्टुप

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतीꣳ॥१॥

हे वनदेवि ! आप जंगल में देखते-देखते विलुप्त हो जाती हैं। आप ग्रामों में जाने के मार्गों को क्यों नहीं पूछती ? निर्जन वन में ही क्यों जाती हैं ? अकेले रहने में क्या आपको भय नहीं लगता ? ॥१॥

वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते॥२॥

कोई प्राणी वृष के समान आवाज करता है और कोई चींची करके मानो उसका प्रत्युत्तर देता है। उस समय वे वीणा के स्वरों के समान शब्दोच्चारण करके अरण्य देवी का गुणगान करते हैं॥२॥

उत गाव इवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति ॥३॥

ज्ञात होता है कि इस अरण्य में कहीं गौएँ चरती हैं और कहीं लता गुल्मादि की तरह गृह दिखाई देते हैं। सायंकाल अनेकों गाड़ियाँ घास, लकड़ी आदि लेकर निकलती हैं, जैसे अरण्य देवी उन्हें अपने घर भेज रही हों ।॥३॥

गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत् ।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥४॥

हे अरण्यदेवि ! एक पुरुष गौओं को बुला रहा है और दूसरा काष्ठ काट रहा है । अरण्य में निवास करने वाले मनुष्य रात्रि में विभिन्न शब्दों को सुनकर भयभीत होते हैं ॥४॥

न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते ॥५॥

अरण्यानी (अरण्य की अधिष्ठात्री देवी) किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करतीं । दूसरे व्याघ्रादि भी उस पर आक्रमण नहीं करते । वन में

मधुर स्वादिष्ट फल-फूल का आहार लेकर स्वेच्छानुसार सुखपूर्वक निवास किया जा सकता है ॥५॥

आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम् ।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ॥६॥

मृग नाभि (कस्तूरी) आदि उत्तम सुगन्ध से युक्त,प्रचुर फलमूलादि भक्ष्य पदार्थों से परिपूर्ण कृषि कार्यों से रहित और हरिणों की मातृस्वरूपा अरण्यानी देवी की हम स्तुति करते हैं ॥६॥

सूक्त १४७

ऋषिसुदेवा: शैरीषि:
देवता – इन्द्र । छंद – जगती, ५ त्रिष्टुप

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्वृत्रं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत्त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥१॥

हे वज्रपाणि इन्द्रदेव ! दुष्ट संहारक प्राणियों के लिए हितकारी, जल प्रवाहित करने वाले, द्युलोक एवं पृथ्वीलोक को अपनी इच्छा से गतिशील करने वाले, आपके उस तीव्र मन्यु (अनीति निवारक क्रोध) के प्रति हम याजकगण श्रद्धा व्यक्त करते हैं ॥१॥

त्वं मायाभिरनवद्य मायिनं श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।
त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥२॥

हे प्रशंसनीय इन्द्रदेव ! आप अन्न को उत्पन्न करने की इच्छा से बुद्धि की कुशलता से मायावी वृत्रासुर को पीड़ित करते हैं। सभी लोग गौओं को उपलब्ध करने के लिए आपको ही प्रार्थना करते हैं। हवि

समर्पित करने योग्य सभी यज्ञों में आपको ही सभी लोग आवाहित करते हैं ॥२॥

ऐषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु वृधासो ये मघवन्नानशुर्मघम् ।
अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु मेधसाता वाजिनमह्रये धने ॥३॥

अनेकों स्तोताओं के द्वारा आवाहन किये जाने वाले, ऐश्वर्यशाली हे इन्द्रदेव ! याजकगण आपकी कृपा से वांछित धन पाकर वृद्धि को प्राप्त करते हैं। शक्तिशाली अन्नदाता हे इन्द्रदेव ! वे पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न उत्तम हितकारी वैभव पाने के लिए आपकी ही पूजा उपासना करते हैं ॥३॥

स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकनन्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति ।
त्वावृधो मघवन्दाश्वध्वरो मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः ॥४॥

सोमरस, तेजस्वी इन्द्रदेव की सक्रियता एवं आनन्द को बढ़ाने वाला है, जो इस बात को जानते हैं, वे ही उनसे वाछित ऐश्वर्य की प्रार्थना करते हैं। हे ऐश्वर्यवान् इन्द्रदेव ! आप यज्ञादि कर्म सम्पन्न करने वाले जिन यजमानों की ऐश्वर्य वृद्धि करते हैं, वे शीघ्र ही धन-धान्य एवं सेवकों से परिपूर्ण वैभव प्राप्त करते हैं ॥४॥

त्वं शर्धाय महिना गृणान उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः ।

त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! महिमामय स्तवनों से प्रार्थना किये जाने पर आप हमें विशाल बल सम्पन्न बनाएँ । हे ऐश्वर्यपति टर्शनीय इन्द्रदेव ! आप हमें विविध प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करें। आप मित्र और वरुणदेव के समान सर्वश्रेष्ठ ज्ञान से सम्पन्न हैं । आप हमें धन-धान्य प्रदान करें ॥५॥

सूक्त १४८

ऋषिः पृथुरवैन्य
देवता – इन्द्र । छंद – त्रिष्टुप

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा ससवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य चाकन्त्मना तना सनुयाम त्वोताः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! हम सोम और अन्नादि हव्य समर्पित करते हुए आपकी प्रार्थना करते हैं । जो सम्पदा आपको इच्छा के अनुकूल हो, उसे हमें प्रदान करें । आपकी कृपा से हम अपने परिश्रम से श्रेष्ठ सम्पदा के अधिकारी बने॥ ॥१॥

ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् ॥२॥

दर्शनीय और शूरवीर हे इन्द्रदेव ! सूर्य के रूप में आप असुरों की प्रजाओं को उत्पन्न होते ही पराजित करते हैं । जो शत्रु गुफा में छिपकर बैठे हैं अथवा जल में गुप्तरीति से विद्यमान हैं, उन्हें भी आप पराभूत करते हैं । जल वृष्टि होने पर हम आपके लिए सोमयाग सम्पन्न करेंगे ॥२॥

अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वानृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमैरेनोत तुभ्यं रथोव्ळ्ह भक्षैः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप मंत्रद्रष्टा ऋषियों के श्रेष्ठ स्तोत्रों के अभिलाषी ज्ञाता और सर्वेश्वर होकर स्तुतियों को स्वीकार करें । सोमरस समर्पित करके हमने आपकी स्नेह भावना को अर्चित किया है, अतएव हम आपके आत्मीय हैं। हे रथारूढ़ इन्द्रदेव ! श्रेष्ठ हव्य पदार्थों के साथ इन स्तोत्रों को भी हम आपके निमित्त ही समर्पित करते हैं ॥३॥

इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! ये सभी श्रेष्ठ स्तोत्र आपके लिए ही प्रस्तुत किये गये हैं । हे वीर इन्द्रदेव ! जो मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ हैं, उन्हें आप शक्ति प्रदान करें । जो स्तोता आपसे प्रीति की कामना करते हैं, वे आपके निमित्त

यज्ञादि कर्म सम्पन्न करते हैं । जो संगठित होकर स्तोत्र पाठ करते हैं, आप उन्हें संरक्षण प्रदान करें ॥४॥

श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वारूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ॥५॥

हे शूरवीर इन्द्रदेव ! आप पृथु के आवाहन पर ध्यान दें । वेनपुत्र पृथु द्वारा वेदमंत्रों से आपकी अर्चना की जाती है । जो स्तोता घृत रूप हव्य से युक्त होकर यज्ञानुष्ठान करते हुए आपका स्तुतिगान करते हैं, उन्हें स्वीकार करें । वे सभी ढाल की ओर बढ़ने वाले जल प्रवाह के समान आपकी ओर शीघ्रता से पहुँच रहे हैं ॥५॥

सूक्त १४९

ऋषि: अर्चन हैरण्य स्तूप:
देवता – सविता। छंद – त्रिष्टुप

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥१॥

सृष्टि उत्पादक सवितादेव अपने नियन्त्रण साधनों से पृथ्वी को सुस्थिर करते हैं। विना आधार स्तम्भ के द्युलोक को सुदृढ़ रूप से अन्तरिक्ष में स्थापित करते हैं। वे सवितादेव आधार रहित अन्तरिक्ष में स्थित जल राशि के रूप में बँधे हुए, अश्व की भाँति कम्पायमान शरीर वाले मेघों से जल वृष्टि करते हैं ॥१॥

यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥२॥

जल के धारक हे अग्निदेव ! जिस अन्तरिक्ष पर विद्यमान रहते हुए मेघ पृथिवी को अभिषिंचित करते हैं, उस स्थान से सवितादेव

परिचित हैं। सवितादेव से ही पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक विस्तृत हुए हैं ॥२॥

पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ॥३॥

अविनाशी-अमर सोम द्वारा जिन देवों के निमित्त यज्ञ सम्पन्न किया जाता है, वे सभी सवितादेव के पश्चात् ही उत्पन्न हुए हैं। सुपर्ण (श्रेष्ठ पंखों या किरणों से युक्त सूर्य) सवितादेव द्वारा सबसे प्रथम उत्पन्न हुए हैं। सवितादेव की धारण क्षमता के आधार पर ही वे प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए ॥३॥

गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥४॥

जिस प्रकार वन में चरने वाली गौएँ शीघ्रता से गाँव की ओर, योद्धाजन युद्धवेला में अश्वों की ओर, नवप्रसूता गौ प्रसन्न होकर दूध पिलाने के लिए बछड़े की ओर तथा पति अपनी पत्नी की ओर स्वाभाविक रीति से जाते हैं, उसी प्रकार स्वर्ग के धारणकर्ता, सबके द्वारा प्रार्थना योग्य सवितादेव हम याजकों के पास पहुँचते हैं ॥४॥

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।

एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ॥५॥

हे सवितादेव ! हमारे पिता अंगिरा पुत्र हिरण्यस्तूप अन्न प्राप्ति के लिए किये गये यज्ञ में जिस प्रकार आपका आवाहन करते थे, उसी प्रकार हम आपकी वन्दना करते हुए सेवाएँ समर्पित करते हैं। जैसे सोमलता के संरक्षणार्थ यजमान यज्ञ की समाप्ति तक उत्साहपूर्वक संलग्न रहते हैं। वैसे ही हम भी आपकी परिचर्या में संलग्न हैं ॥५॥

सूक्त १५०

ऋषि: मूलिको वासिष्ठ:
देवता – अग्नि । छंद – वृहती, ४-५, उपरिष्टाज्ज्योति, ४ जगती

समिद्धश्चित्समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गहि मृळीकाय न आ गहि ॥१॥

हे हव्यवाहक अग्निदेव ! देवताओं के निमित्त आपको प्रज्वलित प्रदीप्त किया गया है। आप हमारे यज्ञानुष्ठान में आदित्यगण, रुद्रगण और वसुगणों के साथ पधारें, हमारे कल्याणार्थ आप आएँ । ॥१॥

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
मर्तासस्त्वा समिधान हवामहे मृळीकाय हवामहे ॥२॥

हे अग्निदेव ! आप इस यज्ञ (समर्पित हविष्य) का प्रेमपर्वक सेवन करते हुए हमारी प्रार्थनाओं को स्वीकार करें और यहाँ (यज्ञवेदी पर) प्रतिष्ठित हों । हे तेजस्वी अग्निदेव ! हम सभी मनुष्य यज्ञ की सफलता और अपने सुख संवर्द्धनार्थ आपका आवाहन करते हैं ॥२॥

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।

अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान्मृळीकाय प्रियव्रतान् ॥३॥

हे अग्निदेव ! आप सबको धारण करने वाले तथा सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता हैं । हम श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा आपकी प्रार्थना करते हैं । आप हमारे सुख के लिए श्रेष्ठ व्रतों के निर्वाहक देवों को इस यज्ञ में लेकर पधारें ॥३॥

अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितोऽग्निं मनुष्या ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये ॥४॥

दिव्य गुणों से सम्पन्न हे अग्निदेव ! आप देवताओं के पुरोहितरूप हैं। सभी मनस्वी जनों और तत्त्वद्रष्टा ऋषियों ने आपको प्रदीप्त किया है । प्रचुर ऐश्वर्य सम्पदा की प्राप्ति के लिए हम आपका आवाहन करते हैं। कल्याणकारी सुख प्राप्ति के लिए हम आपकी ही प्रार्थना करते हैं ॥४॥

अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः ॥५॥

संग्राम काल में अग्निदेव ने अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्व और त्रसदस्यु आदि ऋषियों को भली-प्रकार संरक्षित किया । पुरोहित वसिष्ठ अग्निदेव का ही आवाहन करते हैं। अग्रणी पुरुष भी सुख प्राप्ति के लिए अग्निदेव की ही उपासना करते हैं । ॥५॥

सूक्त १५१

ऋषि: श्रद्धा कामायनी
देवता – श्रद्धा। छंद –अनुष्टुप

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१॥

श्रद्धा से ही यज्ञाग्नि को प्रज्वलित किया जा सकता है और श्रद्धा से ही हविष्यान्न की आहुति समर्पित की जाती है। श्रद्धा को विभूतियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। यह बात स्पष्ट रूप से कही जाती है ॥१॥

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥२॥

हे श्रद्धे ! आप दाता को अभीष्ट फल प्रदान करें । जो दान देने की अभिलाषा करते हैं; आप उन्हें भी अभीष्ट फल प्रदान करें । हे श्रद्धे ! आप याजकों को हमारे इन वचनों के अनुसार वांछित फल प्रदान करें।॥२॥

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥३॥

हे श्रद्धे ! जिस प्रकार इन्द्रादि देवों ने बलवान् असुरों के विनाश का विचार किया और उन्हें विनष्ट कर दिया, उसी प्रकार हमारे याजकों को आप अभीष्ट फल प्रदान करें ॥३॥

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥४॥

देवगण और याजक मनुष्य वायुदेव के संरक्षण में श्रद्धा की उपासना करते हैं। अन्त:करण में किसी संकल्प के जाग्रत् होने पर वे श्रद्धा का ही आश्रय लेते हैं। श्रद्धा से ही मनुष्य धन-वैभव अर्जित करते हैं ॥४॥

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यंदिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥५॥

हम प्रात:काल श्रद्धा का आवाहन करते हैं। मध्याह्नकाल में श्रद्धा का आवाहन करते हैं । सूर्यास्तकाल में भी श्रद्धा की ही उपासना करते हैं । हे श्रद्धे ! आप हम सबको श्रद्धा से परिपूर्ण करें ॥५॥

सूक्त १५२

ऋषि: शासो भारद्वाज:
देवता – इन्द्र । छंद –अनुष्टुप

शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥१॥

हे महान् इन्द्रदेव ! आपकी शत्रुओं को मारने की क्षमता महान् और अद्भुत है । आपके मित्र कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते और न कभी शत्रुओं से पराभूत होते हैं। शास ऋषि इस प्रकार से आपकी श्रेष्ठ स्तोत्रों से प्रार्थना करते है ॥१॥

स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयंकरः ॥२॥

इन्द्रदेव सबका कल्याण करने वाले, प्रजाजनों का पालन करने वाले, वृत्र असुर का विनाश करने वाले, युद्धकर्ता शत्रुओं को वशीभूत करने वाले, साधकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, सोमपान करने वाले और अभयदाता हैं । वे हमारे समक्ष पधारें ॥२॥

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप राक्षसों का विनाश करें । हिंसक दुष्टों को नष्ट करें । वृत्रासुर का जबड़ा तोड़ दें । हे। शत्रुनाशक इन्द्रदेव ! आप हमारे संहारक शत्रुओं के क्रोध एवं दर्प को नष्ट करें ॥३॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! आप हमारे शत्रुओं का विनाश करें हमारी सेनाओं द्वारा पराजित शत्रुओं को मुँह लटकाये भागने दें । हमें वश में करने के अभीच्छे शत्रुओं को गर्त में डालें ॥४॥

अपेन्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
वि मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥५॥

हे इन्द्रदेव ! शत्रुओं के दुष्टमनों (दुर्बुद्धि) को विनष्ट करें । हमारा संहार करने के अभिलाषी शत्रुओं को नष्ट करें । शत्रुओं के क्रोध से हमारी रक्षा करते हुए हमें श्रेष्ठ सुख प्रदान करें । शत्रु से प्राप्त मृत्यु का निवारण कर ॥५॥

सूक्त १५३

ऋषि: देवजामय इन्द्रमातर:
देवता – इन्द्र । छंद –गायत्री

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
भेजानासः सुवीर्यम् ॥१॥

इन्द्रदेव के समीप जाकर उनकी सेवा करने वाली, यज्ञादि सत्कर्म करने में संलग्न माताएँ उनकी ही उपासना-अर्चना करती हैं। उनसे सुखकारी श्रेष्ठ धन को उपलब्ध करती हैं ॥१॥

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

हे बलवर्धक इन्द्रदेव ! आप शत्रुओं को पराजित करने वाली सामर्थ्य और धैर्य से प्रख्यात हुए हैं। आप सर्वाधिक सामर्थ्यशाली और साधकों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं ॥२॥

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः ।
उद्द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आप वृत्रहन्ता और अन्तरिक्ष का विस्तार करने वाले हैं। आपने अपनी सामर्थ्य से द्युलोक (स्वर्गलोक) को स्थायित्व प्रदान किया है ॥३॥

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः ।
वज्रं शिशान ओजसा ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! अपने कार्यों में सहयोगी (सखा) सूर्य को अपने दोनों हाथों से अन्तरिक्ष में स्थापित किया है। आप अपनी सामर्थ्य से वज्रास्त्र को तीक्ष्णता प्रदान करते हैं ॥४॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।
स विश्वा भुव आभवः ॥५॥

हे इन्द्र ! आप अपनी शक्ति से सभी प्राणियों को वशीभूत करते हैं । समस्त स्थानों पर आपका प्रभुत्व है ॥५॥

सूक्त १५४

ऋषि: यमी वैवस्वती
देवता – मावषृतम । छंद –अनुष्टुप

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१॥

किन्हीं पितरजनों के निमित्त सोमरस उपलब्ध रहता है और कोई घृताहुति का सेवन करते हैं । हे प्रेतात्मा ! जिनके लिए मधुर रस की धारा प्रवाहित होती है, आप उन्हीं के समीप पहुँचें ॥१॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२॥

जो तपश्चर्या के प्रभाव से किसी भी प्रकार पराभूत नहीं हो सकते, जो तपश्चर्या के कारण स्वर्ग को प्राप्त हए हैं तथा जिन्होंने कठिन तप साधना सम्पन्न की है । हे प्रेतात्मा ! आप उन्हीं के समीप जाएँ ॥२॥

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥३॥

हे प्रेत ! जो शूरवीर संग्राम में अपने प्राणों की आहुति देकर वीरगति को प्राप्त हुए हैं अथवा जो लोग अनेकों प्रकार के दान देकर अपनी कीर्ति से इस संसार में अमर हो गये हैं। आप उन लोगों के समीप पहुँचे ॥३॥

ये चित्पूर्व ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः ।
पितृन्तपस्वतो यम ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥४॥

हे प्रेत ! हमारे जिन पूर्वजों ने सदैव सत्य की रक्षा की तथा जो नियमित रूप से यज्ञादि सत्कर्मों में ही निरत रहे, ऐसे तपोबल के धनी पितरों के समीप आप पहुँचे ॥४॥

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥५॥

जिन पूर्वज मनीषियों ने जीवन की हजारों श्रेष्ठ विधाओं को विकसित किया । जो सूर्य की शक्तियों के संरक्षक हैं और तप से उत्पन्न जिन पितरों ने तपस्वी जीवन जिया; हे मृतात्मा ! आप उन्हीं के समीप पहुँचें ॥५॥

सूक्त १५५

ऋषि: शिरिम्बिठो भारद्वाज:
देवता – अलक्ष्मीघन्म्, २-३ ब्रह्मणस्पति:, ५ विश्वे देवा। छंद – अनुष्टुप

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥१॥

हे अलक्ष्मी ! आप सदैव दान का विरोध करते हुए कुत्सित शब्दोच्चारण करने वाली हैं। विकृत आकृतियुक्त और सदा आक्रोश करने वाली हैं। आप निर्जन प्रदेश की ओर जाएँ । अन्तरिक्ष का भेदन करने वाले मेघों के बल से आपको विनष्ट करेंगे ॥१॥

चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी ।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृण्गोदृषन्निहि ॥२॥

अलक्ष्मी वृक्ष, लता, शस्यादि के अंकुरों को विनष्ट करके दुर्भिक्ष पैदा करती है, उसे इस लोक और उस लोक से हम दूर करते हैं। हे

तेजस्वी ब्रह्मणस्पति ! दान विरोधिनी उस धननाशक देवी को आप यहाँ से दूर करें ॥२॥

अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥३॥

विकृत आकृतिवाली हे अलक्ष्मी ! आप उस काष्ठ के ऊपर बैठकर समुद्र के दूसरी ओर चली जाएँ, जो संरक्षक (स्वामी) के बिना समुद्र के किनारे तैर रहा है ॥३॥

यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्‌बुदयाशवः ॥४॥

हिंसक और कुत्सित शब्द बोलने वाली हे अलक्ष्मी ! जिस समय आप यहाँ से गमन करती हैं, उस समय वीर इन्द्रदेव के सभी शत्रु, जल के बुद्‌बुदों के समान विनष्ट हो जाते हैं ॥४॥

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥५॥

सभी देवताओं ने गौओं का उद्धार किया। इन्होंने अग्निदेव को विभिन्न स्थानों में प्रतिष्ठित किया और देवां के प्रति हविष्यान्न प्रदान किया । इन पर आक्रमण करने की किसकी सामर्थ्य हैं? ॥५॥

सूक्त १५६

ऋषि: केतुराग्नेय
देवता – अग्नि: । छंद – गायत्री

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु ।
तेन जेष्म धनंधनम् ॥१॥

हमारी स्तुतियाँ अग्निदेव को यज्ञ हेतु उसी प्रकार प्रेरणा दें, जिस प्रकार युद्ध में शीघ्र चलने वाले घोड़ का प्रेरित किया जाता है। जीवन संग्राम में हम सभी ऐश्वर्यों के विजेता हों ॥१॥

यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या ।
तां नो हिन्व मघत्तये ॥२॥

हे अग्निदेव ! आपकी विघ्न निवारण करने वाली एवं संरक्षण प्रदान करने वाली शक्ति (क़िरणों) से जैसे हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है, वैसे ही हमारे लिए उत्तम धनादि प्रदान करें ॥२॥

आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
अङ्धि खं वर्तया पणिम् ॥३॥

हे अग्निदेव ! स्वस्थ और महान् गौओं और अश्वों से युक्त प्रचुर धन हमें प्रदान करें । आकाश आपके तेज से ही प्रकाशित है। आप व्यापारियों का मार्गदर्शन करें ॥३॥

अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि ।
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४॥

हे अग्निदेव ! सब वस्तुओं को प्रकाश देते हुए जर्जर न होने वाले और निरन्तर गतिशील सूर्यदेव को आपने ही अन्तरिक्ष में स्थापित किया है ॥४॥

अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् ।
बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५॥

हे अग्निदेव ! पताका की भाँति आप प्रजाओं को ज्ञान देने वाले, प्रिय और सर्वश्रेष्ठ हैं। यज्ञशाला में स्थित आप हमारे स्तुतिगान को स्वीकार करते हुए हमें श्रेष्ठ पोषण प्रदान करें ॥५॥

सूक्त १५७

ऋषि: भुवन आप्त्य, साधनो, भौवन:
देवता – विश्वे देवा: । छंद – द्विपदा त्रिष्टुप

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१॥

इन समस्त लोकों को शीघ्र ही हम प्राप्त करें । इन्द्रदेव और सभी देवगण हमारे लिए सुख-शान्ति की प्राप्ति में सहायक हों ॥१॥

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीकॢपाति ॥२॥

इन्द्रदेव और आदित्यगण हमारे यज्ञ को सफल बनाएँ, शरीर को निरोग बनाएँ और हमारी सन्तानों के सद्व्यवहार के लिए प्रेरित करें ॥२॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ॥३॥

इन्द्रदेव आदित्यों और मरुद्गणों के साथ पधार कर हमारे शरीरों को सुरक्षा प्रदान करें ॥३॥

हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥४॥

जिस समय देवगण वृत्रादि असुरों का संहार करके अपने स्थान की ओर लौटे , उस समय अमर देवत्व की सुरक्षा हो सकी ॥४॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥५॥

स्तोताओं ने इन्द्रादि देवों के निमित्त श्रेष्ठ यज्ञादि कर्मों से युक्त स्तुतियों को प्रस्तुत किया। उसके पश्चात् सभी ने अन्तरिक्ष से बरसते हुए जल को देखा ॥५॥

सूक्त १५८

ऋषि: चक्षु: सौर्य:
देवता – सूर्य । छंद – गायत्री, २ स्वराट

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् ।
अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥१॥

सर्वप्रेरक सूर्यदेव द्युलोक के अनिष्टों से हमारी रक्षा करें । अन्तरिक्ष के अनिष्टों से हमें बचाएँ तथा अग्निदेव हमें पृथ्वी के ऊपर स्थित शत्रुओं (अनिष्टों) से संरक्षित करें ॥१॥

जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति ।
पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥२॥

जिनका तेज सैकड़ों तरह से यजनीय है, वे सवितादेव हमारी स्तुतियाँ स्वीकार करें और हम पर गिरने वाले १ शत्रु के) चमकदार आयुधों से हमारी रक्षा करें ॥२॥

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः ।
चक्षुर्धाता दधातु नः ॥३॥

सबके प्रेरक सवितादेव हमें श्रेष्ठ नेत्र ज्योति प्रदान करें, पर्वत हमें तेजस्वी नेत्र प्रदान करें तथा विधाता हमें ज्योतिमान नेत्र प्रदान करें ॥३॥

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः ।
सं चेदं वि च पश्येम ॥४॥

हे सूर्यदेव ! हमारे नेत्रों में ऐसी ज्योति प्रदान करें, जिससे हम सम्पूर्ण पदार्थों का भली-भाँति अवलोकन कर सकें। हम आपके तेज से इस जगत् को विविध प्रकार से भलीभाँति देख सकें ॥४॥

सुसंदृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य ।
वि पश्येम नृचक्षसः ॥५॥

हे सूर्यदेव ! आपका हम दर्शन कर सकें । मनुष्य जिसे देखने में समर्थ हैं, उसे हम विशिष्ट रूप में देखें ॥५॥

सूक्त १५९

ऋषिः पौलोमी शची
देवता – शची । छंद – अनुष्टुप

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः ।
अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ॥१॥

द्युलोक में स्थित सूर्यदेव का उदय ही मेरे लिए सौभाग्योदय के समान है। उनकी शक्ति से मैंने अपने स्वामी को वश में करके सपत्नियों को पराजित कर दिया है ॥१॥

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥२॥

मैं ही ध्वजा के समान ज्ञानवती और सिर के समान प्रधान हूँ । उग्र होते हुए भी अपने स्वामी को मधुर वचन बोलने के लिये सहमत

करती हूँ। मुझे सर्वोत्तम जानकर स्वामी मेरे कार्यों का सदैव अनुमोदन करते हैं ॥२॥

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥३॥

मेरे पुत्र शत्रुओं का नाश करने में समर्थ और मेरी ही कन्या सर्वश्रेष्ठ रंगरूप से सुशोभित हैं । मैं सबके ऊपर विजय प्राप्त करती हैं। स्वामी भी मेरे यश की चर्चा करते हैं ॥३॥

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद्द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम् ॥४॥

जिस यज्ञ से मेरे स्वामी इन्द्रदेव समर्थ और जगत में विख्यात हुए हैं. देवों के निमित्त वही यज्ञ अनुष्ठान मन भी सम्पन्न किया है। अब मेरी सभी शत्रुरूप सपत्नियाँ समाप्त हो गई हैं ॥४॥

असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी ।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव ॥५॥

मैं सपत्नियों का विनाश करके उन पर विजय प्राप्त करने वाली हैं। अस्रि व्यक्तियों के तेज और ऐश्वर्य की भाँति मैं सभी सपत्नियों के तेज और धन को विनष्ट करती हूँ ॥५॥

समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी ।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च ॥६॥

सबको पराजित करने में समर्थ मैं सभी इन सपत्नियों पर विजय प्राप्त करती हूँ। मैं अपने स्वामी वीर (इन्द्रदेव) और उनके कुटुम्बियों को भी अपने अधिकार में रखती हूँ ॥६॥

सूक्त १६०

ऋषि: पूरणो वैश्वामित्र
देवता – इन्द्र । छंद – त्रिष्टुप

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! आप तीव्र प्रभाव वाले इस सोमरस का सेवन करें । गतिशील रथ से योजित किये गये अश्वों को लेकर यहाँ आएँ । अन्य यजमान आपको हर्षित नहीं कर सकते, हम ही आपको सन्तुष्ट करेंगे। आपके निमित्त ही यह सोमाभिषव किया गया है ॥१॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आपके निमित्त ही सोमरस तैयार किया गया है, आगे भी आपके लिए ही प्रस्तुत होगा। ये सभी स्तुतियाँ आपका ही आवाहन

करती हैं । हे सर्वज्ञ इन्द्रदेव ! शीघ्र ही उपस्थित होकर आप हमारे इस यज्ञ में सोमपान करें ॥२॥

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३॥

जो साधक निश्छल भावनापूर्वक स्नेह और श्रद्धाभक्ति के साथ इन्द्रदेव के लिए सोमरस अभिषत करने के इन्द्रदेव उनकी गौओं को भी क्षीण नहीं करते। उन्हें श्रेष्ठ और प्रशंसनीय ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥३॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४॥

जो धनवान् लोग इन्द्रदेव के निमित्त सोमरस प्रस्तुत करते हैं, उन्हें वे प्रत्यक्ष लाभ प्रदान करते हैं। वैभवशाली इन्द्रदेव उनकी भुजाओं को थामकर भयमुक्त करके संरक्षण प्रदान करते हैं । उत्तम कर्मो से विद्वेष करने वालों को इन्द्रदेव तुरन्त नष्ट कर देते हैं ॥४॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५॥

सुखदाता हे इन्द्रदेव ! अश्वों, गौओं और ऐश्वर्य की अभिलाषा से प्रेरित होकर हम आपके आगमन की प्रार्थना करते हैं। आपके निमित्त नवीन और श्रेष्ठ स्तोत्रों की रचना करके आपका आवाहन करते हैं ॥५॥

सूक्त १६१

ऋषि: प्राजापत्यो यक्ष्मनाशन:
देवता – इन्द्रग्नि , राजयक्ष्मघ्नं । छंद – त्रिष्टुप, ५ अनुष्टुप

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१॥

हे रोगी ! यज्ञ के हविर्द्रव्य से हम आपको अज्ञात रोगों और राजयक्ष्मा से मुक्त करते हैं। यदि इस समय किसी पापग्रह ने इस रोगी को घेर लिया हो, तो उससे भी इन्द्रदेव और अग्निदेव मुक्ति प्रदान करें ॥१॥

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥२॥

यदि रोगी की आयु क्षीण हो गई है, यदि वह इस लोक से जाने वाला है तथा यदि वह मृत्यु के समीप गया हुआ है, तो भी हम उसे मृत्युदेव निति के समीप से वापस ला सकते हैं। मैंने उसका स्पर्श किया है, जिससे वह सौ वर्ष तक जीवित रहेगा ॥२॥

सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥

हमने जो आहुतियाँ प्रदान की हैं, ये अपने सहस्र नेत्रों से सौ वर्ष का जीवन और दीर्घायुष्य प्रदान करने वाली हैं। इन्हीं आहुतियों द्वारा रोगी के जीवन को सुरक्षित किया है । सम्पूर्ण दुःखों का निवारण करके इन्द्रदेव इन्हें सौ वर्ष की आयु प्रदान करें ॥३॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥४॥

हे रोगमुक्त मनुष्य ! नित्यमेव वृद्धिशील होते हुए आप एक सौ शरद् , एक सौ हेमन्त और एक सौ वसन्त तक सुखपूर्वक जीवित रहें । इन्द्रदेव , अग्निदेव, सवितादेव और बृहस्पतिदेव हविष्यान्न द्वारा परितृप्त होकरआपको सौ वर्ष तक के लिए जीवनी शक्ति प्रदान करें ॥४॥

आहार्षं त्वाविदं त्वा पुनरागाः पुनर्नव ।
सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥५॥

हे रोगी मनुष्य ! हम आपको मृत्यु के पाश से लौटाकर लाए हैं । पुनः नवजीवन धारण करने वाले हे मनुष्य ! आप हमारे समीप पुन: आए हैं। हे सर्वाङ्ग स्वस्थ ! आपके लिए सम्पूर्ण विश्व को देखने में समर्थ नेत्रों और आयुष्य को हमने उपलब्ध किया ॥५॥

सूक्त १६२

ऋषि: ब्राहमो रक्षोहा
देवता – रक्षोहा। छंद – अनुष्टुप

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः ।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥१॥

हमारे स्तोत्रों से प्रसन्न होकर अग्निदेव शरीर की सभी बाधाओं (रोगों) का निवारण करें । हे नारी ! आपके शरीर में जो भी विकार (रोग) प्रत्यक्ष या गोपनीयरूप से विद्यमान हैं, उन सबको अग्निदेव दूर करें ॥१॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥२॥

हे नारी ! जिन आसुरी प्रवृत्तियों (रोगों) ने आपको पीडित किया है तथा आपकी सृजन एवं धारण करने की क्षमता को विनष्ट किया है; अग्निदेव उन सबको समाप्त करें, हम उनकी स्तुति करते हैं ॥२॥

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥३॥

हे स्त्री ! विभिन्न रोगों के रूप में जो भी पैशाचिक शक्तियाँ आपके गर्भ को पीड़ित करना चाहती हैं, जो आपकी सन्तानों को पीड़ा पहुँचाती हैं, उन सबको आपके पास से दूर करके नष्ट करते हैं ॥३॥

यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेळ्हि तमितो नाशयामसि ॥४॥

हे नारी ! जो भी विकार (रोग) जाने-अनजाने तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर गये हैं तथा जो तुम्हारी सन्तानों को नष्ट करना चाहते हैं, अग्निदेव की सहायता से हम उन सबका विनाश करते हैं ॥४॥

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥५॥

हे स्त्री ! जो रोग आपके पास छलपूर्वक भ्रातारूप से , पतिरूप से अथवा उपपति बनकर आता है और आपकी सन्तति को विनष्ट करने की कामना करता है, उसे हम यहाँ से दूर भगाते हैं ॥५॥

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥६॥

हे नारी ! जो रोग स्वप्नवेला और निद्रावस्था में आपको मोहमुग्ध करके समीप आता है और जो आपकी सन्तति को विनष्ट करने की कामना करता है, उसे हम यहाँ से दूर करते हैं ॥६॥

सूक्त १६३

ऋषि: विवृहा काश्यप:
देवता –यक्ष्मनाशनम् । छंद – अनुष्टुप

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

हे रोगी ! आपके दोनों नेत्रों, दोनों कानों, दोनों नासिका रन्धों, ठोढ़ी, सिर, मस्तिष्क और जिह्वा से हम यक्ष्मा रोग को दूर करते हैं ॥१॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्यमंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥

हे रोगी ! आपकी गर्दन की नाड़ियों, ऊपरी स्नायुओं, अस्थियों के संधिभागों, कन्धों, भुजाओं और अन्तर्भाग से यक्ष्मा रोग का निवारण करते हैं ॥२॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥३॥

आपकी आँतों, गुदा, नाड़ियों, हृदयस्थान, मूत्राशय, यकृत और अन्यान्य पाचन तंत्र के अवयवों से हम रोगों का निवारण करते हैं ॥३॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामि ते ॥४॥

हे रोगी ! आपकी दोनों जंघाओं, जानुओं, एड़ियों, पंजों, नितम्बभागों, कटिभागों और गुदा द्वार से हम यक्ष्मा रोग का निवारण करते हैं ॥४॥

मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥५॥

आपके नखों से, लोमों से, प्रजनन अंगों से तथा समस्त शरीर से हम रोगों का निवारण करते हैं ॥५॥

अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥६॥

प्रत्येक अंग, प्रत्येक लोम और शरीर के प्रत्येक संधि भाग में जहाँ कहीं भी रोगों का निवास है, वहाँ से हम उन्हें दूर करते हैं ॥६॥

सूक्त १६४

ऋषि: प्रचेता अंगिरस
देवता – दु:स्वप्ननाशनम् । छंद – अनुष्टुप, ३ त्रिष्टुप, ५ पंक्ति

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥१॥

हे दु:स्वप्न ! आपने हमारे मन को अपने अधीन कर लिया है । आप यहाँ से दूर भाग जाएँ, दूर देश में जाकर इच्छानुसार विचरण करें । निति देवता जो यहाँ से दूर रहते हैं, उनसे जाकर कहें कि जीवित व्यक्तियों के मनोरथ विस्तृत होते हैं, अतएव वे मनोरथों के विनाशक दु:स्वपदर्शन को विनष्ट करें ॥१॥

भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम् ।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः ॥२॥

सभी लोग श्रेष्ठ फलों की कामना करते हैं। वे उत्तम काम्य वस्तुओं के अभिलाषी हैं। विवस्वत पुत्र यम से शुभदृष्टि की हम प्रार्थना करते हैं। हमारे मन विविध श्रेष्ठ विषयों में रमण करने वाले हों ॥२॥

यदाशसा निःशसाभिशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥३॥

निराशा के समय, आशा को सफल बनाते समय, जाग्रत् अवस्था और निद्रावस्था में जो भी हमसे पापकर्म होते हैं, उन सभी कष्टकारी पापकर्मों के फल को अग्निदेव हमसे दूर करें ॥३॥

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ॥४॥

हे इन्द्रदेव और ब्रह्मणस्पति देव ! हमसे स्वप्नावस्था में आपके प्रति जो पापकर्म हो गए हों, उन्हें क्षमा करें । अंगिरा के पुत्र प्रचेता पापजन्य अमंगल से हमारी रक्षा करें ॥४॥

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
जाग्रत्स्वप्नः संकल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥५॥

आज हम विजयी हुए हैं, प्राप्त करने योग्य वैभव को उपलब्ध कर लिया है और हम निरपराध हो गए हैं । जाग्रत् अवस्था और निद्रावस्था अथवा संकल्प से सम्बन्धित जो भी पाप किए गए हैं, वे सभी द्वेषी शत्रुओं को प्राप्त हों । जिनसे हम विद्वेष करते हैं, सभी पाप उनके समीप जाएँ । ॥५॥

सूक्त १६५

ऋषि: नैऋत: कपोत:
देवता – विश्वेदेवा । छंद – त्रिष्टुप

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१॥

हे देवगण ! निर्ऋतदेव का दूत यह कपोत कष्ट देने की अभिलाषा से हमारे घर में पहुँचा है, उस बाधा के निवारणार्थ हम देवों की हवि द्वारा अर्चना करते हैं। उन पापों को हम हविष्यान्न द्वारा दूर करते हैं। हमारे पुत्र-पौत्रादिऔर गौ, अश्वादि को सुख-शान्ति प्राप्त हो ॥१॥

शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहेषु ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥२॥

हे देवगण ! हमारे घर में आया हुआ कपोत हमारे लिए कल्याणकारी और निष्पाप हो । ज्ञानवान और हमारे आत्मीय अग्निदेव हमारी हवि

का सेवन करें। आपकी कृपादृष्टि से यह पंखों वाला पक्षी (तीक्ष्ण आयध) हमसे दूर ही रहे ॥२॥

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने ।
शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ॥३॥

तीक्ष्ण पंखों वाला कपोत (आयुध) हमें विनष्ट न करे । जिस विस्तृत स्थान पर अग्निदेव प्रतिष्ठित हुए हैं। उसी स्थान पर यह विराजमान हो । गौओं और मनुष्यों के लिए यह सुखदायी हो । हे देवगण ! यह कपोत यहाँ हमारा वध न करे ॥३॥

यदुलूको वदति मोघमेतद्यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एष एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥४॥

यह उलूक जो अमङ्गलध्वनि करता है, उसका प्रभाव निष्फल हो । कपोत अग्नि गृह में बैठता है, वह भी निष्प्रभावी हो । जिस स्वामी से प्रेरित होकर यह कपोत आया है, उस मृत्युरूप यम को प्रणाम है ॥४॥

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयध्वम् ।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात्पतिष्ठः ॥५॥

हे देवगण ! श्रेष्ठ मन्त्रों से स्तुति किए जाने पर आप त्याज्य कपोत को हमारे घर से दूर करें । आहुतियों से प्रसन्न और सभी पापों के नाशक, आप हमें गौएँ उपलब्ध कराएँ । तीव्रगामी उड़ने वाले ये कपोत हमारे अन्न का परित्याग करके दूसरे स्थान पर उड़कर गमन करें ॥५॥

सूक्त १६६

ऋषि: ऋषभो वैराज:, ऋषभ शाक्वरो
देवता – सपत्नघ्नम् । छंद – अनुष्टुप, ५ महापंक्ति

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! समकक्ष व्यक्तियों में हमें श्रेष्ठता प्रदान करें । शत्रुओं का पराभव करने में हम विशेष रूप से समर्थ बने । शत्रुओं का संहार करके विशेष शोभायमान होकर हम गौओं के अधिकारी बनें ॥१॥

अहमस्मि सपत्नहेन्द्र इवारिष्टो अक्षतः ।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥२॥

मैं शत्रु विध्वंसक हूँ । इन्द्रदेव के सदृश ही मुझे कोई हिंसित और आहत करने में सक्षम नहीं । सभी शत्रुओं को हम पैरों से कुचल दें, अर्थात् उन्हें अपमानित करें ॥२॥

अत्रैव वोऽपि नह्याम्युभे आर्त्नी इव ज्यया ।
वाचस्पते नि षेधेमान्यथा मदधरं वदान् ॥३॥

हे रिपुओ ! जैसे धनुष के दोनों किनारों को प्रत्यञ्चा से बाँधते हैं, वैसे ही मैं तुम्हें इस स्थान से बाँधता हूँ। हे वाचस्पति देव ! हमारी वार्ता में अवरोध डालने से इन्हें रोकें ॥३॥

अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना ।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ॥४॥

सबको पराजित करने वाला मैं सर्वसमर्थ तेज से सम्पन्न होकर आया हूँ । हे शत्रुओ ! मैं आपकी बुद्धि को, आपके कर्मों को और आपके संगठन को अस्त-व्यस्त करता हूँ ॥४॥

योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम् ।
अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूका इवोदकान्मण्डूका उदकादिव ॥५॥

अप्राप्त को प्राप्त करने (योग) एवं उसकी सुरक्षा (क्षेम) करने की योग्यता प्राप्त करके मैं आपकी अपेक्षा श्रेष्ठ बन गया हूँ । इस प्रकार शीर्ष भाग के समान आपके बीच श्रेष्ठ पद को प्राप्त कर चुका हूँ । जल में रहने वाले मेढक की भाँति तुम लोग मेरे पैरों के नीचे रहकर चीत्कार करते रहो ॥५॥

सूक्त १६७

ऋषि: विश्वामित्र- जमदग्नि
देवता – इन्द्र,; सोम, वरुण, बृहस्पति, अनुमति, मघवात, धातृ, विधातार:। छंद – जगती

तुभ्येदमिन्द्र परि षिच्यते मधु त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि ।
त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि त्वं तपः परितप्याजयः स्वः ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! यह मधुर सोमरस आपके लिए तैयार किया गया है। आप ही इस अभिषुत कलश में रखे गये योमरस के अधिपति हैं। हमारे लिए प्रचुर ऐश्वर्य और वीर सन्ताने प्रदान करें । तपश्चर्या करके अपने स्वर्ग पर विजय प्राप्त की है ॥१॥

स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुताँ उप ।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे ॥२॥

जिन इन्द्रदेव ने स्वर्गलोक पर विजय प्राप्त की है और जो सोमरूप आहार से तृप्त होते हैं, उन्हीं की हम समीप बुलाते हैं । हे इन्द्रदेव ! आप हमारी यज्ञीय भावनाओं को समझकर यहाँ पधारें । ईष्र्यालु

शत्रुसेना पर विजयी होने वाले ऐश्वर्यशाली इन्द्रदेव से हम वांछित धन की कामना करते हैं ॥२॥

सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि ।
तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ॥३॥

मैं राजा सोम और वरुणदेव के समीप तथा बृहस्पति और अनुमति की शरण में (यज्ञस्थल पर) रहता हूँ । हे इन्द्रदेव ! मैं आपकी स्तुति करता हूँ। हे धारणकर्ता और विधाता ! आपके निर्देश से मैंने यज्ञ से अवशिष्ट कलशस्थ सोमरस का सेवन किया है ॥३॥

प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे ।
सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ॥४॥

हे बलशाली इन्द्रदेव ! आपके द्वारा प्रेरित होकर हमने यज्ञ में चरु के साथ अन्य हवनीय द्रव्य तैयार किये हैं। सर्वप्रमुख स्तोता होकर मैं इस स्तोत्र का आपके निमित्त उच्चारण करता हूँ। (इन्द्रदेव का कथन) हे विश्वामित्र और जमदग्नि ! यज्ञगृह में सोमाभिषव होने पर जब मैं धन लेकर आगमन करता हूँ , तब आपश्रेष्ठ रीति से स्तोत्रोच्चारण करें ॥४॥

सूक्त १६८

ऋषि: अनिलो वातायन:
देवता – वायु: । छंद – त्रिष्टुप

वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः ।
दिविस्पृग्यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन् ॥१॥

तीव्र वेग से प्रवाहित वायुदेव की महत्ता का हम गुणगान करते हैं। वे विविध प्रकार की ध्वनि उत्पन्न हुए और वृक्ष वनस्पतियों को छिन्न-भिन्न करते हुए चलते हैं। वे आकाश को व्याप्त करते हुए और चारों ओर रक्तवर्ण उत्पन्न करते हुए गमन करते हैं तथा पृथ्वी के धूलिकणों को इधर-उधर फैला देते हैं ॥१॥

सं प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा ऐनं गच्छन्ति समनं न योषाः ।
ताभिः सयुक्सरथं देव ईयतेऽस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥२॥

वायु के तीव्र वेग से पर्वतादि भी कम्पायमान हो जाते हैं । युद्ध स्थल की ओर जाते हुए अश्वों की भाँति वृक्षादि वायु के आश्रित होते हैं।

वायुदेव वृक्षों रूपी रथ पर आरूढ़ होकर सम्पूर्ण भुवन के राजा (अधिपति) के समान गमन करते हैं ॥२॥

अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न नि विशते कतमच्चनाहः ।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्व स्विज्जातः कुत आ बभूव ॥३॥

अन्तरिक्ष में विभिन्न मार्गों से चलने वाले वायुदेव किसी भी दिन स्थिर होकर नहीं बैठते । जल के मित्र सभी प्राणियों से प्रथम उत्पन्न होने वाले और सत्यधर्म के अधिपति वायुदेव कहाँ उत्पन्न हुए हैं ? कहाँ से आए हैं? ॥३॥

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः ।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥४॥

वायुदेव समस्त देवों की आत्मा और भुवनों के गर्भरूप हैं। ये स्वेच्छा से विचरण करते हैं। इनके शब्द ही विभिन्न रूपों में सुनाई पड़ते हैं। इनका स्वरूप प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर नहीं होता। उन वायुदेव की हम हवि समर्पित करते हुए अर्चना करते हैं ॥४॥

सूक्त १६९

ऋषि: शबर: काक्षीवत:
देवता – गाय । छंद – त्रिष्टुप

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम् ।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥१॥

सबको सुख प्रदान करने वाले वायुदेव गौओं की ओर बहें । गौएँ बल प्रदान करने वाली ओषधियों का सेवन करें । वे श्रेष्ठ और प्राणों को तृप्ति प्रदान करने वाले जल का सेवन करें । हे रुद्रदेव ! दुग्धरूप पोषक, रस देने वाली गौओं को सुख प्रदान करें ॥१॥

याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद ।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥२॥

जो गौएँ समान रूप वाली, विभिन्न वर्गों वाली और एक आकृति वाली हैं, उन्हें अग्निदेव जानते हैं । जिन्हें अंगिराओं ने तप साधना द्वारा पैदा

किया है , हे पर्जन्यदेव ! आप उन सभी गौओं को सुख प्रदान करें ॥२॥

या देवेषु तन्वमैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३॥

जो गौएँ देवयज्ञ के लिए अपने शरीर से दुग्ध प्रदान करती हैं । सोमदेव जिनके दुग्धादि रसों के ज्ञाता हैं। हे इन्द्र ! अपने दूध से पोषण प्रदान करने वाली गौओं को श्रेष्ठ सन्तानयुक्त बनाकर हमारे गोष्ठ में भिजवाएँ ॥३॥

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥४॥

देवगणों और पितरगणों से परामर्श करके प्रजापति ने इन उत्तम गौओं को हमारे लिए प्रदान किया है । इन सभी गौओं को कल्याणकारी बनाकर वे हमारी गौशाला में भिजवाएँ । उनसे सन्तान और दुग्ध पाकर हम वैभवशाली बन सकें ॥४॥

सूक्त १७०

ऋषि: विभ्राट् सौर्य
देवता – सूर्य । छंद – जगती, ४ आस्तार पंक्ति

विभ्राड्बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपताववि‌ह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥१॥

अत्यन्त तेजस्वी सूर्यदेव प्रचुर मात्रा में सोमपान करें । याजकों को बाधारहित लम्बी आयु प्रदान करें । ये सर्यदेव वायु से प्रेरित रश्मियों के माध्यम से सम्पूर्ण जगत् का पोषण करते हैं और उन्हें आभा आदि से पुष्ट करके विविध रूपों में प्रकाशित करते हैं ॥१॥

विभ्राड्बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहंतमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥

विशेष तेजयुक्त, महान्,उत्तम पोषक, अन्न और बल प्रदायक, धर्म से आकाश को धारण करने वाले, शत्रुनाशक वृत्र (अन्धकार) संहारक,

दुष्टों और राक्षसों के विनाशक सूर्यदेव अपना प्रकाश चारों ओर विस्तृत करते हैं ॥२॥

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड्भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥

प्रकाशपुंज, ज्योतियों में सर्वश्रेष्ठ सूर्यदेव विश्व को जीतने वाले हैं। प्रकाशमान सूर्यदेव धन के विजेता, महान् जगत् के प्रकाशक, अविनाशी और ओज को प्रसारित करने वाले हैं ॥३॥

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः ।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ॥४॥

हे दिव्यलोक गामी सूर्यदेव ! आप अपनी ज्योति से सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित करते हैं। विश्व संरक्षक और कल्याणकारी अपने तेज से आप इन सभी लोकों को पोषण प्रदान करते हैं ॥४॥

सूक्त १७१

ऋषि: इटो भार्गव
देवता – इन्द्र । छंद – गायत्री

त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्रावः सुतावतः ।
अशृणोः सोमिनो हवम् ॥१॥

हे इन्द्रदेव ! जिस समय इट (तीव्र गतियुक्त) ऋषि ने अभिषुत सोम समर्पित किया, उस समय आपने उनको दिव्य संरक्षण प्रदान किया । सोमयुक्त उनके स्तोत्रों के अभिप्राय को आपने श्रवण किया ॥१॥

त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः ।
अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आपने देवों के समीप से पलायन करने वाले, यज्ञ में बाधा डालने वाले (नास्तिक) के मन को शरीर से पृथक किया और सोमयुक्त हमारे (इट ऋषि के) गृह में प्रवेश किया ॥२॥

त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यमास्त्रबुध्नाय वेन्यम् ।
मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ॥३॥

हे इन्द्र ! अस्त्रबुध्न-पुत्र ने बार-बार आपकी प्रार्थना की, अतः आपने वेन-पुत्र पृथु को उनके अधीनस्थ किया ।॥३॥

त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं पश्चा सन्तं पुरस्कृधि ।
देवानां चित्तिरो वशम् ॥४॥

हे इन्द्रदेव ! जिस समय सायंकाल सूर्यदेव पश्चिम में अस्त होते हैं, उस समय देवगण भी नहीं जानते कि वे कहाँ गये ?तत्पश्चात् आप सूर्यदेव को प्रातःकाल पूर्व की ओर प्रकट करते हैं ॥४॥

सूक्त १७२

ऋषि: संवर्त अंगिरस
देवता – उषा । छंद – द्विपदा विराट्

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥१॥

हे उषादेवि ! अभीष्ट प्रकाश के साथ आप पृथ्वी पर आएँ । दूध से भरे थनों वाली गौएँ (अथवा पोषण सामर्थ्य से युक्त किरणें) मार्ग में रहती हैं ॥१॥

आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥२॥

हे उषादेवि ! श्रेष्ठ स्तोत्रों को ग्रहण करने के लिए आप आएँ । याज्ञिक जन उत्तम दान सामग्री लेकर श्रेष्ठ भावना से यज्ञ सम्पन्न करते हैं ॥२॥

पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥३॥

अन्न संग्रह करके हम श्रेष्ठतम द्रव्यों का दान करने के लिए प्रस्तुत हैं। सूत्र के समान हम यज्ञ को विस्तीर्ण करते हैं और यज्ञ द्वारा उषादेवी की स्तुति करते हैं ॥३॥

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥४॥

यह उषा अपनी बहन रूपी रात्रि के अन्धकार को अपनी रश्मियों से दूर करती हैं और उत्तम प्रकाश से अपने मार्ग को भी प्रकाशित करती हैं ॥४॥

सूक्त १७३

ऋषि: ध्रुव अंगिरस
देवता – राजा । छंद – अनुष्टुप

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः ।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१॥

हे राजन् ! आपको इस (राष्ट्र या क्षेत्र) का अधिपति नियुक्त किया गया है। आप इसके स्वामी हैं, आप नित्य अविचल और स्थिर होकर रहें । प्रजाजन आपकी अभिलाषा करें । आपके माध्यम से राष्ट्र का गौरव क्षीण न हो ।॥१॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वत इवाविचाचलिः ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२॥

आप इस में ही अविचल होकर रहें । कभी पद से वञ्चित न हों । पर्वत के समान आप निश्चल होकर रहें । ये स्वर्ग में इन्द्रदेव हैं, वैसे ही आप पृथ्वी पर स्थिर होकर शासन करें और राष्ट्र का नेतृत्व कर ॥२॥

इममिन्द्रो अदीधरद्ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

इन्द्रदेव इस (अधिपति) को अक्षय यजनीय सामग्री उपलब्ध करके स्थिरता प्रदान करें। सोम उन्हें अपना आत्मीय मानें । ब्रह्मणस्पति भी उन्हें आत्मीय ही समझें ॥३॥

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद्ध्रुवो राजा विशामयम् ॥४॥

जिस प्रकार आकाश, पृथ्वी, सम्पूर्ण पर्वत और समस्त विश्व अविचल है, उसी प्रकार ये प्रजाजनों के स्वामी राजा भी स्थिर रहें ॥४॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५॥

या'नश्च राष्ट्र धारयतां धस, हे राजन् ! आपके राष्ट्र को वरुणदेव स्थायित्व प्रदान करें। दिव्यगुणों से युक्त बृहस्पतिदेव स्थिरता प्रदान करें। इन्द्रदेव और अग्निदेव भी आपके राष्ट्र को स्थिर रूप से धारण करें ॥५॥

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥

धुव (टिकाऊ) हवि से हम सोमदेव को तुष्ट करते हैं, वे हमें स्थिरता प्रदान करें। हे राजन् ! इन्द्रदेव प्रजा को केवल आपके लिए बलि (अंश या कर) देने वाली बनाएँ ॥६॥

सूक्त १७४

ऋषि: अभीवर्त अंगिरस
देवता – राजा । छंद – अनुष्टुप

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥१॥

हे ब्रह्मणस्पति ! हवि आदि यज्ञ साधनों से युक्त होकर हम इन्द्रदेव के समीप जाते हैं। उन्हीं यज्ञ साधनों से आप हमें राष्ट्र के लिए (राष्ट्रहित के लिए प्रोत्साहित करें ॥१॥

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति ॥२॥

हे राजन् ! हमारे विरोधी हिंसक शत्रु सेनाओं को, जो हमसे युद्ध करने के इच्छुक हैं, जो हमसे द्वेष करते हैं। आप उन्हें घेर कर पराभूत करें ॥२॥

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृतत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

हे राजन् ! सवितादेव, सोमदेव और समस्त प्राणिसमुदाय आपको शासनाधिरूढ़ करने में सहयोग इन सबकी अनुकूलता से आप भलीभाँति शासन करें ॥३॥

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद्द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्नः किलाभुवम् ॥४॥

हे देवगण ! जिन हवि आदि साधनों से इन्द्रदेव क्रियाशील, अन्नवान् और श्रेष्ठ बनते हैं, उन्हीं को हमने तैयार किया है । इसीकारण हम भी शत्रुविहीन बन सके हैं ॥४॥

असपत्नः सपत्नहाभिराष्ट्रो विषासहिः ।
यथाहमेषां भूतानां विराजानि जनस्य च ॥५॥

शत्रुओं का हनन करके मैने स्वयं को अजातशत्रु सिद्ध किया है । शासनारूढ़ होकर शत्रुओं का पराभव करने में समर्थ हुआ हूँ। मैंने सभी प्राणियों और अधिकारियों को अपने अधीन कर लिया है ॥५॥

सूक्त १७५

ऋषि: ऊर्ध्वग्रावा सर्प अबुर्दि
देवता – ग्रावाण: । छंद – गायत्री

प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा ।
धूर्षु युज्यध्वं सुनुत ॥१॥

हे मावा (सोम निष्पादक यंत्र) सवितादेव स्वसामर्थ्य से आपको सोमरस के अभिषव कार्य में प्रेरित करें । आप अभिषव के स्थान पर अपने कर्म में नियुक्त हों और सोमरस तैयार करें ॥१॥

ग्रावाणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम् ।
उस्राः कर्तन भेषजम् ॥२॥

हे (मावा) ! आप दुःखकारिणी प्रजा को हमसे दूर करें । दुर्मति को दूर करें । सुखदायक ओषधियों को हमारे लिए रस प्रदायक बनाएँ। ॥२॥

ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः ।
वृष्णे दधतो वृष्ण्यम् ॥३॥

परस्पर मिलकर पाषाण एक विस्तृत पाषाण को चारों ओर से सुशोभित करते हैं। रसवर्षक (सोम) के प्रति वे अपने बल का प्रयोग करते हैं ॥३॥

ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा ।
यजमानाय सुन्वते ॥४॥

हे पाषाणो ! सवितादेव अपनी सामर्थ्य से आपको यजमानों के निमित्त सोम अभिषवण के लिए प्रेरित करें ।॥४॥

सूक्त १७६

ऋषि: सूनुरार्भव:
देवता – १ ऋभव, २-४ अग्नि:। छंद – अनुष्टुप, २ गायत्री

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।
क्षामा ये विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम् ॥१॥

ऋभुगण यश प्राप्ति हेतु संग्राम में प्रवृत्त हो गए। जिस प्रकार बछड़े अपनी माता गौओं को घेरकर खड़े होते हैं, वैसे ही वे विश्वाधार ऋभुगण पृथ्वी के चारों ओर संव्याप्त हो गए ॥१॥

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् ।
हव्या नो वक्षदानुषक् ॥२॥

हे स्तोताओ ! आप दिव्यगुण सम्पन्न सम्पूर्ण विश्व के ज्ञाता अग्निदेव की उपासना करें । वे अपनी दिव्यबुद्धि से हमारे हव्य को विधिपूर्वक देवताओं के समीप तक पहुँचाएँ ॥२॥

अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥३॥

ये देव-आह्वाता वही अग्निदेव हैं, जो देवताओं के समीप जाते हैं और यज्ञों के लिए विशेषरूप से ले जाए जाते हैं। जो रथ के समान दीप्तिमान् होते हैं। याज्ञिकों से घिरे हुए सम्यक्रूप से यज्ञ सम्पन्न करना जानते हैं ॥३॥

अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।
सहसश्चित्सहीयान्देवो जीवातवे कृतः ॥४॥

अग्निदेव अमृत के सदृश ही सांसारिक भय से हमारा संरक्षण करते हैं। वे बलवानों में भी अति बलशाला हैं। विधाता ने जीवों की आयुष्यवृद्धि के लिए उन्हें उत्पन्न किया है ॥४॥

सूक्त १७७

ऋषि: पतंग प्राजापत्य:
देवता – मायाभेद:। छंद – त्रिष्टुप, १ जगती

पतंगमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥१॥

मेधावी जनों ने विचारपूर्वक एक पतंग (जीवात्मा या सूर्य) को देखा, जिसे बलशाली माया संव्याप्त किए हुए थी । कवि(द्रष्टा-विद्वान्) आकाश के मध्य (माया प्रवाह) कोजानते हैं, वे साधक प्रकाशयुक्त (सूर्य या परमात्मा) का पद पाने की कामना करते हैं ॥१॥

पतंगो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद्गर्भे अन्तः ।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥२॥

पतंग (प्रकाशमान) दिव्यवाणी को विवेकी मन से धारण करते हैं । गर्भावस्था में ही गन्धर्व अर्थात् देवता उसके मन में ज्ञान बीज को बो

देते हैं। यह वाणी दिव्यतायुक्त अलौकिक सुख और बुद्धि की अधिष्ठात्री है । सत्यमार्ग के साधक इस वाणी की रक्षा करते हैं ॥२॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३॥

गो पति (जीवात्मा या किरणों के स्वामी) का पतन नहीं होता, ऐसा हमारा अनुभव है । वे कभी समीप और कभी दूर विभिन्न मार्गों में भ्रमण करते हैं । वे कभी अनेक वस्त्र (गुणों) को एक साथ धारण करते हैं और कभी पृथक्-पृथक् को वे महान् दिशाओं को अपनी ज्योति से प्रकाशित करते हुए लोकों में बारम्बार भ्रमण करते हैं ॥३॥

सूक्त १७८

ऋषि: अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्य
देवता – तार्क्ष्य । छंद – त्रिष्टुप

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥

हम अपने कल्याण के लिए, देवताओं से सेवित, शक्तिशाली, संग्राम में, उद्धार करने में समर्थ, शत्र सेना पर विजय प्राप्त करने वाले, जिसकी गति रुकती नहीं, तीव्र गति से उड़ने वाले तार्क्स (गरुड़-सूर्य अथवा इन्द्र) देव का आवाहन करते हैं ॥१॥

इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम ।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम ॥२॥

इन्द्रदेव के समान ही ताक्ष्य (गतिशील) की दानशक्ति को हम बार-बार आवाहित करते हैं। हम अपने कल्याण के लिए दानशक्ति का उसी प्रकार आश्रय लेते हैं, जिस प्रकार दुर्गम समुद्र को पार करने

के लिए का अवलम्बन लेते हैं । हे द्यावापृथिवि ! आप विशाल, विस्तृत, गम्भीर और प्रख्यात हैं। तार्क्स के आते और जाते समय हम मृत्यु को प्राप्त न हों ॥२॥

सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्य इव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ॥३॥

जिस प्रकार सूर्यदेव अपने तेज से जलवृष्टि करते हैं, उसी प्रकार तार्क्स ने भी अपने बल से पंचजनों को (चार वर्गों और निषाद) ऐश्वर्य से परिपूर्ण किया है । उन ताक्ष्य का वेग असंख्य प्रकार के धन को प्रदान करने वाला है । धनुष से छूटे हुए बाण के समान ही इनके वेग को रोकने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं ॥३॥

सूक्त १७९

ऋषि: क्रमेण- शिबिरौशीनर:, काशिराज, प्रतर्दन, रौहिदश्वो वसुमना:
देवता – इन्द्र । छंद – त्रिष्टुप , १ अनुष्टुप

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥१॥

हे स्तोतागण ! उठकर इन्द्रदेव के लिए उपयुक्त यज्ञ भाग को तैयार करें। यदि यजनीय भाग पकाया जा चुका है, तो उनके (इन्द्रदेव के) निमित्त यजन करें। यदि अभी अपक्व है, तो पाककर्म को शीघ्रतापूर्वक पूर्ण करें ॥१॥

श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! हविभाग तैयार हो गया है । आप शीघ्र ही समीप आएँ । सूर्यदेव मार्ग के मध्य में आ गये हैं। जिस प्रकार कुल संरक्षक पुत्र

इधर-उधर विचरण करने वाले गृहपति की प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार सखारूप ऋत्विज् विविध प्रकार की सोमादि यज्ञ सामग्री सहित आपकी प्रतीक्षा करते हैं ॥२॥

श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यंदिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषाणः ॥३॥

गौ के स्तन में दुग्धरूप हवि का सर्वप्रथम पाक होता है । तत्पश्चात् वह दुग्ध अग्नि में पकाया जाता है। इस प्रकार वह अत्युत्तम पाक की स्थिति को प्राप्त होकर अतिपावन और नवीन रूप को धारण करता है। पराक्रमशील, वृत्रहन्ता एवं वज्रधारी हे इन्द्रदेव ! आप मध्याह्नकालीन यज्ञ में समर्पित किये गये सोमरस का हर्षित होकर पान करें ॥३॥

सूक्त १८०

ऋषि: जय ऐन्द्र
देवता – इन्द्र । छंद – त्रिष्टुप

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रूञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
इन्द्रा भर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥१॥

हे बहुस्तुत इन्द्रदेव ! आप शत्रुपक्ष को पराजित करने में समर्थ हैं। आपकी तेजस्विता सर्वोत्तम है । आपके अनुदान हमें उपलब्ध हों । आप दाहिने हाथ से ही विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य हमें प्रदान करें । आप ही ऐश्वर्यों के स्रोत एवं अधिपति हैं ॥१॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताळ्हि वि मृधो नुदस्व ॥२॥

हे इन्द्रदेव ! आप पर्वतीय हिंसक सिंह के समान भयंकर हैं। आप दूरस्थ प्रदेश से यहाँ आकर दूर मार करने वाले वज्र को तीक्ष्ण कर

शत्रुओं का विनाश करें। संग्राम की इच्छा वाले शत्रुओं को दूर करें ॥२॥

इन्द्र क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥३॥

हे इन्द्रदेव ! आपने जन्मजात तेजस्विता को प्राप्त किया है, इसी सामर्थ्य से आप विरोधियों,अत्याचारियों का सामना करते हैं । हे कामना पूरक इन्द्रदेव ! हम मनुष्यों के साथ शत्रुता करने वाले दुष्टों को आप दूर करते हैं। आपने ही देवों के निमित्त विस्तृत स्वर्ग की रचना की है ॥३॥

सूक्त १८१

ऋषि: क्रमेण- प्रथो वासिष्ठ, सप्रथो भारद्वाज, धर्म, सौर्य
देवता – विश्वे देवा । छंद – त्रिष्टुप

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथंतरमा जभारा वसिष्ठः ॥१॥

प्रथ (विस्तृत) तथा सप्रथ (सुविख्यात) जिनके नाम हैं, ऐसे वशिष्ठ ने अनुष्टुप् छन्द से हविष्यार्पण किया तथा धारणकर्ता, तेजस्वी, सविता एवं विष्णु से रथान्तर साम को प्राप्त किया ॥१॥

अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः ॥२॥

जो यज्ञ का परम आधार और निगूढ़ था, उस तेजस्वी 'बृहत् साम को सविता आदि देवों ने प्राप्त किया। धातादेव, तेजस्वी सवितादेव, विष्णुदेव और अग्निदेव के समीप से भरद्वाज ऋषि इस बृहत् साम को लेकर आएँ ॥२॥

तेऽविन्दन्मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन्घर्ममेते ॥३॥

अभिषेकादि क्रियाओं को पूर्ण करने वाले 'घर्म' (यजुर्वेदीय मंत्र) की यज्ञीय कायों में अति महत्वपूर्ण भूमिका होती है । धाता आदि देवों ने उनको मनन द्वारा प्राप्त किया। प्रत्वज् लोग धाता, विष्णु, सूर्य और तेजस्वी सविता के समीप से 'घर्म' को लेकर आए। ॥३॥

सूक्त १८२

ऋषि: तपुमूर्धा बाहर्सपत्य:
देवता – बृहस्पति । छंद – त्रिष्टुप

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥१॥

बृहस्पति देव हमारे द:खों का निवारण करें। वे हमारे प्रति दुर्भावना रखने वाले मनुष्यों को दूर करने के लिए तेजस्वी शस्त्र का प्रयोग करें। वे अमंगल और दुर्बुद्धि का विनाश करें । वे यजमान के रोगों का निवारणकरें और उसे निर्भयता प्रदान करें ॥१॥

नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥२॥

यज्ञ के प्रयाज में नराशंस अग्नि हमारा संरक्षण करें । अनुयाज के समय भी अग्निदेव हमें शान्ति प्रदान करें । वे अनिष्टों का निवारण

करें और दुर्बुद्धि को विनष्ट करें । यजमानों को शान्ति प्रदान कर, निर्भयता प्रदान करें।॥२॥

तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥३॥

ब्रह्मद्वेषी असुरों को बृहस्पति दग्ध करें तथा हिंसक रिपुओं का विनाश करें । वे अनिष्टों का निवारण करते हुए दुर्मति और दुर्भावनाओं का विनाश करें । यजमान को निर्भयता प्रदान करते हुए सुख-शान्ति का अनुदान दें ।॥३॥

सूक्त १८३

ऋषि: प्रजावान प्राजापत्य:
देवता – १ यजमान, २ यजमान पत्नी, होत्राशिव: । छंद – त्रिष्टुप

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥१॥

हे यजमान ! आप विवेकपूर्वक कर्मों के ज्ञाता, सुकृतों से उत्पन्न और तपश्चर्या द्वारा सर्वत्र विख्यात हैं । पुत्रादि की इच्छा करने वाले हे यजमान ! आप इस लोक में धन और सुसंतति को प्राप्त कर प्रसन्नचित्त रहें ॥१॥

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥२॥

हे अर्धाङ्गिणी (या प्रकृति) आप को विवेक की दृष्टि से मैंने जाना है। आप सुन्दर रूपवती हैं। आपमें गर्भ धारण करने की सामर्थ्य को हम

देखते हैं। हे पुत्र की अभिलाषा से युक्त भायें ! आपकी कामना पूर्ण हो, आप मातृत्व के सुख को प्राप्त करें ॥२॥

अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
अहं प्रजा अजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥३॥

मैं होता के रूप में ओषधियों में गर्भाधान करता हूँ। मैं ही प्राणियों को प्रजनन क्षमता प्रदान करता हूँ । पृथ्वी पर प्रजाजनों का उत्पादन में ही करता हूँ। यज्ञादि क्रियाओं द्वारा मैं ही सभी स्त्रियों को प्रजनन योग्य बनाता हूँ ॥३॥

सूक्त १८४

ऋषि: त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्य:
देवता – १ विष्णु -त्वष्ट- प्रजापति-धातार, २ सिनीवाली-सरस्वतयश्विन, ३ आश्विनौ । छंद – अनुष्टुप

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥१॥

विष्णुदेव (नारी या प्रकृति को) गर्भाधान की क्षमता से युक्त करें। त्वष्टादेव उसके विभिन्न अवयवों का eण करें । प्रजापति सेचन प्रक्रिया में सहायक हों और धाता गर्भधारण में सहयोग करें ॥१॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥२॥

हे सिनीवाली ! आप गर्भ को संरक्षण प्रदान करें । हे सरस्वति देवि ! आप गर्भ धारण में सहायक हो । हे । स्वर्णिम कमल के आभूषणों

के धारणकर्ता अश्विनीकुमार आप में गर्भ को स्थिरता प्रदान करे ॥२॥

हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥३॥

गर्भस्थ सन्तति की रक्षा के लिये अश्विनीकुमार स्वर्णिम अरणियों का घर्षण करते हैं, उस गर्भस्थ संतान को हम दसवें मास में प्रसव होने के लिए बुलाते हैं ॥३॥

सूक्त १८५

ऋषि: सत्य धृति वारुणि
देवता – आदित्य: । छंद – गायत्री

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।
दुराधर्षं वरुणस्य ॥१॥

मित्र, वरुण और अर्यमा तीनों देवों का तेजस्वी, महान् संयुक्त संरक्षण हमें प्राप्त हो; जिससे हम दूसरों को। पराजित करने में समर्थ हों ॥१॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु ।
ईशे रिपुरघशंसः ॥२॥

जो इन देवों के आश्रय में रहते हैं, अनिष्टकारी आसुरी शक्तियाँ उन्हें हानि नहीं पहुँचा सकती । देवों की कृपा से उनके आवास और यात्राएँ भी सुरक्षित होती हैं ॥२॥

यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय ।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥३॥

अदिति देवी के तीनों पुत्र (मित्र, अर्यमा और वरुण) जिस मनुष्य की सुरक्षा के लिए तेजस्विता प्रदान करते हैं, उसे दुष्ट शत्रु कोई हानि नहीं पहुँचा सकते । शत्रुओं के सभी प्रयत्न निष्फल हो जाते हैं ॥३॥

सूक्त १८६

ऋषिः वातायन उलः
देवता – वायुः । छंद – गायत्री

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥१॥

हमारे हृदय के लिए शान्तिदायक तथा सुखदायी ओषधियों को वायुदेव हमारे पास पहुँचाएँ । ये ओषधियाँ हमें दीर्घजीवी बनाएँ ॥१॥

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।
स नो जीवातवे कृधि ॥२॥

हे वायो ! आप हमारे पिता के तुल्य उत्पत्तिकर्ता, बन्धु के तुल्य प्रिय और मित्र के तुल्य हितकारी हैं। आपर जीवन की रक्षा के लिए कल्याणकारी ओषधियाँ पहुँचाएँ ॥२॥

यददो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः ।
ततो नो देहि जीवसे ॥३॥

हे सर्वत्र गमनशील वायुदेव ! आपके पास प्राणरूप जीवन तत्त्व (अमृत) का जो भण्डार है, उसे हमारे कल्याण के लिए यहाँ पहुंचाएँ ॥३॥

सूक्त १८७

ऋषि: आग्नेयो वत्स:
देवता – अग्नि: । छंद – गायत्री

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥१॥

हे स्तोताओ ! मनुष्यों की अभीष्ट कामनाओं को पूर्ण करने वाले अग्निदेव की स्तुति करें । वे हमें शत्रुओं की दुष्टता से संरक्षित करें ॥१॥

यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥२॥

जो अग्निदेव बहुत दूर से (द्युलोक से) अन्तरिक्षको पार करके यज्ञ वेदी पर प्रकाशित होते हैं। वे सभी प्रकार के शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥२॥

यो रक्षांसि निजूर्वति वृषा शुक्रेण शोचिषा ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥३॥

जल की वर्षा करने वाले अग्निदेव अपनी कान्तिमान ज्वालाओं से यज्ञों के ध्वंसक असुरों का संहार करते हैं । वे अग्निदेव विद्वेषी शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥३॥

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥४॥

जो अग्निदेव समस्त लोकों को पृथक्-पृथक् रूप में देखते हैं और सम्मिलित भाव से पर्यवेक्षण करते हैं। वे शत्रुओं की दुष्टता से हमारी रक्षा करें ॥४॥

यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥५॥

जो अग्निदेव अन्तरिक्ष से पार ऊपर के दिव्यलोक में तेजस्वी प्रकाश के रूप में प्रकट होते हैं । वे हमें सभी कष्टों से बचाएँ ॥५॥

सूक्त १८८

ऋषिः आग्नेयो श्येनः
देवता – जातवेदा अग्निः । छंद – गायत्री

प्र नूनं जातवेदसमश्वं हिनोत वाजिनम् ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥१॥

हे यजमानो ! सर्वज्ञ, सर्वव्यापक और अन्नवान् अग्निदेव को प्रदीप्त करें । वे हमारे द्वारा बिछाये गए आसन पर विराजमान हों ॥१॥

अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीळ्हुषः ।
महीमियर्मि सुष्टुतिम् ॥२॥

विद्वान् याजक अग्निदेव को पुत्र के समान प्रकट करते हैं । अग्निदेव ही जल की वर्षा करते हैं। श्रेष्ठ स्तोत्रों का गान करते हुए, हम उनकी वन्दना करते हैं ॥२॥

या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः ।
ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु ॥३॥

सर्वज्ञ अग्निदेव अपनी काली-कराली आदि सात जिवाओं (ज्वालाओं) द्वारा देवों के पास हवियों को ले जाते हैं। उन ज्वालाओं के साथ वे हमारे यज्ञ में उपस्थित हों ॥३॥

सूक्त १८९

ऋषि: सर्पराशी
देवता – आत्मा, सूर्यो । छंद – गायत्री

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१॥

गतिमान तेजस्वी सूर्यदेव प्रकट हो गए हैं। सबसे पहले वह माता पृथ्वी को और फिर पिता स्वर्ग और अन्तरिक्ष को प्राप्त होते हैं ॥१॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥२॥

इन (सूर्यदेव) का प्रकाश आकाश में संचरित होता है । ये (रश्मियाँ) प्राण से अपान प्रक्रिया सम्पन्न करती हैं। ये महान् सूर्यदेव द्युलोक को विशेष रूप से प्रकाशित करते हैं ॥२॥

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतंगाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥३॥

सर्वप्रेरक सूर्यदेव दिन की तीस घटियों तक अपनी रश्मियों से प्रकाशित होते हैं । इन प्रकाशित सूर्यदेव की प्रार्थना की जाती है ॥३॥

सूक्त १९०

ऋषि: माधुच्छन्दसोऽघमर्षण
देवता – भाववृत्तम् । छंद – अनुष्टुप

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥

महान् प्रकाशमान तप से ऋत एवं सत्य (मूल तत्त्व तथा भासित होने वाले प्रकृति पदार्थो) की अधिकृत उत्पत्ति हुई । (सृष्टि काल पूरा होने पर) तब रात्रि (प्रलय की स्थिति) उत्पन्न हुई । (उसके समापन पर) फिर अर्णव समुद्र (गतिमान् मूल द्रव्य का अथाह प्रवाह) उत्पन्न हुआ ॥१॥

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥

अर्णव समुद्र के माध्यम से संवत्सर (समय-कालचक्र) का प्रादुर्भाव हुआ। विश्व को वश में रखने वाले (परमात्मा) ने पलक झपकने की तरह दिनों एवं रात्रियों को स्वरूप दिया ॥२॥

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

धाता (विधाता-परमात्मा) ने सूर्य एवं चन्द्रमा को, आकाश एवं पृथ्वी को, अन्तरिक्ष एवं स्वः (स्वर्गलोक अथवा आत्मतत्व) को पहले की ही तरह विनिर्मित किया ॥३॥

सूक्त १९१

ऋषि: संवनन अंगिरस
देवता – १ अग्नि, २-४ संज्ञानम् । छंद – अनुष्टुप, ३ त्रिष्टुप

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१॥

हे सुखवर्षक अग्निदेव ! आप सम्पूर्ण विश्व के स्वामी हैं। समस्त तत्वों में आप ही विद्यमान हैं । यज्ञवेदी अथवा पृथ्वी पर आप ही प्रकाशित होते हैं । आप हमें विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करें ॥१॥

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥२॥

हे स्तोताओ ! आप परस्पर मिल-जुलकर चलें, परस्पर मिलकर स्नेहपूर्वक वार्तालाप करें। आपके मन समान विचारधारा वाले होकर ज्ञानार्जन करें । जिस प्रकार पूर्वकाल में सज्जनों ने एक साथ मिलकर

यज्ञादि कार्यो को करते हुए देवों की उपासना की थी, उसी प्रकार आप सभी एकमत हो जाओ ॥२॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

हे स्तोताओ ! आप सभी की प्रार्थना एक समान हो, 'पारस्परिक मिलन' (भेदभावना से रहित) एक जैसा हो । आपका विचार तन्त्र (मन, बुद्धि, चित्त आदि) समान रूप हो । हे स्तोताओ ! मैं आपके जीवन को एक ही मन्त्र से अभिमन्त्रित (सुसंस्कृत) करता है और एक समान आहुति प्रदान करके यज्ञमय करता हूँ ॥३॥

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥४॥

हे स्तोताओ (मनुष्यो) ! तुम्हारे हृदय (भावनाएँ) एक समान हों, तुम्हारे मन (विचार) एक जैसे हों, संकल्प (कार्य) एक जैसे हों, ताकि तुम संगठित होकर अपने सभी कार्य पूर्ण कर सको ॥४॥

॥इति दशमं मण्डलं॥